विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका UGC Approved Journal
ISSN NUMBER : 2455-9717 RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

Dhingra Family Foundation USA
शिवना प्रकाशन

वर्ष : 6, अंक : 22
जुलाई-सितम्बर 2021
मूल्य 50 रुपये

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

विदा

अशोक वाजपेयी

तुम चले जाओगे
पर थोड़ा-सा
यहाँ भी रह जाओगे
जैसे रह जाती है
पहली बारिश के बाद
हवा में धरती की
सोंधी-सी गंध
भोर के उजास में
थोड़ा-सा चंद्रमा
खंडहर हो रहे मंदिर में
अनसुनी
प्राचीन नूपुरों की झंकार।

तुम चले जाओगे
पर थोड़ी-सी हँसी
आँखों की थोड़ी-सी चमक
हाथ की बनी
थोड़ी-सी कॉफी
यहीं रह जाएँगे
प्रेम के इस सुनसान में।

तुम चले जाओगे
पर मेरे पास रह जाएगी
प्रार्थना की तरह पवित्र
और अदम्य
तुम्हारी उपस्थिति,
छंद की तरह गूँजता
तुम्हारे पास होने का अहसास।

तुम चले जाओगे
और थोड़ा-सा
यहीं रह जाओगे।

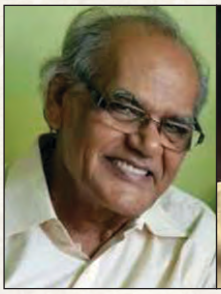
रमेश उपाध्याय

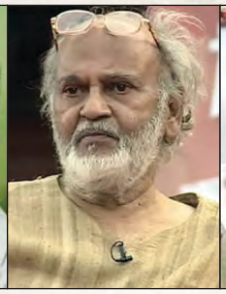
लाल बहादुर वर्मा

कांति कुमार जैन

प्रभु जोशी

शंख घोष

राजकुमार केसवानी

कुँअर बेचैन

मंज़ूर एहतेशाम

मुशर्रफ़ आलम ज़ौकी

महेंद्र गगन

ज़हीर क़ुरैशी

रामरतन अवस्थी

श्याम मुंशी

युगेश शर्मा

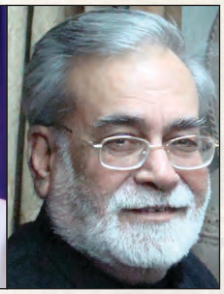
नरेंद्र कोहली

शमीम हनफ़ी

विभा देवसरे

राजेन्द्र राजन

रेणू अर्गल

तरन्नुम रियाज़

वर्षा सिंह

चंडीदत्त शुक्ल

राजेश झरपुरे

दिवाकर भट्ट

अनुराग सीठा

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

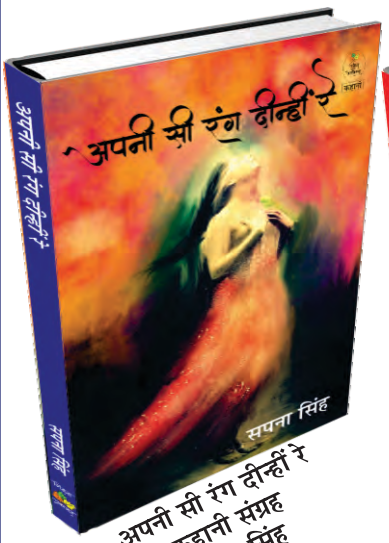

अपनी सी रंग दीन्हीं रे
कहानी संग्रह
सपना सिंह

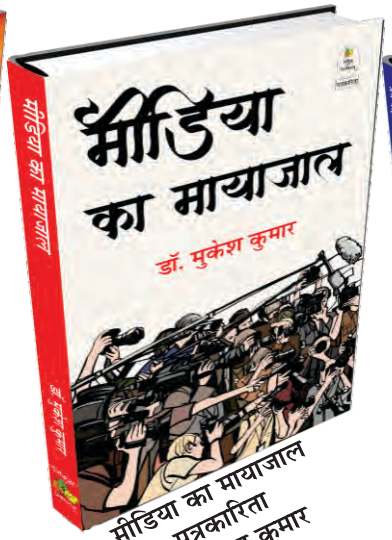

मीडिया का मायाजाल
पत्रकारिता
डॉ. मुकेश कुमार

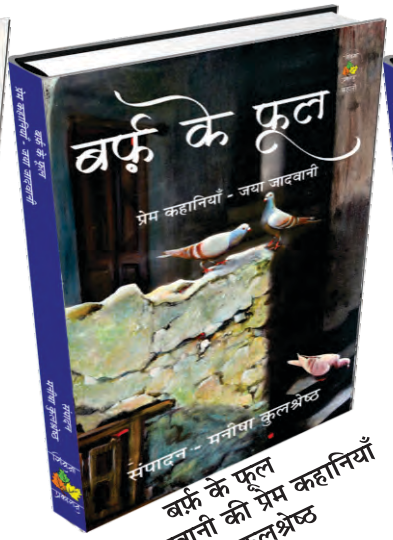

बर्फ़ के फूल
जया जादवानी की प्रेम कहानियाँ
मनीषा कुलश्रेष्ठ

गीली पाँक
कहानी संग्रह
उषाकिरण खान

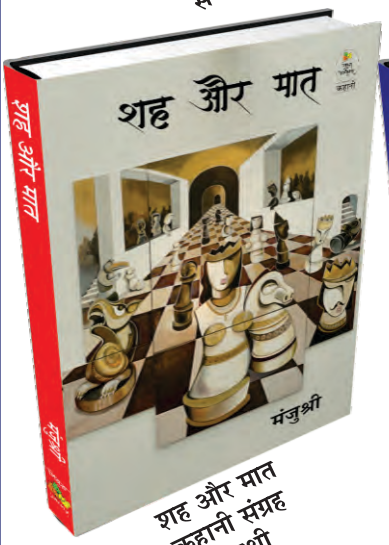

शह और मात
कहानी संग्रह
मंजुश्री

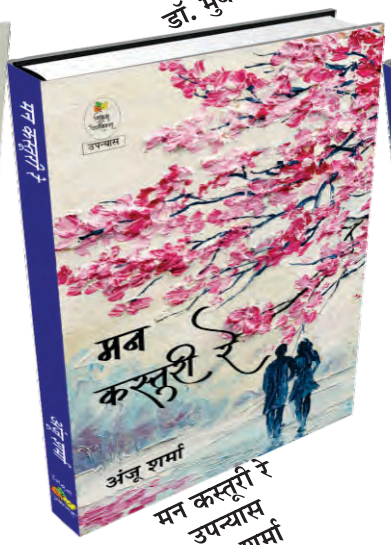

मन कस्तूरी रे
उपन्यास
अंजू शर्मा

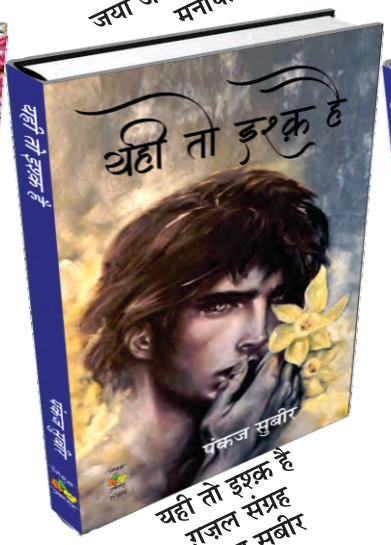

यही तो इश्क़ है
ग़ज़ल संग्रह
पंकज सुबीर

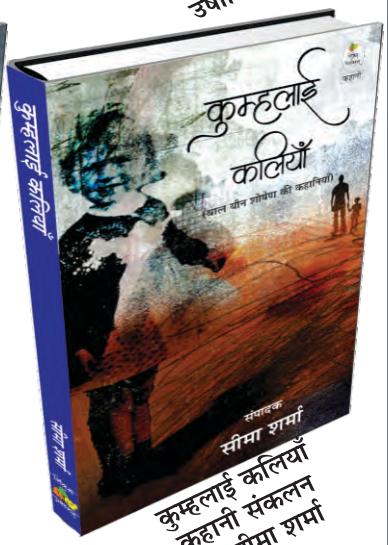

कुम्हलाई कलियाँ
कहानी संकलन
डॉ. सीमा शर्मा

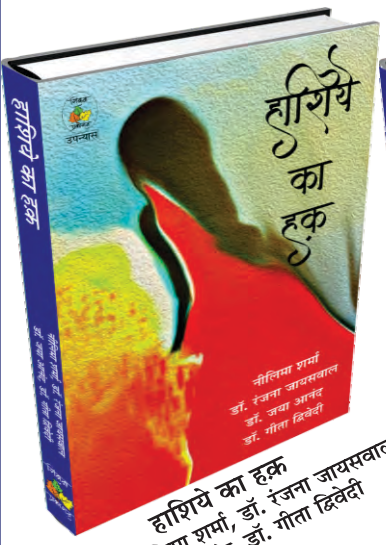

हाशिये का हक़
उपन्यास- नीलिमा शर्मा, डॉ. रंजना जायसवाल,
डॉ. जया आनंद, डॉ. गीता द्विवेदी

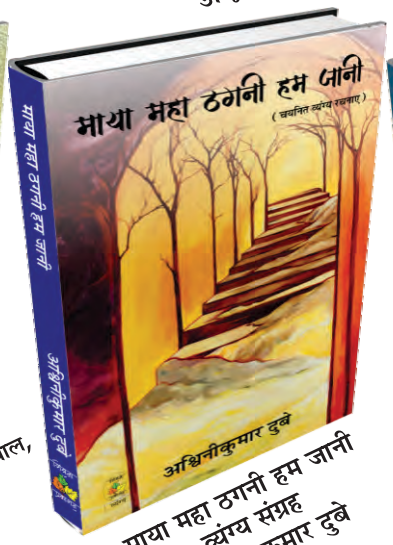

माया महा ठगनी हम जानी
व्यंग्य संग्रह
अश्विनी कुमार दुबे

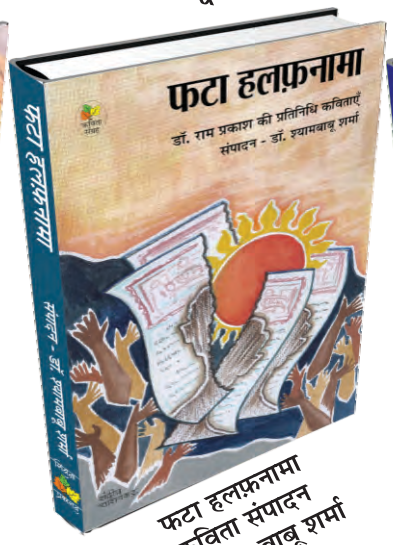

फटा हलफ़नामा
कविता संपादन
डॉ. श्याम बाबू शर्मा

द= देह, दर्द और दिल
कहानी संग्रह
विभा रानी

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं
सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा
प्रबंध संपादक
नीरज गोस्वामी
संपादक
पंकज सुबीर
कार्यकारी संपादक
शहरयार
सह संपादक
शैलेन्द्र शरण
पारुल सिंह
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल- shivnasahityiki@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना साहित्यिकी'
http://www.vibhom.com/shivnasahityiki.html
फेसबुक पर 'शिवना साहित्यिकी'
https://www.facebook.com/shivnasahityiki

एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
1500 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)

बैंक खाते का विवरण-
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

शिवना प्रकाशन

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 6, अंक : 22, त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2021
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका
(UGC Approved Journal)
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

आवरण कविता
अशोक वाजपेयी

इस अंक में

आवरण कविता / अशोक वाजपेयी
संपादकीय / शहरयार / 3
व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 4
पिता की स्मृति
उस नदी के साथ हम हैं...रहेंगे
प्रज्ञा / 5
मेरे हर लिखे पर उनकी छाप है
वंदना अवस्थी दुबे / 11
पुस्तक समीक्षा
दस प्रतिनिधि कहानियाँ
समीक्षक : से. रा. यात्री / लेखक : बलराम / 15
सही शब्द की तलाश में
ब्रजेश कानूनगो / दुर्गाप्रसाद झाला / 24
किसी शहर में
दीपक गिरकर / अश्विनीकुमार दुबे / 25
एक यात्रा यह भी
त्रिलोकी मोहन पुरोहित / माधव नागदा / 27
शिलाएँ मुस्काती हैं
डॉ. मनोहर अभय / यामिनी नयन गुप्ता / 30
वह कौन थी
बी आकाश राव / संजीव / 32
निन्यानवे का फेर
दीपक गिरकर / ज्योति जैन / 34
मन बावरा
अनीता रश्मि / घनश्याम श्रीवास्तव / 36
इंसानियत डॉट कॉम
रमेश खत्री / नीलिमा टिक्कू / 38
जापानी सराय
देवेश पथ सारिया / अनुकृति उपाध्याय / 40
समय पर दस्तक
सूरजमल रस्तोगी / संदीप तोमर / 42
कुछ तो कहो गांधारी
सुषमा मुनीन्द्र / लोकेन्द्र सिंह कोट / 44
यह पृथ्वी का प्रेमकाल
लक्ष्मीकांत मुकुल / अरविंद श्रीवास्तव / 46
बनियों की विलायत
संदीप वर्मा / राजा सिंह / 48
कबूतर का कैटवॉक
ब्रजेश कानूनगो / समीक्षा तैलंग / 63
दुनिया लौट आएगी
नीलोत्पल रमेश / शिव कुशवाहा / 64
पीठ पर रोशनी
नीलोत्पल रमेश / नीरज नीर / 66
कौन देस को वासी
रंजना अरगड़े / सूर्यबाला / 68
सरहदों के पार, दरख़्तों के साये में
सुधा ओम ढींगरा / रेखा भाटिया / 72
स्वाँग
ब्रजेश राजपूत / डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी / 74
रिश्ते
शैलेन्द्र शरण / पंकज सुबीर / 75
बहती हो तुम नदी निरंतर
शैलेन्द्र शरण / श्याम सुन्दर तिवारी / 76
कोरोना काल की दंश कथाएँ
शैलेन्द्र शरण / अजय बोकिल / 77
बलम कलकत्ता
टीना रावल / गीताश्री / 78
अंधेरा पाख और जुगनू
राहुल देव / राजेंद्र वर्मा / 79
फ्लैशबैक
प्रकाश कांत / ब्रजेश कानूनगो / 80
श्वान पुराण
रीता कौशल / आदित्य कुमार राय / 91
पुस्तक आलोचना
खिड़कियों से झाँकती आँखें
डॉ. सुधांशु कुमार शुक्ला / सुधा ओम ढींगरा / 81
केंद्र में पुस्तक
दृश्य से अदृश्य का सफ़र
रमेश दवे, हरिराम मीणा, गोविंद सेन, जसविन्दर कौर बिन्द्रा
सुधा ओम ढींगरा / 50
यही तो इश्क़ है
ओम निश्चल, शैलेन्द्र शरण / पंकज सुबीर / 60
शोध आलेख
अकाल में उत्सव
अतुल वैभव / पंकज सुबीर / 19
पूँजीवादी-उपभोक्तावादी संस्कृति और स्त्री
दिनेश कुमार पाल / 87
नई पुस्तक
कुछ इधर ज़िंदगी, कुछ उधर ज़िंदगी / गीताश्री / 17
माया महा ठगनी हम जानी / अश्विनीकुमार दुबे / 18
पुकारती हैं स्मृतियाँ / आनंद पचौरी / 33
अनामिका / गजेन्द्र सिंह वर्धमान / 41
एक था भौंदू व अन्य लघुकथाएँ / काजल कुमार / 43
फटा हलफ़नामा / डॉ. श्याम बाबू शर्मा / 49
वायरस से वैक्सीन तक / आदित्य श्रीवास्तव / 71
उपन्यास अंश
सीतायन (बांग्ला उपन्यास)
मल्लिका सेनगुप्ता / अनुवाद : सुशील कान्ति / 92

संपादकीय

बहुत अँधेरा हो गया है हमारी दुनिया में

कोरोना की दूसरी लहर आकर चली गई और अपने साथ बहुत कुछ ले गई। बहुत से लोग अब केवल हमारी स्मृतियों में ही रहेंगे। यह दूसरी लहर पहली लहर की तुलना में ज़्यादा भयावह थी। बदहवास दौड़ते हुए लोग, अपने परिजनों की चिंता में व्याकुल सड़कों पर व्याकुल भागते हुए घबराए हुए चेहरे, और इन सब के बीच लगातार मिल रही दुखद ख़बरें। ऐसा लग रहा था जैसे हम सब किसी दुखद स्वप्न में हैं, जो समाप्त होने का नाम ही नहीं ले रहा है। ऑक्सीजन, दवा, वैक्सीन, इंजेक्शन.... वह सब जो हमें, हमारे परिजनों को मिलना चाहिए था, वह नहीं मिला। वह कार्य जिसके लिए हम सरकारों को चुनते हैं, वह कार्य नहीं हुआ। हमें कहा गया कि इतनी अधिक जनसंख्या वाले देश में एक सरकार कर भी क्या सकती है। कितने दुख की बात है कि हम अभी भी उस भ्रम में जी रहे हैं, जिस भ्रम में हमें लगातार पिछले कई वर्षों से रखा जा रहा है। हम में से कई लोगों ने अपने परिजनों को खोया है। जिन्होंने खोया है उनके लिए अब कोई दिलासा काम नहीं करने वाला। हम साहित्य समाज के लोगों ने भी इस साहित्यिक परिवार के कई जगमगाते सितारों को खो दिया। सितारे, जो अब सचमुच सितारों के ही जहाँ में जाकर बस गए हैं। रमेश उपाध्याय, लाल बहादुर वर्मा, कांति कुमार जैन, प्रभु जोशी, शंख घोष, राजकुमार केसवानी, कुँअर बेचैन, मंज़ूर एहतेशाम, मुशर्रफ़ आलम ज़ौकी, महेंद्र गगन, ज़हीर क़ुरैशी, रामरतन अवस्थी, श्याम मुंशी, युगेश शर्मा, नरेंद्र कोहली, शमीम हनफ़ी, विभा देवसरे, राजेन्द्र राजन, रेणू अर्गल, तरन्नुम रियाज़, वर्षा सिंह, चंडीदत्त शुक्ल, राजेश झरपुरे, दिवाकर भट्ट, अनुराग सीठा जैसे क़लम के सिपाही अब हमें किसी आयोजन में, किसी पुस्तक मेले में नज़र नहीं आएँगे। कोरोना के रूप में आए काल ने झपट्टा मार कर इन्हें हमसे छीन लिया। इन लोगों के जाने से हमारा पहले से ही बहुत छोटा समाज अब और छोटा हो गया है। कुछ मुट्ठी भर लोग जो अब भी साहित्य की मशाल को इस घने अँधेरे में ऊँची किए हुए लगातार चल रहे थे, वे चले गए। चले गए, इस मशाल को ऊँचा रखने की ज़िम्मेदारी हम सब पर सौंप कर। किसी भी व्यक्ति के जाने से जो शून्य बनता है, उसे कोई दूसरा नहीं भर सकता। कोई दूसरा, दूसरा होगा, वह नहीं होगा। हमारी साहित्य आकाशगंगा के यह जो जगमगाते सितारे अचानक बुझ गए हैं तो ऐसा लग रहा है कि बहुत अँधेरा हो गया है हमारी दुनिया में। ऐसा लग रहा है जैसे हम बचे हुए लोग बहुत अकेले हो गए हैं। एक सूनापन मन में पसर गया है, इस दूसरी लहर के जाने के बाद। जैसे किसी तूफ़ान के आकर चले जाने के बाद होता है। वह शांति नहीं होती, वह भय के कारण उत्पन्न हुई चुप्पी होती है। वे लोग जो मृत्यु के तांडव को देखने के बाद बच जाते हैं, वे बहुत दिनों तक अपने आप में नहीं लौट पाते। हर घड़ी एक प्रकार का भय उनके आस पास मँडराता रहता है। शायद हम सब भी इसी भय के साये में हैं। दूसरी लहर के बाद ज़िंदगी तो पटरी पर आ जाएगी, पर मन को पटरी पर आने में शायद बहुत समय लगेगा। पिछले कुछ महीनों में इतना कुछ घट गया कि मन को अभी उस पर विश्वास करने में ही बहुत समय लगेगा। मन तो अभी भी यही मान कर बैठा है कि विश्व पुस्तक मेले में किसी कोने से मंथर गति से चलते हुए, अपने चेहरे पर वही मृदु मुस्कान लिए रमेश उपाध्याय जी दिखाई पड़ेंगे। इंदौर में किसी आयोजन में प्रभु जोशी जी अपनी सजीली वेशभूषा में अपने ही अंदाज़ से भाषण देते मिलेंगे। भोपाल के आयोजनों में महेंद्र गगन जी, श्याम मुंशी जी, मंज़ूर एहतेशाम जी, ज़हीर क़ुरैशी जी और युगेश शर्मा हमेशा की तरह श्रोताओं में बैठे दिखाई देंगे। कुँअर बेचैन जी और राजेन्द्र राजन जी के रस भरे मधुर गीत अभी भी कवि सम्मेलन के मंचों से गूँजेंगे। राजकुमार केसवानी जी का कॉलम अगले संडे फिर पढ़ने को मिलेगा। मन अभी भी समझने को तैयार नहीं है कि ऐसा नहीं होगा, ऐसा अब कभी नहीं होगा। मन तो बावरा है, कौन समझा सका है इसे, कोई नहीं.....। **आपका ही**

शहरयार

शहरयार
शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.
466001,
मोबाइल- 9806162184
ईमेल- shaharyarcj@gmail.com

व्यंग्य चित्र- काजल कुमार

kajalkumar@comic.com

पिता की स्मृति

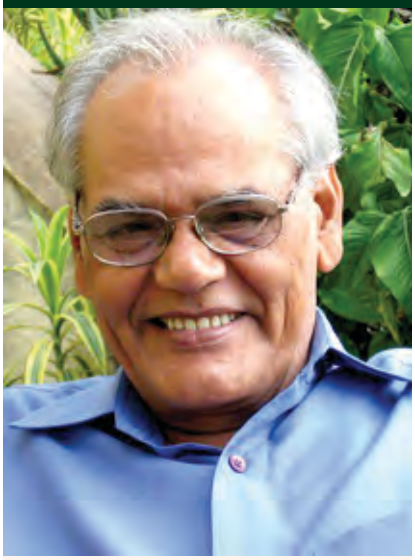

उस नदी के साथ हम हैं...रहेंगे

प्रज्ञा

प्रज्ञा
एच 103, सेकेंड फ़्लोर,
साउथ सिटी 2, सेक्टर 50
गुरुग्राम, हरियाणा 122018
मोबाइल- 9811585399
ईमेल- pragya3k@gmail.com

तुम्हारे हाथों में इक सलीक़ा है
मैं साथ बैठी रही
कुछ सीखती रही
कलम को कुदाल-सा थामे
किसान से मेहनती तुम
सुबह से शाम तक फ़सल के बीज बोते।
इस दुनिया से परे
नई दुनिया के रचते सपने
किसी दार्शनिक से गम्भीर।
क़लम से काग़ज़ पर उतरती
सुंदर सधे शब्दों की तुम्हारी लिखाई
जिसमें रोपा था तुमने जीवन भर का अनुशासन
जिनमें फूँकी थी प्राणवायु-सी क्रांति।
एक मुकम्मल रचना की तलाश में
तुम फाड़ते जाते असंख्य काग़ज़
और काग़ज़
और और और
उस समय कितने निर्मम थे
तुम्हारे हाथ
नहीं थी उनमें थोथे गर्व की एक भी उमंग।
पितृविहीन बचपन में तुम्हें नहीं मिले खिलौने
कौन देखता तुम्हारा रूठना
तुमने सीख लिया था स्कूली बस्ते में
बाल हठों को बंद करना
तुम्हारे क़दम धरती नापते रहे
हाथों के भरोसे।
छापेख़ाने के मुस्तैद मज़दूर तुम
थकने न दिए उम्मीद भरे हाथ
अभावों से भरे जीवन
और दुनिया को
अपने हाथों से सहलाकर

पिता तुमने दिए अनेक भाव
मैं साथ बैठी रही
कुछ सीखती रही।

(पिता के जाने के बाद लिखी पहली कविता)

कथाकार- आलोचक- नाटककार- चिंतक- अध्यापक- कथन के संपादक- युवाओं के विश्वासपात्र मित्र-पिता रमेश उपाध्याय की अनेक छवियाँ उन पर लिखते हुए एक तेज़ भागती रेलगाड़ी की तरह सामने से गुज़र रही हैं। मैं एक छवि को पकड़ने की कोशिश करती हूँ तो दूसरी पल भर में सामने आ जाती है उसकी ओर देख भर पाती हूँ कि फिर दूसरी-तीसरी-चौथी छवियाँ एक के बाद एक दौड़ती चली जाती हैं। मेरी आँखें धुँधला जाती हैं। मैं हथेलियों से आँखें पोंछकर फिर दृष्टि को एकाग्र करती हूँ तो स्मृतियों की अंतहीन श्रृंखला-सी भागती छवियों में सारी छवियाँ मिलकर पिता को साकार करने लगती हैं। स्मृति की अंतहीन रेलगाड़ी मेरे सामने से गुज़रती है और हर डिब्बे के बाद एक छोटे से वक़्फ़े में पिता की आदमक़द शख्सियत मेरे सामने खड़ी हो रही है। उनके हाथों की ख़ुशबू, उन सुंदर हाथों में भरा प्यार, उन हथेलियों की कोमलता से भरी दृढ़ता इन दिनों बहुत याद आती है। उन की कहानियों-नाटकों पर लिखना मेरे लिए जितना आसान है उन पर लिखना उतना ही कठिन। शंका है जाने सलीक़े का कुछ लिख भी पाऊँगी या नहीं।

असमय संसार से विदा हुए पिता के अंतिम दिनों की पीड़ा बार-बार मुझे बेचैन करती है। उन्हें अभी नहीं जाना था। शरीर से निरोगी, मन से अटूट आशावादी,जीवन में सदा अनुशासित दिनचर्या जीने वाले पिता की ज़िंदादिल हँसी अभी तक कानों में गूँज रही है। लगता है जैसे एक विभ्रम में जी रही हूँ। एक झीना-सा पर्दा है और अभी पिता उसे सरकाएँगे और मेरे सामने साक्षात खड़े हो जाएँगे -प्रज्ञा,संज्ञा,अंकित के डैडी, राकेश के सर, तान्या के दोस्त नाना और मम्मी को बेहद प्यार करने वाले जीवनसाथी। अभी 'सुधा जी-सुधा जी' की उनकी आवाज़ सारे घर में गूँज जाएगी, 'कहाँ हो बच्चों, नीचे आ जाओ' जैसे

शब्द सुनकर हम ऊपर की मंज़िल से दौड़ते हुए नीचे आएँगे और वे चाय बनाकर कभी ताश खेलने तो कभी अपनी नई लिखी कहानी सुनाने, कभी हमारी सुनने, कभी कोई पंसदीदा फिल्म देखने या फिर किसी ज़रूरी निर्णय के लिए हम पाँचों की पंचायत और बाद में राकेश और तान्या के संग सप्तऋषि मंडल बिठाएँगे।

23 अप्रैल, 2021 की रात बीतने तक जो पिता हम सबके लिए 'हैं' थे वे चौबीस अप्रैल होते न होते 'थे' हो गए। अचानक... पल भर में। अभी उन्नीस अप्रैल को तो मुझे किए आखिरी मैसेज में उन्होंने लिखा था-''बहुत नींद आ रही है बाकी सब ठीक है।'' और तेईस की रात को वे पूरे साहस से नज़दीक आती मृत्यु का सचेत सामना कर रहे थे। अस्पताल के मेल वार्ड में करोनाग्रस्त छोटी बहन के साथ वाले बेड पर लेटे उन्होंने अंतिम संदेश राकेश के पास भिजवाया-''प्रिय राकेश मेरे सारे आर्गन फेल होते लग रहे हैं।'' संज्ञा उनकी ओर से ये संदेश टाइप करते हुए उन्हें घर चलने के लिए झकझोर रही थी। संदेश पढ़ते ही राकेश लगातार फ़ोन पर संज्ञा को डॉक्टर और मदद लाने के ज़रूरी निर्देश दे रहे थे और मैं उस रात राकेश के सामने बैठी भरोसा देने वाले डॉक्टर्स को काँपती उँगलियों से फ़ोन मिला रही थी। उन दोनों की बातें सुनते स्थितियों के सामान्य होने की आशा और समय की गहरी निराशा के थपेड़ों में झूल रही थी। एक-एक घड़ी हावी होती जा रही थी। कुछ देर बाद एक कमरे में सारे जहाँ की चुप्पी अचानक चीख बनकर गूँज गई। जीवन भर बेहतर दुनिया की रचनात्मक और आंदोलनधर्मी लड़ाई लड़ता एक आदमी उसी दुनिया के क्रूर तंत्र का शिकार होकर शांति से सबको अलविदा कह गया। वह आदमी जिसके पास जीने के अनेक कारण थे। जिसे अपने परिवार के लिए, अपने सपनों के लिए, इस दुनिया को ख़ूबसूरत देखने के लिए, अनेक यात्राएँ करने के लिए, अनेक कहानियाँ-उपन्यास पूरा करने के लिए जीना था। पूँजीवादी दुनिया के तेज़ बदलावों में परिवर्तित हो रहे अर्थतंत्र और समाजशास्त्र की कितनी और किताबें अभी पढ़नी थीं, कितने विचार अभी दुनिया से साझे करने थे। जिसे अभी और जीना था। वह इंसान सारे सपने-इच्छाएँ- योजनाएँ लिए चिकित्सा और सुविधाओं के अभाव में दुनिया से असमय रुख़सत हो गया। आज जब उन पर लिख रही हूँ तो सोच रही हूँ माता-पिता के जीवित रहते उन पर लिखने का चाव, उत्साह, ललक गुणात्मक रूप में कितना भिन्न होता है। इनमें से किसी के जाने के बाद उन पर लिखना उनके जाने जितना ही पीड़ादायक होता है। जीवित रहते हुए हर स्पंदन से परे भी और निस्पंद रहते हुए स्पंदन को लौटाने की जी तोड़ कोशिश के संग भी। निराशा के इस दौर में जबकि आज हर घर में हमारी आपबीती-सी कोई कहानी घटित हो चुकी है, घट रही है तब डैडी के सकारात्मक शब्द जीवन की दिशा देते हैं-''बेटा! मज़बूत रहो और अपना काम करो। रोने से कुछ हासिल नहीं होता।''

पिता का जीवन, संघर्षों के बीच खुशियाँ तलाशते, खुद को निखारते और आगे बढ़ता बीता। कम उम्र में पिता को खो देने से लेकर पढ़ाई के लिए रिश्तेदारों पर निर्भर रहना और गोर्की की आत्मकथा 'मेरे विश्वविद्यालय' की तर्ज पर अपने विश्वविद्यालय खोजने में बीता। माँ-बहन-भाई से दूर अपने जीवन की राह बनाते जल्द पैरों पर खड़े होकर उस बच्चे को घर का सहारा बनना था। वह जीवन की सर्वग्रासी लहरों और तेज़ अंधड़ में भी अटल रहा। न पलायन किया, न कर्त्तव्यविमुख हुआ, न अंधआस्था का भक्त बना, न जीवन की

बुराई में क़ैद होकर सिमट गया बल्कि हर ठोकर में कुछ अनुभव सँजोकर बढ़ता गया। कभी दिल्ली के राजघाट के करीब डेरी किशनगंज झुग्गी बस्ती में रहने वाला एक मज़दूर लड़का लेखक बना, प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय का अध्यापक नियुक्त हुआ। अपने सर पर छत का इंतज़ाम किया और एक प्यारा परिवार बनाने के साथ उसने अपनी वैचारिक यात्रा के अनेक साथियों सहित अपना एक वृहत्तर रचनात्मक संसार बनाया। एक बड़ा परिवार बनाया। इस लेखक ने हमेशा अपने बच्चों को समझाया रक्त संबंध ही नहीं अर्जित संबंध इस बड़ी दुनिया में जीने के लिए बड़ी ताक़त हैं। इसीलिए हम तीनों बहन-भाई के कुनबे में अनेक चाचा-ताऊ, ताई-चाची दीदी-भैया जुड़ते गए। बी-तीन बटा चार, राणा प्रताप बाग, दिल्ली का घर और उसका एक कमरा बचपन और उसके बाद भी धर्मशाला जैसा लगता था। मुंबई, राजस्थान,बिहार, हिमाचल, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, हरियाणा आदि और दिल्ली के दूर दराज इलाकों से लोग लगातार सामान बाँधे घर आते रहते। दिनों-दिन बने रहते। घर में बहस और हँसी-ठहाके गूँजते। इन सबके बीच हमारी ज़िंदगी विस्तार पाती। एक ज़िंदादिल लेखक का भरापूरा घर जो लगभग साठ सक्रिय बरसों में क़लम का पक्का मजदूर रहा।

बचपन में अन्य घरों के पिताओं की तरह हमारे पिता हमें रोज़ नियम से पढ़ाने नहीं बैठते थे। और बैठते भी थे तो स्कूल की कक्षा का सीमित ज्ञान उनकी प्राथमिकता कभी नहीं रहा। हमारे ज्ञानकोश को उन्होंने अनेक रूसी लेखकों की कहानियों, प्रेमचंद के मानसरोवर के खंड, अनेक देशों की लोककथाओं और हमारी इच्छा पर कल्पना से सजाकर तत्काल गढ़ी अनेक लंबी कहानियों और अपने बचपन के जीवंत क़िस्सों से भरा था। गणित के सवालों, भाषा के व्याकरण से हमेशा बढ़े रहे हमारे लिए देश-दुनिया के सवाल और नए सामाजिक-राजनीतिक व्याकरण।

बचपन का पहला ककहरा था जाति, धर्म, भाषा, लिंग, सम्प्रदाय किसी भी आधार

पर बरती गई असमानता के विरोध के मूल्य को अर्जित करना और उसके संरक्षण के साथ साहस से उसका विकास करना। उस समय ऐसे कोई सिद्धांत हमें रटवाए नहीं गए थे। जीवन की सहज नदी में तरल जल सी ये गतिशीलता हमारे समक्ष उदाहरण और व्यवहार से राह देकर गुज़ारी गई थी। ऐसी कई घटनाएँ मुझे याद आती हैं। सन् 1975 में जब मेरा छोटा भाई अंकित पैदा हुआ तो हमारी दादी और बुआजी घर आए। उन्होंने छोटी बहन संज्ञा के साँवलेपन की तुलना अंकित के गोरेपन से की। पिताजी ने तुरंत प्रतिवाद किया और स्पष्ट कहा-''यह बात आज तो कही पर आगे से यह बात कभी नहीं कहना।'' उनकी दृढ़ता, चेहरे पर उभरा ग़ुस्सा और माथे की तनी रेखाएँ-कसे होंठ आज भी मुझे याद हैं। अपनी माँ और बड़ी बहन के आगे भी वे बेखौफ़ होकर अपनी बात कह रहे थे। अनजाने ही मुझे सीख मिल रही थी। उनकी लगाई और माँ की सींची पाठशाला के सबक जीवन के सबसे ज़रूरी सबक़ रहे।

बचपन की अनेक बातों और यादों के बीच एक चेहरा उभरता है रामो जी का। माँ-पिताजी की की देखादेखी हम भी बचपन से उन्हें रामोजी ही पुकारा करते। रामो जी अधेड़ उम्र की औरत थीं। खिचड़ी बालों की एक मरियल-सी चोटी जिनकी कमर पर झूलती। चाँदी या गिलट के मज़बूत कड़े जिनके हाथों-पैरों की शोभा थे। आँगन धोने और पानी के काम के कारण जो खुले पाँयचों की अपनी सलवार को हमेशा नाड़े में खौंसकर रखती थीं। जिसके कारण कुर्ते से नीचे घुटने तक उनकी सलवार दीखती और नीचे खुले हुए पैर। रामो जी गली के घरों से कूड़ा उठाती थीं और आँगन धोया करती थीं। इतवार के दिन जब मम्मी को पढ़ाने के लिए स्कूल न जाना होता। वे घर में होतीं और सबको गर्मागर्म खाना खिलाने की अपनी साप्ताहिक कसक को पूरा कर रही होतीं तो सबसे पहले खाने का हिस्सा रामो जी का निकलता। गर्मागर्म कढ़ी, राजमा-चावल, छोले या कोई सामान्य सब्ज़ी जिसे मैं रामो जी को देकर आती। रोटी अपने घर से वो लेकर आती थीं। बचपन से ही माँ-पिताजी ने सबको नमस्ते कहने की आदत डाली थी सो जैसे ही रामो जी को नमस्ते कहते वे हम भाई-बहनों की जोड़ी बने रहने का प्यारा आशीष दिल से देतीं। नमस्ते और आशीष का यह सिलसिला इतना आगे बढ़ चुका था कि यदि कई बार रामो जी चुप रहतीं तो मैं उन्हें याद दिलाती कि आज उन्होंने कुछ नहीं कहा। मुझे लगने लगा था कि रामो जी जिस दिन आशीष नहीं देंगी कुछ ठीक नहीं रहेगा।

यों रामो जी का प्रसंग देखने में बड़ा सामान्य लग सकता है पर इसके सूक्ष्म रेशे देखे जाएँ तो कुछ और भी दिखाई देगा। एक बुनियादी अंतर बचपन में ही महसूस होता था कि जिन रामो जी को आदर से ताज़ा खाना माँ भिजवातीं और जो हमारे ही घर पानी माँगकर पीतीं उन रामो जी से मकान के अन्य हिस्सों में वैसा व्यवहार नहीं होता था। पिताजी से बड़ी होने के कारण रामो जी पिताजी से अपनी हरियाणवी बोली में कभी-कभार खुश होकर बात कर लेतीं। पूरे मकान के चार घरों में पिताजी के अलावा मैंने किसी पुरुष को उनसे घर-परिवार की बात करते नहीं देखा-सुना। उस समय जाति की तहें भले ही हमारे आगे पूरे रूप में नहीं खुल पाईं थीं पर ये बात छुपी न रह सकी क़ि जो हमारे लिये रामो जी थीं वो अन्य घरों के बड़े और छोटों के लिये रामो थी। मैं देखती अन्य लोग उन्हें कभी-कभार खाना देते थे पर एक निश्चित दूरी से। घर में जाति-धर्म को लेकर कभी भूले से भी कोई अपशब्द

इस्तेमाल नहीं होता था और सब बड़ों को, सबके काम को आदर देने के कारण मेरे लिये जाति-धर्म की अमानवीय शृंखलाएँ कभी नहीं बनी। बल्कि उनके स्थान पर एक ऐसा रिश्ता लोगों से बना जो बहुत सहज था। जहाँ रामो जी के संग आती उनकी बेहद ख़ूबसूरत बेटी वीरो खेलों में हमारी साथी थी वहाँ बर्तन सफाई के लिये घर आती आँटी की बेटी विजय भी हमारी पक्की दोस्त थी। पिताजी ने बताया था एक बार एक नुक्कड़ नाटक देखने वे बादली गए थे। वहाँ अचानक एक लड़की की आवाज़ ने उन्हें चौंका दिया-''बाऊजी यहाँ कहाँ हाँडते फिर रहे हो?'' पिताजी ने एक पल चौंककर देखा और दूसरे पल ठठाकर हँसे। वह लड़की रामो जी की लड़की वीरो थी। बाद में जब भी वीरो आती वे उसके सामने यह शब्द दोहराते-''बाऊजी यहाँ कहाँ हाँडते फिर रहे हो?'' और वीरो सुंदर दूधिया दाँतों की हँसी बिखेर देती।

इसी तरह दो और बातों ने जीवन में साम्प्रदायिकता और जातिवाद को कभी हौआ नहीं बनने दिया। पहले व्यक्ति थे हमारे जवाहर मामा जी। यह तथ्य हमें बहुत बाद में जाकर मालूम हुआ कि वे हमारी माँ के सगे भाई कुलदीप शर्मा की बजाय जवाहर सिंह सागर हैं। ननिहाल जाने पर बहुत बार समझ भी नहीं आता कि दोनों मामा रहते आगरा में हैं पर दोनों अलग क्यों रहते हैं? रात-दिन घर में आना-जाना लगा रहता है पर एक शर्मा और एक सागर क्योंकर? गर्दन मटकाकर नाचने वाली मिट्टी की नर्तकी गुड़िया चाहिए तो जवाहर मामाजी से ज़िद्द। आगरा में बुलेट की सवारी चाहिए तो मामाजी की बुलेट। उनके बेटों-बेटियों के जन्म पर उनके घर जाना-आना भी होता और उनसे राखी के बंधन भी निभाए जाते। जिस तरह बचपन में स्यौहारा वाली मौसी के बेटों को चिट्ठी में राखी या भाई दौज का टीका रखकर भेजती, उसी तरह माँ की ओर से दोनों मामाओं और जवाहर मामाजी के बेटे आनंद को राखी-टीका भेजती रही। मैंने वर्षों इसे नियम की तरह निभाया। बहुत बाद में जब मामाजी से जुड़ा सत्य सामने आया भी तो वो मेरे और भाई-बहन के लिये सिरे से महत्त्वहीन था। परिवार से मिली इन सहजताओं ने इंसानी भेदभाव की कठोर दीवारों को ढहा दिया और मनुष्यविरोधी खाइयों को पाटकर उसमें अनेक फूल उगा दिए। जाति को मैंने अपने लिये इतना महत्त्वहीन माना कि दसवीं कक्षा में अपने नाम के आगे लगे 'उपाध्याय' को हटाने का निर्णय लेकर पिताजी से बात की तो बिना एक पल गँवाए उन्होंने कहा जैसी तुम्हारी इच्छा। दसवीं कक्षा की लगभग सोलह साल की उम्र में उन्होंने मेरे निर्णय का खुले दिल से सम्मान किया। उस दिन के बाद 'उपाध्याय' मेरे नाम से हट गया और तबसे आज तक प्रज्ञा ही हूँ। हालाँकि उपाध्याय पिताजी ने भी इसलिए लगाया था क्योंकि उसका अर्थ है वह शिक्षक था जो जीविका के लिए ज्ञान बाँटता है।

एक दूसरा वाक़या जिसने असमय बचपन को प्रौढ़ और वैचारिक बनाया, वह था हमारी नीलम मौसी का अंतर्धार्मिक विवाह। उस समय मेरी उम्र पाँच साल से ज़रा ऊपर की रही होगी कि माँ की शादी के बाद से साथ रहने वाली उनकी बहन ने दिल्ली विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान पढ़ाने वाले युवा प्राध्यापक से कोर्ट मैरिज कर ली। मौसाजी मुसलमान थे। पिताजी विवाह के बाद उनसे मिलकर आए और गली में लड्डू बँटवाये। कई थालियों में पाँच-पाँच लड्डू सजाकर माँ के संग मैं ही लोगों के घर देकर आई थी। उसी रात नाना आगरा से आये। मैं नाना को देखकर झूम गई और गणित के उलझे सवालों को लेकर उनके पास चली आई। गर्मी की छुट्टियों में नाना हमें गणित पढ़ाया करते थे पर उस रात नाना उदास दिख रहे थे। माँ-पिताजी से बातचीत में उन्होंने कहा कि उनकी लड़की की ज़िम्मेदारी दोनों ने ठीक से नहीं निभाई। पिताजी उन्हें लगातार समझा रहे थे। नानी ने तो जन्म भर मौसी का मुँह नहीं देखने की कसम खाई। कई साल बाद ज़िद करके पिताजी ही मौसी-नानी के बीच फैले सात जंगल काटने मौसी-मौसा और उनकी बेटी को नाना के घर ले गए थे पर चतुर नानी ने पिछले दरवाज़े से ओझल होकर अपनी क़सम निभाई। ब्राह्मण घर में एक मुसलमान दामाद की वजह से उनकी प्रतिष्ठा पर बट्टा जो लग गया था। एक ऐसी कालिख जो कोई साबुन नहीं धो सकता था। पर हमें, हमारे मौसाजी बहुत पसंद थे। वे जब भी घर आते खुशियाँ संग लाते। खाने-पीने के समान के साथ किताबें, खेल-खिलौने, नए-नए कपड़े और खूब सारी खुशियाँ। पिताजी के संग उनकी खूब वैचारिक बहसें होतीं। दोनों वामपंथी थे पर दोनों की पार्टी और विचार भिन्न थे। मौसी अब हमें और भी प्यार करने लगी थीं। बचपन के उन दिनों में हमारे त्यौहारों में ईद भी दीवाली की तरह शामिल हो गई थी जबकि गली के कई घर ईद के नाम पर नाक-भौं सिकोड़ते। सबसे अच्छी बात थी कि मौसी हमारे घर से तीन-चार किलोमीटर की दूरी पर मॉडल टाउन में रहती थीं जहाँ हम कभी ऑटो में तो कभी रिक्शे में और कभी तेज़कदम चाल वाले पिताजी के संग पहुँच जाते। कुछ समय बाद उनकी बेटी के जन्म ने हमें एक नन्हीं बहन भी दी तो जुड़ाव और गहरा हो गया। हमारे मोहल्ले के लोगों, सहेलियों की माँओं के लिये मौसी का विवाह हमेशा चर्चा का ही विषय रहा। जो बात लोग माँ-पिताजी से खुलकर नहीं पूछी जा सकती थी वह कुरेद-कुरेदकर मुझसे पूछी जाती। मौसी और मौसा का गृहस्थ जीवन कैसा है? क्या मौसी का नाम बदल गया है? क्या वो भी मुसलमान हो गई हैं?-जैसे वज़नदार सवाल मेरे बालमन पर तेज़ प्रहार करते। हर बार एक हथौड़ा गड्ढे को कुछ और गहरा कर देता। कुछ समय इन प्रहारों को झेलने के बाद उस गड्ढे को भरने का इलाज मैंने खुद ईजाद किया। परिचितों के आत्मीय चेहरे जैसे ही अपने खोल से निकलकर क्रूर होने लगते मैं तपाक-से मौसा-मौसी के जीवन के प्यारे चित्र उनके आगे सजाने लगती। उनकी यात्राएँ, उनके घर की मस्तियाँ, उनके सुख के विस्मयकारी चित्र खड़े कर देती। ऐसा करने पर कुछ ही देर में उन आत्मीय चेहरों की उम्मीदें पस्त पड़ जातीं। मौसी के जीवन में निराशा, दुख का एक चिह्न उन्हें न मिलता वे मुझे मुक्त कर देते पर मुक्ति के उस पल में मैं पहले उनकी झुँझलाहट और खीज को जी भर महसूस

करती। इस सबके पीछे परिवार द्वारा सौंपे गए वे मूल्य थे जो जाति-धर्म की अपेक्षा इंसान के लिए जीने वाले बेहतर समाज के हामी थे। पिता ने कभी इस रूप में हमें कुंठित नहीं होने दिया कि हम अपनी मौसी के निर्णय पर सामाजिक पूर्वाग्रहों के तले दबकर ग्लानि महसूस करें।

पिताजी ने एक ओर हमारे परिवार में समानता के मूल्य रोपे तो दूसरी और उन्हें बचाए रखने का साहस भी दिया। इसके बाद जो मूल्य उन्होंने हमारी ज़िंदगियों में रोपा वह था आज़ादी का। खेलने-कूदने, पसंदीदा विषयों और किताबों को पढ़ने की आज़ादी, जीवन की दिशा चुनने की आज़ादी और बाद में जीवनसाथी या अपनी पंसद का काम चुनने की आज़ादी। उनका मानना था-"आज़ादी हमें कोई नहीं देता, यह हमें खुद हासिल करनी पड़ती है। उसे हासिल करने के लिए हमें खुद को आज़ादी हासिल करने लायक बनाना पड़ता है। पढ़-लिखकर, जीवन और जगत् को समझने लायक बनाकर अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में खुद जीने लायक बनाकर, अपनी ज़िंदगी अपने ढंग से जीने के लिए संघर्ष करने में खुद को समर्थ बनाकर और इसके लिए उचित साधन और आवश्यक शक्ति जुटाकर।" पिताजी ने अपने जीवन में प्रतिकूलताओं से जूझकर आज़ादी हासिल की थी पर उनका मक़सद निजी आज़ादी कभी नहीं रहा। वह परिवार, समाज, देश और दुनिया में सच्चे जनतंत्र के पक्षधर रहे। हम तीनों भाई-बहनों ने अपने जीवन को जिस तरह जीना चाहा जिया है। पिताजी के साथ तो बचपन से बाद तक उनका परिवार किसी निर्णायक क्षण में साथ नहीं रहा पर हमारे साथ पिताजी की दृढ़ता से पीठ ठोकती हथेली, स्नेह से कांधे पर थपथपाती हथेली और माँ की सहमति की मुस्कान साथ रही। लेकिन इस आज़ादी को चाहने और पाने के लिए जिस तैयारी की हमें ज़रूरत थी पिताजी लगातार उसके लायक बन पाने के लिए हमें आगाह करते रहे। उनकी दृष्टि में आज़ादी जैसा मूल्य पाने के लिए सिर्फ इच्छा नहीं उसके लिए एक बड़े दायित्व बोध की ओर उन्मुख होना

निहायत ज़रूरी था। उन जैसा पिता जो सचेत रूप से दृढ़ मूल्यों को हमारे भीतर रोप रहा था वह कोमल के साथ निर्मम भी बना रहा। हमारी हर बात पर उन्होंने हमेशा रीझकर हमें भावुकता से आगे नहीं बढ़ाया बल्कि उस राह की चुनौतियों और संकटों से सामना करने अपने काम को और बेहतर करने की सीख भी दी और हमारी आलोचना भी की। इस आलोचना ने हमें अपने द्वारा किए जाने वाले कामों के प्रति संशकित किया। काम को मेहनत, ईमानदारी से करने और बेहतरी के लिए योग्यता अर्जित करने के लिए सदैव प्रेरित किया।

बचपन से अब तक इस तैयारी को हम अर्जित करते रहे हैं पर यह हमने समूची पा ली हो ऐसा नहीं है। पिताजी की सीख हमेशा एक बहती नदी की मानिंद हमारे साथ है और रहेगी। यह आज़ादी निजी आज़ादी नहीं है जब तक इसका विस्तार नहीं होगा तो आज़ादी और उसके साथ समानता और बंधुत्व के मूल्य भी न सही तरह परिभाषित होंगे न ही व्यापक धरातल पर अर्जित होंगे। राकेश, मैं, संज्ञा और अंकित अपनी क्षमता से आज़ादी के बीजों को रोप रहे हैं। अपने विद्यार्थियों-पाठकों में। अंकित अपनी कला के माध्यम से। पिताजी की हथेली का स्पर्श पीठ पर और उनके शब्दों की गूँज कानों में लिए अभी हमें लंबा सफर तय करना है। जिस जनतांत्रिक परिवार की उन्होंने नींव रखी उसे न सिर्फ बनाए रखना है बल्कि तान्या और अगली पीढ़ियों को तैयार करना है। संघर्ष और प्रतिरोध के औज़ारों को चमकाए रखना है। नदी की तरह गतिशील भी रहना है और रास्ते के ऊबड़-खाबड़ पत्थरों-चट्टानों से जूझना भी है। माँ-पिता की दृढ़ता और अनुशासन ने हमें जूझना सिखाया है। पिता कला के प्रति समर्पित परिवार बनाकर गए हैं। हम सब उस दायित्व बोध से संचालित हैं।

पिताजी की एक शुरूआती कहानी है- 'नदी के साथ एक रात'। अपने शुरूआती दौर में ही इतनी परिपक्व कहानी किसी भी लेखक का मान हो सकती है। इस कहानी का युवक बचपन गुज़ार चुकी अपनी उम्र में भी अपने बचपन के लड़के को नदी की चट्टान पर पूरी ज़िद से लेटे देखा करता है। अपने बचपन से मिलने की जद्दोजहद में नदी के रास्ते के पत्थर-पठार से गुज़रकर नदी के क़रीब लड़के के पास पहुँचने की ललक में नौजवान के घुटने लहूलुहान होते हैं पैर में मोच आ जाती है। बार-बार जीवन के अनेक मोड़ों पर वह बचपन वाला लड़का नौजवान को दिखता है पर नौजवान एक नगर पिता के आदेशों के पालन में जीवन के समीकरण बिठाते हुए अनेक समझौतों के चलते अपनी आत्मा के टुकड़े को कोयले सरीखा पाता है। वह टुकड़ा जिसे सताईस बरस पूर्व उसने नदी के साथ बिताई रात में एक रत्न सरीखा हृदय में सँजोया था। कहानी में बतौर पाठक आप नदी के साथ सँजोए उन पलों के साक्षी रहते हुए जीवन की उन सुविधाजीविताओं और समीकरणों से परिचित होते हैं जहाँ आपके हृदय का रत्न अपनी चमक खोकर कोयले में रूपांतरित होता चलता है। नदी प्रतीक है एक नैतिक मूल्यधर्मी स्थिति का और लड़का प्रतीक है पूरी दृढ़ता से उसके साथ रहने का। सताईस बरस से वह नन्हा लड़का नौजवान को समझाता रहा कि सबसे बड़ा डर मौत का नहीं अकेलेपन का होता है पर नौजवान ने कभी तवज्जो ही नहीं दी। जिस दिन साहस करके नौजवान ने खुद का झकझोरा तो उसने पाया- "बात करते करते न जाने कहाँ से उसके हाथ में वह पत्थर का कोयला आ गया। लेकिन अब वह काला और घिनावना कोयला नहीं

था। दहकता हुआ लाल अंगार था। मैं भयभीत हो गया। अरे, उसका हाथ जल जाएगा। लेकिन उसने वह अंगार मेरी तरफ बढ़ाते हुए कहा-" डरो मत। इसे लो और वहीं रख लो, जहाँ से निकाला था। यह एकांत में तुम्हारा साथ देगा, ठंड में गरमी देगा, अँधेरे में रौशनी देगा। और अब तुम्हारी आत्मा पर बोझ नही होगा। यह तुम्हारी पहचान होगा और यह तुम्हें पहचान देगा। तुम्हारी साथी इसकी रौशनी के लिए तुम्हारे पास आएँगे तुम्हारे दुश्मन इसकी गरमी से तुमसे दूर हटेंगे। और देखो, तुम्हें इसे दुश्मनों से बचाना है वे इसे बुझाने की कोशिश ज़रूर करेंगे लेकिन इस बार तुम इसे बुझने मत देना।" पिताजी की इस कहानी के ये शब्द ही हमारे लिए और उनके पाठकों के लिए उनकी विरासत है जिसके साथ हमें रहना है। वह अंगार हमारी धरोहर है।

पिताजी सशरीर साथ नहीं हैं। यह दौर भी विकट है। महामारी का संकट अभी टला नहीं है। समय अपनी कुरूपता के चरम पर है। इस समय अंतर्मन से यही आवाज़ आती है- समाधिस्थ हो जाओ किसी अजानी कंदरा में तुम कुसमय! इस समय विदा, नमन, अर्पित श्रद्धासुमन, विनम्र श्रद्धांजलि--सभी शब्द जैसे निरर्थक हो चुके हैं। निरर्थक इसलिए कि ये शब्द हर पल दोहराए जा रहे हैं। दोहराए जाकर एक रस्मपूर्ति की शक्ल ले रहे हैं। हर पल किसी घर से एक भरोसा, एक रीढ़, एक फलदार दरख़्त, एक भविष्य छिन रहा है, ढह रहा है। ऐसे में ये शब्द बेमानी लगने लगते हैं। शब्द तब शायद सबसे निरीह होते हैं जब अपनी अर्थवत्ता खो बैठते हैं। वर्ष 2020 और विशेष रूप से 2021-दोनों इतिहास के काले अध्याय सरीखे हर घर में एक दरार, हर समय में एक चीत्कार, हर इतिहास में एक पुकार बनकर याद आएँगे। दुश्यंत कुमार ने कहा था-"कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए कहाँ चराग मयस्सर नहीं सहर के लिए" इन शब्दों को काग़ज़ पर उतारते हुए जितना उबाल दुश्यंत के मन में रहा होगा, जितनी कसक उठी होगी, समय को लेकर जितनी असहायता उन्होंने महसूस की होगी आज ये शब्द उससे भी अधिक पीड़ादायी बनकर दिमाग़ में दस्तक दे रहे हैं। करोनाकाल की विकट, भयावह परिस्थितियों से देश-दुनिया के बद्तर हालात हमें सोचने पर विवश कर रहे हैं अब ये समाज पूँजी से नहीं जन से चलेगा। समाज को गति मुनाफ़े की नीतियों से नहीं सदाशयता और इंसानियत के हर्फों से मिलेगी। समाज वर्तमान के जश्न से नहीं भविष्य की योजनाओं से करवट लेगा। हमारे समय ने यह सीख समाज को दी है जो भावी की शक्ल से अनजान रहेगा उसके समक्ष संकट और भी गहराता जाएगा। पिताजी की लिखी अनेक फेसबुक पोस्ट वैश्विक संकटों के प्रति लगातार आगाह करती रही थीं। उनकी सीख, समझाइश और विरासत हमारे ही नहीं उनके वृहत्तर रचनात्मक परिवार के पास हमेशा रहेगी। वे हमेशा अपने काम, अपनी वैचारिक यात्रा और संघर्ष के चलते न सिर्फ याद किए जाएँगे बल्कि हमें अपने बेहद करीब भी महसूस होंगे।

बहुत से शब्द भले ही इस समय अवमूल्यन की ओर जा रहे हैं पर रचनात्मक हस्तक्षेप से उन्हें अवमूल्यित होने से न सिर्फ बचाना है बल्कि हिम्मत से उनमें नया अर्थ भरना है। उन्हें प्राणवान बनाना है। यह लिखना भी कठिन है और इस स्वप्न का साकार होना भी कठिन। सांत्वनाएँ अपाहिज हो चली हैं। हमने कितने क़रीबियों को खो दिया है...लगातार खोने को अभिशप्त हैं पर जीवन फिर भी गति है। जीवन साहस है। जीवन ऊर्जा और उम्मीद है। उन सभी हाथों को याद करते हुए जो कल तक हमारे सिर पर थे। उन सभी दिमागों को याद करते हुए जिन्हें अभी बहुत कुछ रचना था। उन सभी हृदयों को याद करते हुए जिन्हें इंसानियत की नदी को नद बनाना था। उनके संकल्पों, हौसलों, स्वप्नों को साकार करने का दायित्व शेष बचे लोगों पर है। इस दायित्व की पूर्ति ही उनको हमारे भीतर और समाज में जीवित रखने का अंतिम जरिया है।

पिताजी आज होते तो यही कहते-"बच्चों! अच्छे की उम्मीद कभी न छोड़ो और बुरे के लिए हमेशा तैयार रहो।"

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2021

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

पिता की स्मृति

मेरे हर लिखे पर उनकी छाप है

वंदना अवस्थी दुबे

वन्दना अवस्थी दुबे,
केयर पब्लिक स्कूल, ओवर ब्रिज के पास,
मुख़्त्यार गंज, सतना, म.प्र. 485001
मोबाइल- 9993912823
ईमेल- vandana.adubey@gmail.com

20 अप्रैल 2021 को मेरे पिताजी ने इस नश्वर संसार से विदा ली। यह लिखना उतना ही तक़लीफ़देह है, जितना यह महसूस करना कि वे अब हमारे बीच नहीं हैं। सच तो यही है कि मेरा मन आज भी यह मान ही नहीं पाता कि पापाजी अब नहीं हैं, जबकि मैंने ख़ुद उन्हें अग्नि की लपटों में क़ैद होते देखा है.... उनके शरीर को राख़ होते देखा है.....!

आज पापाजी नहीं हैं, तो उनकी तमाम यादें ज़ेहन में घूमती रहती हैं। मैं अपने पापा की बहुत लाड़ली बेटी थी। प्यारी तो उन्हें सभी बेटियाँ थीं, लेकिन मेरे साहित्यप्रेम और लेखन के चलते मैं उनके बहुत क़रीब थी। पापाजी हिन्दी के ऐसे उद्भट विद्वान, जो एक कॉमा भी यदि छूट जाए, तो बहुत बड़ी ग़लती मानते थे। वाक्य-दोष आ जाता है, ऐसा उनका कहना था, और यह सही भी है। वे कहते थे कि लेखन में विराम चिह्नों का बहुत महत्त्व है, और इसे नज़र अंदाज़ नहीं किया जाना चाहिए। अभी भी, अपना लिखा उन्हें दिखाने के पहले मैं दस बार चैक करती थी, कि कहीं टायपिंग में वर्तनी की अशुद्धि तो नहीं रह गई? विरामचिह्न ठीक से लगे हैं या नहीं? इतनी कड़ाई से जाँचने के बाद भी, कोई न कोई ग़लती उन्हें मिल ही जाती थी।

हमारा घर, यानी एक सम्पूर्ण पुस्तकालय। यहाँ हर प्रकार की पुस्तकें, पत्रिकाएँ और अख़बार उपलब्ध थे। सालों पुराने अख़बार पापाजी के पास सुरक्षित रहते थे। चालू माह के अख़बार एक अलग रैक पर रखे होते थे, सभी तारीखों के क्रमानुसार। इन अख़बारों में से कोई एक भी अख़बार नहीं उठा सकता था। महीने के अन्त में पापाजी इन अख़बारों में से ख़ास ख़बर वाले अख़बारों को अलग कर लेते। उनके पास बहुत पुराने अख़बारों और पत्रिकाओं का संग्रह था, जो अब मेरे पास सुरक्षित है। मैंने स्वयं उन्हें हमेशा पढ़ते या फिर लिखते देखा। आप समझ सकते हैं, कि साहित्य के इतने अनुकूल माहौल में मेरा रुझान लिखने और पढ़ने की ओर क्योंकर न होता?

बहुत छोटी थी, लगभग दस साल की, तब मेरी पहली बाल कथा प्रसिद्ध समाचारपत्र 'दैनिक जागरण' के झाँसी संस्करण के बाल-जगत् में प्रकाशित हुई। उस वक़्त तक मैं चोरी-छुपे लिखती थी। कारण- स्कूल की पढ़ाई भी करनी होती थी न! कोई यह न कह दे कि पढ़ाई छोड़ के ये क्या कर रही? उस कहानी के प्रकाशन के बाद ही पापाजी ने जाना कि मैं थोड़ा-बहुत लिख लेती हूँ। अख़बार के उस अंक को पापाजी ने पता नहीं किस-किस को दिखाया... गर्व से बताया- 'रेखा की कहानी छपी है। दैनिक जागरण में छपना मामूली बात नहीं।' उनकी इस खुशी ने मुझे और-और लिखने को प्रेरित किया। उतनी सी ही उम्र में पापाजी ने अपनी किताबों की साज-सँभाल मुझे सौंप दी थी। दीपावली के समय घर में पुताई होती तब सभी अल्मारियों से किताबें बाहर निकालना, उन्हें झाड़-पोंछ के साफ़ करना, जिनकी ज़िल्द ख़राब हो रही हो, उसे लेई और पुट्ठे से दुरुस्त करना। दुरुस्त करने का काम पापाजी ही करते थे, मैं केवल सहयोगी

होती थी।

ग्यारहवीं में पढ़ती थी, तब 'मधु-स्यंदी' नाम की पत्रिका, जो मथुरा से छपती थी, मैं मेरी कहानियाँ लगातार छपीं। इन कहानियों को पापाजी बड़े मनोयोग से पढ़ते थे, विराम चिह्न दुरुस्त करवाने के बाद हमेशा कहते थे- मुझे खुशी है कि तुम्हारी भाषा में व्याकरण दोष नहीं है। चूँकि मैं विज्ञान की छात्रा थी, तो विषय के रूप में हिन्दी से मेरा नाता स्कूल के बाद टूट चुका था, इसलिये भी पापाजी मेरी भाषा पर नज़र रखते थे। विज्ञान संकाय में होने के बावजूद, ग्यारहवीं तक हिन्दी विशिष्ट ही हम लोगों को पढ़नी होती थी, ये एक तरह से अच्छा ही हुआ मेरे लिये। ग्यारहवीं की सालाना परीक्षा के समय पापाजी के स्कूल के पचासों विद्यार्थी उनसे हिन्दी व्याकरण पढ़ने आते। पढ़ने के नाम पर उनके पास कोई भी विद्यार्थी आ सकता था। मैं भी अपनी किताब-कॉपी उठाये, एक कोने में खड़ी रहती कि पापाजी मुझे भी अलंकार, समास या संधि समझा दें। हिन्दी साहित्य का इतिहास समझा दें। लेकिन मुझे अलग से पढ़ाने का समय ही नहीं था उनके पास। वे कहते थे- जब सारे बच्चे पढ़ रहे होते हैं, तभी तुम भी वहीं पढ़ लिया करो। बच्चों की उस भीड़ की आप कल्पना नहीं कर सकते, जिसके साथ पढ़ लेने को वे कह रहे थे। मेरी इस बात पर भी वे सवालिया निशान लगाते- 'क्यों? उतने सारे बच्चे एक साथ पढ़-समझ सकते हैं, तो तुम उनके ही साथ क्यों नहीं समझ पाओगी?' और हुआ भी वही.....उस वक्त जो व्याकरण पापाजी समझा रहे होते थे, वो आज भी मेरे दिमाग़ में जस की तस है। कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध.... सबकी कितनी बारीक़ बातें!! उनके जैसा शिक्षक नहीं देखा मैंने! उनसे पढ़ने के बाद किताब खोलने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती थी। पापाजी के सान्निध्य और लगातार साहित्य-अध्ययन ने, हिन्दी पर मेरी पकड़ कमज़ोर नहीं होने दी। मेरी भाषा, पापाजी की ही देन है....!

1986 में मप्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कहानी रचना शिविर में जब मेरी कहानी प्रथम घोषित हुई, तब भी उन्होंने समझाया- "कहानी

केवल भाव नहीं है न ही किसी घटना विशेष का उल्लेख है। बल्कि यह तो वह विधा है, जो जीवन से जुड़ती है। एक कहानी तभी सम्पूर्ण रचना मानी जाएगी, जब उसमें कहानी के सभी तत्वों का समावेश हो। आमतौर पर इन तत्वों का समावेश स्वत: ही हो जाता है, लेकिन एक कथाकार को मालूम होना चाहिए कि कहानी के ये तत्व कौन से हैं, और उसकी रचना में कौन सा तत्व छूट रहा?" उनकी यह बात मुझे शब्दश: याद है। याद इसलिये भी है, क्योंकि मैंने इसे उसी वक़्त अपनी डायरी में नोट कर लिया था।

मेरा लिखना और छपना चलता रहा। उनकी महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ भी चलती रहीं। अपने अख़बार के कार्यकाल में मेरा कथा-लेखन ख़ासा प्रभावित हुआ, जिस पर वे हमेशा टोकते थे- 'तुम्हरा कथा लेखन छूट रहा है। इसे जारी रखो।' जब भी वे टोकते, उस दिन मेरी एक कहानी ज़रूर लिख जाती।

मैं नौगाँव जाती, तो उनकी कोई न कोई पाँडुलिपि तैयार मिलती, प्रूफ़ रीडिंग के लिये। वे स्वयं प्रूफ़ देख रहे होते, लेकिन मेरे नौगाँव पहुँचते ही ये काम मुझे सौंप देते। यह उनका अतिशय विश्वास ही था, जो प्रूफ़ रीडिंग जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य मुझे सौंप देते थे, वरना अपनी पाँडुलिपि की प्रूफ़ रीडिंग पर तो वे किसी का भरोसा न करें! इसी दौरान मैंने उनकी पुरानी फ़ाइल निकाली, जिसमें बहुत सी हस्तलिखित कहानियाँ रखी थीं। बहुत सुंदर लिखावट में लिखी इन कहानियों के साथ, कथा से सम्बन्धित चित्र भी थे, जो पापाजी के ही बनाये हुए थे। आपको बता दूँ, कि वे बहुत अच्छे चित्रकार थे। मुम्बई के किसी संस्थान से उन्होंने फ़ाइन आर्ट में डिप्लोमा भी लिया था। फ़ाइल पलटते देख बोले-

'अरे ये तो बहुत पुरानी, कच्ची कहानियाँ हैं। 15-16 साल की उम्र में लिखी गई कहानियाँ हैं।'

मैंने कहा होंगी कच्ची कहानियाँ... आपका लिखा कुछ भी अप्रकाशित क्यों रह जाए? मेरी ज़िद पर ही बाद में शिवना प्रकाशन से ये कहानी संग्रह-"प्रेम गली अति साँकरी" प्रकाशित हुआ।

फिर मेरा कहानी संग्रह छपा। उन्होंने पूरे मनोयोग से न केवल पढ़ा, बल्कि हस्तलिखित समीक्षा भी मेरे पास भेजी। सभी कहानियों पर मेरे साथ विस्तृत चर्चा की। शिवना से प्रकाशित मेरे लघु उपन्यास- 'अटकन-चटकन' की पाँडुलिपि उन्होंने पढ़ी थी। मैंने जो शीर्षक दिया था, वे उससे संतुष्ट नहीं थे। बोले- 'शीर्षक बदल दो' मैंने कहा- आपसे बेहतर और कौन कर पायेगा ये काम?' उन्होंने कई शीर्षक सुझाये, लेकिन उन्हें उन सब में 'अटकन-चटकन' सबसे अधिक उचित लगा। मज़े की बात, शीर्षक पर हो रही चर्चा के दौरान, पंकज को भी यही शीर्षक सबसे अधिक उपयुक्त लगा। उपन्यास पापाजी के दिये शीर्षक से प्रकाशित हुआ..... उपन्यास से अधिक ये शीर्षक पसन्द किया गया।

मेरी मित्र डॉ. दया दीक्षित का उपन्यास- 'फागलोक के ईसुरी' प्रकाशित हो के आया, तो पापाजी ने कुछ सोचते हुए मुझसे कहा- 'बुन्देलखंड में जिस तरह ईसुरी के व्यक्तित्व, कृतित्व पर बहुत नहीं लिखा गया और इतिहास रचने वाले इस कवि को केवल लांछनों का शिकार बनाया, उसी तरह हरदौल पर भी बहुत नहीं लिखा गया। उपन्यास तो एक भी नहीं....! मैं चाहता हूँ कि तुम हरदौल पर एक ऐसा उपन्यास लिखो, जो उनके जीवन को सही रूप में सामने लाये। ये उपन्यास ऐतिहासिक दस्तावेज़ बन सके।' मेरा मन तो नाच उठा! मतलब पापाजी मुझे

इस लायक़ समझते हैं कि मैं किसी ऐतिहासिक चरित्र पर उपन्यास लिख सकूँगी! ये मेरे लिये बहुत बड़ी बात थी। अब सिलसिला शुरू हुआ, बुन्देलखंड के इतिहास से सम्बन्धित पुस्तकों के खोज का। मैं विस्मित रह गई, कि पापाजी को इस अस्वस्थ अवस्था में भी पता नहीं कितनी पुस्तकों के नाम, लेखक सहित याद थे। पापाजी की दी हुई सैकड़ों पुस्तकों में ही तीन मिल गईं। उनके बताये अनुसार मैंने गूगल पर सर्च किया, तो और पुस्तकें भी उपलब्ध हो गईं। उनकी सख़्त ताकीद थी, कि मैं पहले इन पुस्तकों में ओरछा के इतिहास को ध्यान से पढ़ूँ। हरदौल के बारे में बुन्देलखंड के ग्रामीण जनों से बातचीत करूँ। हमारी जड़ें भी बुन्देलखंड में ही हैं, सो बहुत सी जानकारियाँ परिजनों से ही मिल गईं सबसे अधिक जानकारियाँ पापाजी से ही मिलीं। मधुकरशाह से लेकर वीरसिंह देव द्वितीय तक, उन्होंने ऐसे ऐसे विवरण दिये, जो मुझे पुस्तकों में भी नहीं मिले। उन्होंने अपनी एक पुरानी कॉपी खोजी, जिसमें ओरछा राजघराने के महत्त्वपूर्ण बिन्दु नोट थे।

दो महीने लगातार पढ़ने के बाद लिखने का क्रम आरम्भ हुआ। रोज़ शाम को सात बजे से आठ बजे तक मेरी पापाजी से बात होती। कितनी भी तक़लीफ़ में होते, मुझसे बात ज़रूर करते और उतनी देर के लिये अपनी तक़लीफ़ एकदम भूल जाते। ये बातचीत मुख्य रूप से हरदौल पर ही केन्द्रित होती। रोज़ पूछते- आज कितने पेज़ लिखे? हड़बड़ी मत करना। आराम से लिखना। भाषा का ख़याल रखना। ऐतिहासिक तिथियों के साथ छेड़छाड़ मत करना। हरदौल बुन्देलखंद में लोकदेवता के रूप में पूजे जाते हैं। उनसे जुड़ी ढ़ेर सारी घटनाएँ पापाजी ने मुझे सुनाईं। रोज़ एक घटना सुनाते और मैं तुरन्त उसे लिख लेती। पापाजी से बात करने के बाद ही मेरा मन लिखने में रमता।

फ़रवरी 2021 में पटना गई तो जितने पृष्ठ लिख गए थे, उनका प्रिंट निकाल के ले गई। पूरी-पूरी दोपहर वे धूप में बैठ के मेरा प्रूफ़ देखते। मुझे बुला के समझाते कहाँ क्या गड़बड़ है। फिर, सिनॉप्सिस की तरह पूरी

सूची तैयार करवाई कि उपन्यास में किन-किन बिन्दुओं और पात्रों को शामिल होना ही है। बाद में, मैं लिखे गए पृष्ठ मेल कर देती, और मेरे बड़े जीजाजी उन्हें प्रिंट निकाल के दे देते। 18 अप्रैल को, अपने जाने के एक दिन पहले तक उन्होंने हरदौल के प्रूफ़ देखे और मुझसे चर्चा की। उसी दिन बातचीत के अन्त में अलग से बोले-मेरी तरफ़ से राजू जी को आशीर्वाद, माताजी को प्रणाम और विधु को स्नेहाशीष देना। वैसे तो वे ये पंक्ति हमेशा ही बोलते थे, लेकिन जब से हरदौल पर चर्चा शुरू हुई थी, वे हरदौल पर ही अपनी बात ख़त्म कर देते थे। उस दिन जब वे यह वाक्य बोले, तो मैने पूछा- आज ऐसा क्यों बोल रहे हैं पापाजी? तो हँस के बोले- 'जा सकता हूँ न' मैंने नासमझ बनते हुए पूछा- कहाँ? तो फिर हँसे बोले- 'ऊपर'। 19 अप्रैल को उनकी हालात बिगड़ी। उस शाम भी मेरी बात हुई, अपने नियत समय पर ही, लेकिन तब बहुत अस्पष्ट से स्वर में वे केवल इतना ही बोले- "छालों के कारण बोल नहीं पा रहा" और 20 तारीख़ को चले ही गए, दिन में ढाई बजे के आस-पास....!

उँगली पकड़ के उन्होंने हरदौल पर जो उपन्यास लिखना शुरू करवाया है, अब वही मेरे लिये सबसे महत्त्वपूर्ण काम है। आधे से ज़्यादा वे पढ़ भी चुके थे। अफ़सोस, कि शीर्षक नहीं दे पाये। शीर्षक के लिये बोले- इसे बाद में सोच समझ के देंगे। अब यह सोचने-समझने की ज़िम्मेदरी मेरे ही ऊपर छोड़ गए हैं पापाजी....!

मैंने अपने, अब तक के जीवन में पापाजी जैसा निष्छल, ईमानदार, कर्मठ और दूसरों के लिये जीने वाला इंसान नहीं देखा। कभी किसी की बुराई करना तो दूर, सुनना भी उन्हें पसन्द नहीं था। हम लोग यदि बातचीत के दौरान किसी की कोई बुराई करें, तो तुरन्त टोक देते थे- "ऐसा नहीं कहते। हर व्यक्ति में अच्छाई-बुराई होती है। उसके बुरे पक्ष को ही क्यों देखना? व्यक्ति को उसकी समग्रता में देखो। बुरा कोई नहीं होता।" और हम लोगों की बोलती बन्द!

ग़ज़ब की क़िस्सागोई थी उनके पास। कोई भी घटना सुनाते, तो छोटे से लेकर बड़े तक, सब मुँह बाये सुनते रहते। इतना रोचक अन्दाज़, इतना प्रवाह और सम्प्रेषण की क्षमता बहुत कम देखने को मिलती है। अनुभवों की पिटारी थे पापाजी.... एक से बढ़ के एक रोचक अनुभव, उनके बचपन के, उनके गाँव के, उनके कार्यकाल के..... हम सुनते नहीं अघाते थे। फ़रवरी में विधु को भी पता नहीं कितने संस्मरण सुनाये उन्होंने। मैंने कुछ रिकॉर्ड भी कर लिये थे, पता नहीं क्या सोच कर....! उनका कविता पाठ ऐसा, कि श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाए! दो साल पहले, सतना में घर में ही कवि गोष्ठी आयोजित की, तो उनके कविता पाठ ने पूरी महफ़िल ही लूट ली। पापाजी के आगे कोई किसी और को सुनना ही नहीं चाहता था। कमाल कविता पाठ, ग़ज़ब क़िस्सागोई.....! काश!! यही क़िस्सागोई मुझमें भी आ पाती!

कुछ भी लिखती थी, तो लगता था पापाजी पढ़ लें सबसे पहले। यहाँ तक कि फ़ेसबुक पोस्ट भी....! अब वे नहीं हैं पढ़ने के लिये तो कुछ लिखने का मन भी नहीं होता....! लगता है, जो लेखनी उन्होंने विरासत में मुझे दी थी, अपने साथ ही ले गए हों....! मेरी तो पूरी लेखन-यात्रा ही उनको समर्पित है। मेरे हर लिखे पर उनकी छाप है। मेरा लेखन, उनकी ही देन है। मेरा अपना कुछ भी नहीं....!

उनके दिये कार्य को पूरी ईमानदारी के साथ पूरा कर सकूँ, अब बस यही इच्छा है।

000

रामरतन अवस्थी का काव्य संसार

मुक्तक

(1)
दीप की देह में यदि नेह है, जलन भी है।
देह के गेह को श्रृंगार है, कफ़न भी है।
ज़िंदगी नाम नहीं, सिर्फ़ मुस्कुराने का,
उम्र की राह में बहार है, घुटन भी है।

(2)
चाँद उठता है तो तम दूर चला जाता है,
प्यार की छाँव में, ग़म दूर चला जाता है,
चलती राहों पे, अपना प्यार लुटाने वालो,
इश्क़ की ओट में ईमान छला जाता है।

(3)
एक मैं हूँ कि मुझे भूल याद आती है,
एक वे हैं कि उन्हें याद भूल जाती है,
याद औ' भूल में बस फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है,
एक रोती है, मगर एक मुस्कुराती है।

ज़िंदगी: नए प्रतिमान

कविताएँ

(1)
ज़िंदगी,
एक शंख है
जिसे मुँह भर फुत्कारो-
तो बोलता है,
अधरों पर डोलता है
बाकी तो वह पोल है
जितना पीटो, उतना बोले,
ऐसा ढोल है,
भई, दुनिया गोल है।

(2)
ज़िंदगी,
एक छाता है
जिसे सर पर उठा रखो
तो छाया दे,
अशरीरी काया दे:
बाक़ी तो वह कुकुरमुत्ता है-
जो सूरत से अच्छा है,
पर धागे सा कच्चा है।

(3)
ज़िंदगी,
एक ईंट है,
जिसे कारीगरी अँगुलियाँ उठा लें,
तो मीनारें झूम उठें:
अम्बर को चूम उठें,
बाक़ी तो वह मिट्टी है
जो लातों से कींची गई
हाथों से भींची गई-
और, कर दी गई
अग्नि की लपटों में क़ैद-
अन्तिम संस्कार के लिये।

(4)
पर, दरअसल –
ज़िंदगी न तो शंख है,
न छाता है,
और न ही ईंट है:
वरन
एक ऐसी अन्तहीन कहानी है
जिसमें चिड़ियाँ –
'फ़ुर्र' करके उड़ती रहती हैं –
एक....दो....तीन...
और अनन्त।
तम की गहराई
सौ-सौ दीप जलाये इस धरती के प्रांगण पर,
फिर भी तम की गहराई का रंग नहीं बदला।

000

छंद

आये दिन अम्बर में बादल घिर-घिर आते हैं,
पर, धरतीवाले हैं – प्यासे ही रह जाते हैं,
ऐसे कितने हैं जो कलियों के संग खिलते हैं?
और सुबह के भूले, सन्ध्या को घर मिलते हैं?
परवशता के विवश चरण को, पायल बाँध दिये,
फिर भी दुनियावी चालों का, धंग नहीं बदला।
**
एक ओर सरि का यौवन, तटबंधों से ऊपर,
और दूसरी ओर राधिका का घट ख़ाली है,
जो न समझता है कलियों का खिलना-मुरझाना,
नई-नई इस बगिया का, वह ही वनमाली है,
नव-नव पंख लगाकर, मन के पंछी छोड़ दिये,
पर, अरमानों के अम्बर का अन्त नहीं निकला।
**
सोचा था, शायद अवनी की तपन शमित होगी,
इसीलिये नीलाम्बर ने, शबनम बरसायी थी,
और शूल की चुभन-पीर शायद बँट जाएगी,
इसीलिये उस पादप पर कलिका मुसकाई थी,
मधुर मिलन को बाँहों की सीमा में बाँध लिया,
फिर भी बिरहानल से व्याप्त दिगन्त नहीं बदला।
**
दर्पण को उस रोज़ रिझाने चला श्रृंगार स्वयं,
पर दर्पण था वह तो, मुस्काया भी तनिक नहीं,
देख बसंती रूपसि की मादक छवि द्वारे पर,
निष्ठुर पतझर उस दिन पिघलाया भी तनिक नहीं,
धारा की काया सँवारने, साहिल बाँध दिये,
फिर भी उद्वेलित लहरों का पंथ नहीं बदला।
**
सौ-सौ दीप जलाये इस धरती के प्रांगण पर,
फिर भी तम की गहराई का रंग नहीं बदला।

000

सांध्य-गीत

बटोही! उतरी नभ पर शाम,
साँझ का आ पहुँचा पैग़ाम।
द्रुम-दल, तृण-दल, नवल कमल-दल
सकल हुए श्री हीन,
जिमि उडुगन मुरझाये से-
दिखते हैं चन्द्र विहीन;
निशा फिर व्यर्थ हुई बदनाम,
बटोही! उतरी नभ पर शाम।
जीवन क्या है-मन के सपनों-
का अलबेला मेला,
जन-संकुल कोलाहल में भी,
मानव खड़ा अकेला;
अजब यह सुख-दुख का संग्राम,
बटोही! उतरी नभ पर शाम।
पंचतत्व से मण्डित यह-
धरती हम सबकी माता
चौराहे पर खड़ा मुसाफ़िर
ऊँचे स्वर में गाता;
सत्य है, मात्र राम का नाम,
बटोही! उतरी नभ पर शाम।

000

पुस्तक समीक्षा

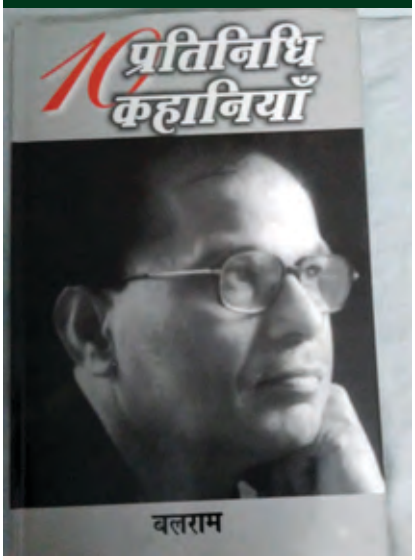

दस प्रतिनिधि कहानियाँ

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : से. रा. यात्री

लेखक : बलराम

प्रकाशक : किताबघर प्रकाशन, दिल्ली

से. रा. यात्री
एफ-ई-7
नया कवि नगर
ग़ाज़ियाबाद, 201002 (उत्तर प्रदेश)
मोबाइल- 9810604535

बलराम के कथा संचयन 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ' से गुज़रते हुए एक गहरी स्वस्ति का एहसास होता है, क्योंकि ये कहानियाँ कहीं न कहीं भारतीय जीवन के प्रबल झंझावातों और बहुविध विसंगतियों को प्रखरता से रेखांकित करती हैं। यह कहानियाँ अपने कथ्य और कथन में बहुरूपी हैं और कथाकारों पर लगे उस आरोप का खंडन करती हैं, जिसे कथाकारों पर इस रूप में लगाया जाता रहा है कि उनकी कहानियाँ इकहरी सच्चाइयों की कहानियाँ हैं। बलराम के इस संचयन की पहली कहानी 'शुभ दिन' को ही लें, जिसमें ज़िंदगी की आपाधापी भरी दिनचर्या और स्वयं को कुछ जीवंत बचा लेने की कशमकश के साथ निरंतर छीजते चले जाने का मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है। आज की दृष्टि से एक मुकम्मल परिवार अर्थात् पति-पत्नी और बच्चा। बच्चे की तरंगायित स्थिति और उसके पालन-पोषण के प्रति एक ज़िम्मेदारी का भाव। पति-पत्नी अपने सभी कार्यकलापों में सहयोगी, पर जीने का सादा गणित फ़्लैट खरीदने से इस क़दर गड़बड़ा गया कि यार-दोस्तों के अलावा सिटी बैंक और दफ्तर के सहयोगियों से भी ऋण लेना पड़ गया, जिसकी भारी-भरकम किस्तें हर महीने पति-पत्नी के वेतन से कट-छँट जाती हैं। शादी के दस साल हो रहे हैं। इतने ही दिनों में दैहिक राग मंद पड़ने लगे हैं। पत्नी दैहिक संबंधों में आधिक्य को पशुता कहती है और पति की मानसिकता में यह अनाम ढंग से कहीं गहरे पैठ जाता है, जिसकी परिणति इस रूप में होती है कि 'शुभ दिन' यानी शादी की वर्षगाँठ आमंत्रण भरी रात में विद्रूप बनकर रह गई। दोनों की भीतरी चाहत एक दारुण जागरण के नाम दर्ज हो जाती है। रात नौ बजे तक पत्नी बच्चे को खिला-पिलाकर सुला देती है और इंतज़ार करती है कि पति कोई राग छेड़े, मगर वह आँखें मूँदकर ऐसे लेट गई, मानों उसे कुछ याद ही न हो। जागते हुए वह इस रात शेरनी होना चाह रही है, पर पतिदेव मानों घोड़े बेचकर सो गए हैं। उधर पत्नी को लेकर पति की भी वही स्थिति है। वह सोचता है, दिन भर की थकी-हारी को नींद से क्या जगाना। सुबह जब दोनों को इस नींद का पता चलता है तो ताना मारते हुए पत्नी कहती है, 'आप कल भी सो गए।' पति ने जानना चाहा कि क्या वह जागती रही तो उसके स्वीकार पर पति ने बताया कि वह भी सारी रात जागता रहा, पर सोचा कि इस 'शुभ दिन' तुम्हें सोते हुए क्या तंग करना। दरअसल दोनों ही उस सहज प्रणय कलह और देह राग की गहरी अभिव्यक्तियों को जीना भूल चुके हैं, जो दाम्पत्य में एक सहज व्यापार है। महानगर में पशुवत जीना 'मेट्रोवासियों की नियति' बन चुकी है। कहानी इस सच्चाई को बड़ी सहजता से व्यक्त कर देती है।

'गोआ में तुम' कहानी में एक गहरा मनोवैज्ञानिक संकेत यह है कि हम दुनिया के किसी भी हिस्से में जाकर अपने अतीत से छुटकारा नहीं पा सकते। वह हमारे साथ परछाईं की तरह चलता है। परछाईं तो कई बार फिर भी हमें छोड़ देती है, किंतु अतीत कभी विस्मृत नहीं होता। वह तो सोते-जागते हर क्षण उपस्थित है। कहानी का पात्र राज, जो लेखक का मित्र है और कभी उसकी बहन पम्मी का प्रेमी रह चुका है, सबको छोड़कर चले जाने के बावजूद कभी कालातीत नहीं होता। इसी तरह कहानी के 'नैरेटर' और उसकी पत्नी सुप्रिया अपने दिवंगत बच्चे ईशान को कभी विस्मृत नहीं कर पाते। दुखद स्थितियों और स्मृतियों से पिंड छुड़ाने के लिए दिल्ली से दूर गोआ जाकर शरण लेते हैं, किंतु यहाँ भी बिछड़े और दिवंगत लोग उनकी चेतना में यथावत् बने रहते हैं,जो इन शब्दों में उनकी स्मृति पर हावी हैं 'सोचकर कलेजा फटता है कि यदि उसे हमारा नहीं होना था तो फिर हमारे जीवन में आया ही क्यों। ईशान गुज़रा न होता तो अब तक कितना बड़ा हो

गया होता। वह होता तो गोआ की यात्रा कितनी सुखद होती।'

'शिक्षाकाल' एक अर्थ में सभी घरों के निम्न मध्यवर्गीय बच्चों और किशोरों की विपदा है। यह एक ऐसे लड़के का त्रासद जीवनवृत्त है,जो ठेठ ग्रामीण परिवेश में पल रहा है। माता-पिता का देहाँत हो चुका है। बड़ा भाई अठारह वर्ष बड़ा है- भाभी इतनी क्रूर और असंवेदनशील है कि उसे भरपेट खाना तक नहीं देती। भाई-भाभी दोनों ही उसकी अल्प वय की ओर से आँखें मूँदकर उसे बीहड़ श्रम में धकेल देते हैं। वह गाँव से दूर पढ़ने जाता है, किंतु निरंतर घर के कामों में उलझे रहने के कारण कभी ठीक समय पर स्कूल नहीं पहुँच पाता। इस सबके बावजूद बुद्धि से प्रखर होने की वजह से उसे वज़ीफ़ा मिलता है। वह सोचता है कि लंबे समय से स्थगित होती चली जा रही ज़रूरतों को वह वज़ीफ़े की इस रकम से पूरा कर लेगा, किंतु वज़ीफ़े वाली बात बड़े भाई के संज्ञान में आ जाती है और वह सारे रुपये उससे ले लेता है। हताशाओं के झंझावात में वह लड़का पूर्ववत् उन्हीं अमानवीय स्थितियों और हाड़-तोड़ परिश्रम की कुहेलिका में फँसकर रह जाता है। धर्मवीर भारती ने इस कहानी को 'धर्मयुग' में प्रकाशित करते समय इसका मूल शीर्षक 'दबी हुई आग' से बदलकर 'शिक्षाकाल' कर दिया था, किंतु 'शिक्षाकाल' शीर्षक से इस कहानी के जलते हुए कथ्य का कोई साम्य नहीं बैठता। कहानी पाठक के मन में जो बेचैनी और आक्रोश जगाती है, वह 'दबी हुई आग' से ही मेल खाता है।

पालनहारे' मन को मथने वाली थरथराहट भरी कहानी है, जिसमें बिनाई खोया हुआ एक छोटा-सा मेमना गाँव से बाहर स्कूल से लौटते बच्चे को मिल जाता है। पहले तो स्कूल से वापस लौटते बच्चे उसे सगरा ताल का प्रेत समझते हैं कि मेमने की शक्ल में वह छल कर रहा है, किंतु बाद में एक बच्चा हेमू उसे भेड़ों के झुंड से बिछड़ा मेमना मानकर घर ले आता है। हेमू को मेमने को लेकर अपने पिता के विरोध का सामना करना पड़ता है, किंतु वह मेमने को पालने की हठ पकड़ लेता है। मेमने की आँखों में जाला देखकर वह माँ के सुझाव पर जड़ी-बूटी लाकर उसका रस मेमने की आँखों में निचोड़ता है, जिससे उसकी आँखें ठीक हो जाती हैं। हेमू की सहज बालोचित भावनाओं ने मेमने को उसका अंतरंग साथी बना दिया। वह स्कूल के समय को छोड़कर कभी एक क्षण के लिए भी मेमने से अलग नहीं रहता। हेमू ही क्यों, घर के अन्य लोगों के मन में भी मेमने के प्रति अनुपम अनुराग की भावना व्याप गई।

सिंचाई विभाग की धांधली के चलते कुलाबा उखड़वा लिया गया तो हेमू के पिता के खेतों की फ़सलें सूख गईं। रही-सही कसर ओलों ने पूरी कर दी। घर में अनाज न आ पाने के कारण भूखों मरने की नौबत आ गई। उधर लगान की भरपाई न करने की स्थिति में घर के रहे-सहे अनाज को बेच देने पर रोटियों के लाले पड़ जाने की बात सोचकर हेमू के पिता ने एक कठोर निर्णय ले लिया। उन्होंने बुद्धन कसाई को बुलाकर मेमना बेच दिया। हेमू ने बच्चों के साथ स्कूल से लौटते समय मेमने को बुद्धन कसाई की गोद में देखा तो वह विकल हो उठा। पल भर में हज़ारों बिजलियाँ हेमू के सामने कौंध उठी। उसमें चीते की फुर्ती न जाने कहाँ से आ गई। वह बुद्धन कसाई पर झपटा और उससे मेमने को ऐसे छीन लिया जैसे बघर्रे के जबड़ों में फँसे बेटे को उसके बाप ने छीन लिया हो। इस पर हेमू के पिता ने उसके गाल पर ऐसा चाँटा मारा कि हेमू लड़खड़ा कर खूँटे पर जा गिरा और पिता ने मेमना फिर बुद्धन कसाई के हवाले कर दिया।

हेमू ने चौपाल में लटकी वह तस्वीर देखी, जिसमें राजा मोरध्वज रानी के साथ अपने बेटे को सिंह को भोजन देने के लिए आरे से चीर रहे हैं। साथ ही उसकी नज़र अपनी माँ के पैरों पर चली गई, जिनसे लगान की भरपाई के निमित्त पायल उतारकर सुनार को बेच दी गई थीं। बाहर से निर्मम और क्रूर दिखाई पड़ते हेमू के पिता की विवशता और परिवार की करुण वेदना कहानी के कथ्य को गहरी अर्थवत्ता देते हुए अकथ विवशताओं से जूझती मानव नियति से साक्षात्कार करा देती है।

'सामना' एक ऐसे युवक सोमनाथ की कहानी है, जो एमए की पढ़ाई के दौरान कानपुर के एक गए बीते माहौल में एक कोठरी किराये पर लेकर रहते हुए ट्यूशन के सहारे गुज़र-बसर कर रहा है। वह एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाकर एक अदद नौकरी पाने के प्रयास में एक ग़लत आदमी के हाथों पड़ जाता है, जो तालाबंदी के दौर में नौकरी से निकाल दिए गए तिवारी जी का साला है,जो एक प्रेस में नौकरी करता है और सोमनाथ को कोऑपरेटिव बैंक में नौकरी दिलवाने के सब्ज़बाग़ दिखाता है। वह उसे पक्का आश्वासन देता है कि यदि सोमनाथ नौकरी पाने के लिए संबंधित व्यक्ति को सुविधा शुल्क देने भर के रुपयों की व्यवस्था कर ले तो फिर नौकरी पाने में कोई बाधा नहीं होगी। शम्भू के बताए मार्ग से नौकरी पाने के लिए सोमनाथ अपने गाँव जाकर घर का अनाज, जिसके सहारे घर को रोटी मयस्सर होती, के अधिकांश हिस्से को बिकवाकर पिता से रुपया लाकर शम्भू को दे देता है। शम्भू उन रुपयों को पाकर सोमनाथ को नौकरी पा जाने की गारंटी देते हुए कहता है, नौकरी तो अब पक्की हो गई, मगर 'सौ, दो सौ मेडिकल अफ़सर को देकर फिटनेस सार्टिफिकेट लेना होगा।' शम्भू के बहुत ज़ोर देने पर सोमनाथ ट्यूशन के एवज में अग्रिम लाकर उसे सौंप देता है। ग़रज़ यह कि दो बार गाँव जाकर अनाज बिकवाने के बावजूद शम्भू स्वयं ही सारा रुपया लेकर भाग जाता है और सोमनाथ को नौकरी नहीं मिल पाती। ऐसी दारुण स्थिति में वह गाँव जाकर पिता को वस्तुस्थिति से अवगत कराना चाहता है, पर सोमनाथ को गाँव में आया देखकर परिवार परम आश्वस्त हो उठता है कि जैसे उसे नौकरी मिल गई। खुशी में परसाद बाँटा जाने लगता है। सोमनाथ इस सबसे सन्न रह जाता है। लेखक ने उस विडंबना को बहुत प्रभावी ढंग से व्यक्त किया है-जैसे ही वह घर पहुँचा, माँ एकदम से प्रफुल्लित हो उठी और भाई-बहन उछलने-कूदने लगे। कक्का भी अपेक्षाकृत प्रसन्न नज़र आए, पर जब तक सोमनाथ बिट्टन को असली बात बताए, तब तक वह परसाद

बाँटने छिद्दन के घर घुस गई।

'कलम हुए हाथ' छोटी जोत के किसान की वही हमेशा से चली आती त्रासदी है और उस स्थिति में तो यह सारी सीमाएँ ही लाँघ जाती है, जब उसकी ज़मीन का बँटवारा हो जाय। माधौ एक ऐसी ही छोटी जोत का किसान है। जब तक उसके तीनों बेटे उसके साथ रहकर ज़मीन को जोतते-बोते थे, वह एक संपन्न न सही, खाता-पीता किसान था। बेटों के बीच ज़मीन का बँटवारा और उसकी बीमारी दोनों ऐसी गाज़ बनकर माधौ के सिर पर टूटे कि उसे गाँव के संपन्न ज़मींदार राजा ठाकुर से इलाज कराने के लिए क़र्ज़ लेने की ज़रूरत पड़ गई। कोई भी बेटा ऐसी माली हालत में नहीं था, जो बाप के सिर पड़ा क़र्ज़ चुकाकर बाप के हिस्से की तीन बीघा ज़मीन बचा लेता। माधौ के सामने अंत में एक बीघा ज़मीन हमेशा के लिए अथवा तीन बीघा ज़मीन छह वर्ष के लिए राजा ठाकुर को दे देने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं बचता। भले ही देश को स्वतंत्र हुए दशकों हो गए हैं, मगर किसान की साँसत कम होने के बजाय दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। क़र्ज़ चाहे बैंक का हो, चाहे महाजन का, किसान अपने हाथ कलम होने से बचा नहीं सकता। यह कहानी उन लाखों किसानों की आत्महत्याओं का एक प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत करती है, जो इस देश में एक जलता हुआ सवाल हैं।

'कामरेड का सपना' गाँव की दुनिया की एक बेरहम तस्वीर है, जहाँ शोषित और दलित जन बाहुबलियों द्वारा कुचले जा रहे हैं। कामरेड कल्ला गाँव का एक दलित था, जिसमें शोषण के विरुद्ध लड़ने की एक अनबुझ आग थी। उसने एक अन्य कामरेड धन्ना के साथ रामलाल को सरकार द्वारा दी गई ज़मीन पर उगी फ़सल कटवाकर उसके घर पहुँचवा दी। यह ज़मीन ललई पंडित और दबंग सरजू ठाकुर ने दबा रखी थी। इस पर ललई और सरजू ने कामरेड धन्ना और कामरेड कल्ला को लाठियों से इतना कुटवाया कि अंततः कल्ला की मौत हो गई। पुलिस ने हमेशा की तरह हत्यारों के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की। इसके विरोध में पार्टी ने थाने पर जाकर ज़बरदस्त विरोध प्रदर्शन किया तो जो लोग बाहुबलियों के विरुद्ध मुँह से आवाज़ तक नहीं निकालते थे, खुलेआम इस प्रदर्शन में सम्मिलित हुए। कामरेड कल्ला की युवा बेटी झंडा हाथ में थामे जुलूस में सबसे आगे दिखाई दी। जन संगठन की शक्ति और सामर्थ्य ही तो कामरेड कल्ला का सपना थी, जो उनकी मृत्यु को सार्थकता प्रदान करती है। कामरेड कल्ला ने अपनी हत्या की आशंका व्यक्त करते हुए डायरी में लिखा था, " मेरी मौत बेकार नहीं जाएगी। जब मेरी चिता जलेगी तो न सिर्फ हज़ारों पार्टी कार्यकर्ता, बल्कि तमाम और लोग भी आएँगे। चिता की आग सुंदरी घाट पर ही ठंडी नहीं हो जाएगी, वह धीरे-धीरे फैलेगी और हमारा सपना साकार होगा।"

'मालिक के मित्र' कहानी जनतंत्र की आधारभूत शक्ति मीडिया पर एक प्रश्नचिह्न खड़ा करती है। भारत के स्वतंत्र होने के पहले की मूल्यों को समर्पित पत्रकारिता का किस सीमा तक पतन और अवमूल्यन हुआ है, यही इस कहानी का प्रतिपाद्य है। आदर्शों से लबरेज पत्रकार की फिल्मों की एक बेलाग समीक्षा लिखने पर पत्रकारिता के क्षेत्र में पहला पाठ यही पढ़ाया जाता है, "तुम्हारी राय अपनी जगह सही हो सकती है, पर ये टाकीज भवानी साहब की है और वे हर महीने किसी न किसी प्रतिष्ठान का पूरे पेज का विज्ञापन देते हैं। तुम्हारी समीक्षाएँ छपते ही उनके विज्ञापन मिलने बंद हो सकते हैं। इसलिए अख़बार में कभी कुछ ऐसा मत लिखो, जिससे विज्ञापनदाता नाराज़ हो जाएँ।" पत्रकार देह व्यापार और अय्याशी के अड्डे का भंडाफोड़ करता है तो संपादक उसकी ख़बर इसलिए नहीं छापता कि ऐयाशी के अड्डे पर जाने वाले और उसे चलाने वाले अख़बार के मालिक के मित्र हैं। आख़िर में पत्रकार हताशा में अपने मित्र से पूछता है, "अब तुम्हीं बताओ मित्र, उन ऐयाशों के नाम छापकर क्या उन्हें बेनक़ाब कर सकता हूँ?"

'अनचाहे सफ़र' में दाम्पत्य में चुनाव की विडंबना रेखांकित हुई है। दो युवतियाँ हैं, जिनके विद्यार्थियों का अनुराग उनके प्रति इस

नई पुस्तक

कुछ इधर ज़िंदगी, कुछ उधर ज़िंदगी

(यात्रा संस्मरण)

लेखक : गीताश्री

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

चर्चित कहानीकार, उपन्यासकार गीताश्री का यह पहला यात्रा संस्मरण है, जो शिवना प्रकाशन से हाल में ही प्रकाशित होकर आया है। देस तथा परदेस दो अलग-अलग खंडों में इस पुस्तक को बाँटते हुए गीताश्री ने दुनिया भर में की गई अपनी यात्राओं को किताब के रूप में समेटा है। भूमिका में गीताश्री लिखती हैं -एक स्त्री की यात्रा-आवारगी है...जो निरुद्देश्य नहीं थी। जब मैंने ख़ुद को सामंती परिवेश से रिहाई दिलाई तो मन में एक ही आकांक्षा पल रही थी कि दुनिया की सैर करना है। अपने दम पर। बिना देखे, मोक्ष की प्राप्ति नहीं। यात्रा वृतांत के इस पहले खंड में देस परदेस है। अगली किताब में ग्रामीण टूरिज़्म का विशेष खंड होगा और यूरोप, चीन और अमेरिका की यात्राएँ होंगी। एक कामना के साथ कि हर स्त्री के भीतर यायावरी की आवारगी की ललक हो ताकि वो उड़ान भर सके और उसे दुनिया को अपने पैरों से धांग देना चाहिए, कोई साथ हो न हो।

000

सीमा तक पहुँचता है कि उनसे विवाह के लिए आग्रहशील हो उठते हैं। पहली कहानी उस युवक की है, जो अन्य धर्मावलम्बी युवती के प्रति अपने प्रणय निवेदन को विवाह की परिणति तक पहुँचा देने का इच्छुक है, किंतु युवती व्यावहारिक स्तर पर भिन्न धर्मावलम्बियों के विवाह में, बाद में जो मुशिकल होती है, उनका हवाला देकर इंकार कर देती है। ऐसी नाकामी के बाद वह अपनी टीचर मधु के सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है, किंतु वह अपने पिता द्वारा चुने गए वर से विवाह करने की बात कहकर राजे को निराश कर देती है। दूसरा युवक सोम अपनी टीचर बीनू से गहरा प्रेम प्रदर्शित करते हुए उससे विवाह की पेशकश करता है। बीनू सोम के प्रति सदय भाव से समर्पित हो जाने की कामना के वशीभूत हो इस विवाह की स्वीकृति देने को प्रस्तुत भी हो उठती है, पर सोम अन्त में यह कहकर पीछे हट जाता है कि मेरे बापू गाँव से आए हुए हैं और 'वे रिश्ते की मेरी सुपरिचित लड़की के बाप को वचन दे आए हैं।' यहाँ एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि बीनू के पिता ने अपनी ही पसंद से जिस युवती से विवाह किया था, वह उनके स्वभाव से इस कदर विपरीत मानसिकता से ग्रस्त थी कि बीनू के माता-पिता का दाम्पत्य कभी शांत और निर्विघ्न नहीं चल पाया। सोम ने बीनू से विवाह करने के संकल्प से पीछे हटते हुए अपने पत्र में इस बात का संकेत भी कर दिया है, "आपके पापा की भूल को दोहराना नहीं चाहता।"

बीना का पूर्व प्रेम भी दाम्पत्य संबंधों के निकट पहुँचते-पहुँचते एक बार पहले भी स्थगित हो चुका है। जिस दयाल नाम के युवक से वह प्रेम करती थी और उससे विवाह की परिणति तक पहुँचने में कोई व्यवधान नहीं पाती थी, वही दयाल के अमेरिका जाकर उसकी मानसिता बदल जाने से हताशा और टूटन में पर्यवसित हो गया। दयाल ने अमेरिका जाकर लिखा था, "बीनू डार्लिंग, शादी और जन्म-जन्म के बंधन जैसे पिटे हुए शब्दों से मुझे चिढ़ होने लगी है। यहाँ आकर मुझे फास्ट लाइफ पसंद आ गई है। शादी का अब कोई औचित्य नहीं रह गया है। अब तुम मेरी बीवी नहीं, पार्टनर बन सकती हो, अन्यथा किसी से मैरिज कर लो।" विवाह से जुड़े दुखान्त 'अनचाहे सफ़र' में बखूबी उजागर हुए हैं। 'पहला सबक़' में इस भाव का प्राबल्य है कि हम बहुत बार यह समझते हैं कि किसी के प्रति हमारी रागात्मकता अनोखी, अनन्य, अनित्य और अनिर्वचनीय है, किंतु देह के स्तर पर ये भाव हमेशा कायम नहीं रहते। पात्र बदल जाते हैं तो रागात्मकता का स्तर भी वह नहीं रहता, वह भी बदल जाता है। राग की आत्यंतिकता राधा भाव में है और वहाँ देह प्रमुख नहीं है, वहाँ तो एकांत समर्पण ही सर्वोपरि है। अखिल के जीवन में जो भी नारी प्रेम के मायावी स्वरूप में आती है, वह उसी के रूप पाश में बँधकर उसे चरम प्रेम की अभिव्यक्ति मान लेता है, किंतु ऐसा कभी नहीं हो पाता, क्योंकि प्रिय को एकबारगी पा लेना ही पर्याप्त नहीं है, उसे हर क्षण, अनुदिन सँभालकर प्रियतम बनाये रखना पड़ता है। प्रिय से उपेक्षित होकर कोई भी सहज रूप सें भटक कर करणीय-अकरणीय क्या नहीं कर सकता? यह महाभारत सनातन है, यही 'पहला सबक़' कहानी का मूल मंत्र है।

बलराम की 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ' वैविध्यपूर्ण तो हैं ही, उनमें उल्लेखनीय तथ्य यह है कि वे ग्राम परिवेश की सभी हलचलों, विस्फोटक और मारक स्थितियों को भी बखूबी वहन करती हैं। वहाँ की परिस्थितियों को जिस भाषा से कहा जाना अभिव्यक्ति का चरम कहा जा सकता है, वह बोली-बानी इन कहानियों में यथावसर-यथास्थान हर कहीं मौजूद है।

अपने जीवन का अधिकांश भाग नगरों-महानगरों में बिताने के बावजूद बलराम को ग्रामीण जीवन का अंतर-बाह्य सभी कुछ राई-रत्ती पता है। ग्राम और नगर जीवन के सभी विपर्ययों को बलराम की प्रखर दृष्टि ने अपनी कहानियों में व्यक्त किया है और उनकी अभिव्यिक्ति जन जीवन को संपूर्णता से अपने भीतर सँजोती है। यही कारण है कि कहानियाँ खरी और प्रामाणिक लगती हैं।

000

नई पुस्तक

माया महा ठगनी हम जानी

(चयनित व्यंग्य रचनाएँ)

लेखक : अश्विनीकुमार दुबे

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

हिन्दी के प्रतिष्ठित व्यंग्यकार साहित्यकार अश्विनीकुमार दुबे के चयनित व्यंग्य लेखों का यह संकलन शिवना प्रकाशन से हाल में ही प्रकाशित होकर आया है। प्रतिष्ठित व्यंग्यकार डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं- वर्तमान हिन्दी व्यंग्य संसार की अराजक सी तस्वीर में कहीं रिलीफ के कोने की तलाश हो तो अश्विनीकुमार दुबे की व्यंग्य रचनाओं से गुज़र जाइए। व्यंग्य को बेहद गंभीर कर्म की भाँति निभाने वाले अश्विनीकुमार दुबे में अपने लिखे को लेकर कोई व्यर्थ के मुगालते नहीं है पर लिखे हुए का अतिक्रमण करने की चाहत उनमें शिद्दत से है, वे भाषा शैली तथा व्यंग्य के विषयों को लेकर भी बेहद सजग व्यंग्कार हैं। उनकी रचनाओं में बहुत सारा ऐसा मिलता है, जिसे वर्तमान व्यंग्य-संसार में अन्यत्र पाने को आप तरस जाते हैं, वे बेचैन कर देने वाले व्यंग्यकार हैं। निश्चित रूप से वे अपनी पीढ़ी के अग्रणी व्यंग्यकार हैं।

000

शोध आलेख

अकाल में उत्सव

(उपन्यास)

समीक्षक : अतुल वैभव शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

अतुल वैभव
शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय
इमेल-vaibhavatul7@gmail.com
मोबाइल- 7827563795

वर्तमान दौर में साहित्यिक रचनाएँ तो बहुत लिखी जा रही हैं लेकिन उनमें से कुछ ही ऐसी होती हैं, जिन्हें पढ़ने के बाद पाठक समाज की उन सच्चाईयों से अवगत हो पाता है, जिन सच्चाईयों को जानते हुए भी वो अंजान बना रहता है। वाकई में रचना वही जिसे पढ़ कर पाठक सामाजिक यथार्थ से रू-ब-रू हो साथ ही मन में कुछ यथार्थ प्रश्न आए और उन प्रश्नों के कुछ हद तक उत्तर भी। कुछ रचनाएँ ऐसी भी होती हैं, जिन्हें पढ़ने के बाद पाठक के मस्तिष्क में अनेक सवाल उथल-पुथल करने लगते हैं और उन सवालों का उत्तर ख़ुद से ढूँढ़ने की कोशिश भी करने लगता है। साहित्य सिर्फ पाठक का मनोरंजन ही नहीं करता है बल्कि समाज के यथार्थ से भी रूबरू कराता है। आज सोशल मीडिया के ज़माने में जब क्षणिक लेखकों और रचनाओं की बाढ़ सी आ रखी है, वैसे में सामाजिक मुद्दों को गंभीरता से अपनी लेखनी का विषय बनाकर समाज को सजग करने वाले गिने-चुने रचनाकार ही रह गए हैं। वर्तमान समय में सोशल मीडिया जैसे माध्यमों पर रोज़ सैकड़ों लेखक पैदा होते हैं और कुछ दिनों में ही वे ग़ायब भी हो जाते हैं। सोशल मीडिया आज भले ही लोगों की अभिव्यक्ति का बड़ा माध्यम बन गया है परंतु यह लेखन से अधिक लेखक के प्रचार का माध्यम लगता है। अगर कहा जाए कि सोशल मीडिया पर रचना से अधिक रचनाकार का प्रचार होता है तो ग़लत नहीं होगा। वैसे वर्तमान कठिन समय में बहुत कम ऐसे रचनाकार हैं जो वाकई में अपने लिए नहीं बल्कि समाज के लिए लिखते हैं, उनमें से एक नाम है 'पंकज सुबीर' है।

हिन्दी कथा साहित्य में अपनी क़लम की आवाज़ से समकालीन कथा जगत् के पाठकों को चौकन्ना करने वाले रचनाकारों में पंकज सुबीर का नाम आता है। पंकज सुबीर पिछले एक दशक से जनता की आवाज़ बुलंद कर रहे हैं। समकालीन उपन्यासकार, कहानीकार, व्यंग्यकार, संपादक, आलोचक पंकज सुबीर का लेखन इक्कीसवीं सदी के नए सामाजिक समस्याओं एवं मुद्दों का यथार्थ लेखन है। 'ये वो शहर तो नहीं', 'ईस्ट-इण्डिया कंपनी', 'महुआ घटवारिन', 'एक सच यह भी', 'चौपड़े की चुड़ैलें', 'कसाब.गाँधी@यरवदा.इन', 'अकाल में उत्सव' जैसे उपन्यास और कहानी संग्रह लिखने वाले इक्कीसवीं सदी के यथार्थवादी कथाकार को पढ़ने के बाद कितना भी कठोर दिल वाला पाठक क्यों न हो उसका भी कलेजा पसीज जाता

है। एक ऐसे विषय पर लिखा गया उपन्यास जो वर्तमान में समाज का सबसे उपेक्षित वर्ग है, जिसके लिए घोषणाएँ तो हर चुनावी मौसम में कर दी जाती हैं लेकिन चुनावी पर्व समाप्त होते ही सारी घोषणाएँ फाइलों में क़ैद हो जाती हैं। नेता एक से एक वादे करके चले जाते हैं फिर उन वादों का कोई खोज ख़बर लेने वाला नहीं रहता। सरकार की योजनाएँ जिसके लिए होती हैं उनको या तो कभी पता ही नहीं चलता है या पता चल भी जाता है तो वे योजनाएँ भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाती हैं।

'अकाल में उत्सव' उपन्यास में 'रामप्रसाद' जैसे किसान की आत्महत्या सरकार की उदासीनता और भ्रष्टाचार को बयाँ करने के लिए काफी है। जो किसान करोड़ों लोगों को निवाला देता है, आज वह ख़ुद के निवाले के लिए ही लाचार है। अगर एक कृषि प्रधान देश में किसान को अपने जीवन यापन के लिए ही संघर्ष करना पड़े और उस संघर्ष से त्रस्त होकर उसे अपनी इहलीला समाप्त करने को विवश होना पड़े तो यह समाज और सत्ता दोनों के ही मुँह पर तमाचे से कम नहीं है। अगर एक कृषि प्रधान देश में किसान आत्महत्या करता है तो उसके लिए ज़िम्मेदार 'अत्महत्या' करने वाला है या फिर वह व्यवस्था जिससे त्रस्त हो कर उसे यह कदम उठाना पड़ाता है। व्यवस्था के निकम्मेपन और किसानों को दोयम दर्जे का नागरिक मानकर चलने वाले नेताओं, अधिकारियों, बाबुओं, मीडिया के ठेकेदारों तथा सामाज में अलग-अलग वेष में मौजूद हत्यारों की कथा है 'अकाल में उत्सव'।

एक अनुमान के मुताबिक देश में प्रति वर्ष दस हज़ार से अधिक किसान तो वहीं तीस हज़ार से अधिक दिहाड़ी मज़दूर शासन तंत्र की नाकामियों की वजह से आत्महत्या करने को विवश होते हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आँकड़ों के मुताबिक देश में प्रति वर्ष हजारों किसान आत्महत्या करते हैं। 'द इकोनोमिक्स टाइम्स' के मुताबिक २०१९ में ४२,४८० किसान और दिहाड़ी मज़दूरों ने आत्महत्या की। पिछले २५ वर्षों में लगभग तीन लाख किसानों ने आत्महत्या किया है। केंद्र सरकार ने २०२० में तीन कृषि कानूनों को पारित किया और उसके खिलाफ़ देश भर में किसान पिछले कई महीनों से विरोध प्रदर्शन कर रहे हैं लेकिन फिर भी सरकार उनकी माँगें सुनने को तैयार नहीं है। कोरोना महामारी के बीच भी किसान अपनी जान हथेली पर लेकर आंदोलन करने को आख़िर क्यों विवश है ? इस प्रश्न का कुछ हद तक उत्तर पंकज सुबीर का यह उपन्यास देता है। यह सब बताना यहाँ इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि 'अकाल में उत्सव' उपन्यास इन्हीं किसानों में से मध्यप्रदेश के एक किसान 'रामप्रसाद' की कहानी है, जहाँ उसे सत्ता और व्यवस्था की नाकामियों की वज़ह से पहले तो उसे दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती है और फिर आख़िर में सिस्टम के आगे हार मानकर उसे फंदे में झूलना पड़ता है। और ऐसे हज़ारों रामप्रसाद देश में हर वर्ष मौत को गले लगा लेते हैं।

कथानक मध्यप्रदेश के एक छोटे से गाँव सूखा पानी का है। रामप्रसाद के अलावे इस कहानी में लगभग दर्जनभर ऐसे पात्र हैं, जो समाज के अलग-अलग कार्य क्षेत्र से ताल्लुक रखते हैं। सरकारी कर्मचारियों से लेकर राजनेताओं तक, ऐसा लगता है मानों सिस्टम बदल जाने की बातें सिर्फ फ़ाइलों में ही करते हैं और हक़ीक़त कुछ और ही है। 'रामप्रसाद' को पहले तो प्रकृति की मार झेलनी पड़ती है फिर बाद में व्यवस्था के सामने विवश होना पड़ता है और आख़िर में दर-दर भटकने के बाद ख़ुद को असहाय मानकर ज़िंदगी को समाप्त कर लेता है। ऐसी ही सामाजिक व्यवस्थाओं की परतें खोलने की मार्मिक कथा इस उपन्यास की है। कहने को तो आज हम विज्ञान और नई तकनीक की इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं, लेकिन वास्तव में ये कुछ प्रतिशत लोगों के लिए ही सत्य है। किसान, दिहाड़ी मज़दूर और समाज के अन्य निर्धन लोगों के लिए आज भी शोषक और शोषितों वाली व्यवस्था ही है।

वर्तमान राजनीतिक एवं सरकारी कार्यालयों की कड़वी सच्चाई, जिला अधिकारी से लेकर पंचायत के क्लर्क तक में व्याप्त भ्रष्टाचार, लचर सरकारी स्वास्थ्य और शिक्षा व्यवस्था और इन सब के बीच किसानों की बेबसी का यथार्थ चित्रण है 'अकाल में उत्सव'। उपन्यास में दो कथाएँ समानांतर चलती हैं। वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि सभी पहलुओं को उपन्यासकार ने बखूबी पाठक के समक्ष रखा है। 'सूखा पानी' हिंदुस्तान के लगभग सभी गाँवों का प्रतीक है तो 'रामप्रसाद' सम्पूर्ण भारतीय किसान का और 'कमला' पीड़ित किसान परिवार की महिला का। 'श्रीराम परिहार' अँग्रेज़ी राज की मानसिकता वाले कलेक्टर, 'राकेश पांडे' उप जिलाधिकारी, 'मोहन राठी' राजनीतिक कार्यकर्ता और 'राहुल' जैसे पत्रकार मध्यप्रदेश ही नहीं बल्कि देश के लगभग सभी राज्यों के प्रतीक हैं। पटवारी, बैंक कर्मचारी, चौरसिया, मिश्रा जैसे पात्र भी देश के सभी राज्य, जिलों, गाँवों के प्रतीक हैं। ये सभी पात्र भेड़ियों की तरह शिकार की तलाश में अपनी आँखें गड़ाए रहते हैं कि कब कोई शिकार मिले और उसपर वे टूट पड़ें।

एक छोटे जोत वाला किसान पीढ़ी दर पीढ़ी अपने किसान होने की बेबसी की मार झेलता आ रहा है। बीसवीं सदी में प्रेमचंद के किसानों की जो हालत थी, आज २१वीं सदी के दूसरे दशक के किसानों की भी लगभग वैसी ही दशा है। पिछले सौ वर्षों में सिर्फ बदला है तो बस इतना कि तब सेठ और ज़मींदार किसानों का शोषण करते थे और आज नेता और सरकारी तंत्र। आज़ादी के बाद से कितनी ही सरकारें और योजनाएँ बनी परंतु किसानों के हालात बिलकुल भी नहीं बदले। किसानों को क़र्ज़ का बोझ पीढ़ी दर पीढ़ी मिलता आ रहा है। क़र्ज़, ब्याज, शोषण, आत्महत्या फिर अगली पीढ़ी भी इसी कुचक्र का हिस्सा बनती आ रही है। एक तरफ रामप्रसाद दो एकड़ ज़मीन का किसान अपने खेत में लगी फ़सल के पकने और कट कर बाज़ार तक पहुँचने की आस में अपनी पत्नी कमला को उसकी शादी में माँ से मिली 'तोड़ी' को बाज़ार के एक आभूषण दुकान पर बेचकर आ रहा है। दूसरी तरफ शहर में राज्य के सांस्कृतिक मंत्रालय द्वारा एक तीन

दिवसीय स्पोर्ट्स एडवेंचर उत्सव के लिए बड़े आयोजन की तैयारियाँ चल रही हैं। वैसे तो यह उत्सव नाम के लिए है, वास्तव में इस आयोजन का उद्देश्य है, सांस्कृतिक मंत्रालय की तरफ से ज़िले के हिस्से के लिए आवंटित सरकारी राशि का वर्ष के आख़िर में बंदरबाट करना। कहीं राशि वापस न चली जाए इस डर से उत्सव के सफल आयोजन के लिए ज़िले के कलेक्टर सहित सभी अधिकारी दिन-रात एक किए हुए हैं।

कथानक में रामप्रसाद के परिवार में उसकी पत्नी कमला उनके तीन बच्चें, बहनें और बहनोई हैं। कथानक का केन्द्रीय पात्र रामप्रसाद है। एक क़र्ज़दार किसान परिवार किस प्रकार सरकारी तंत्र की हरामखोरी का शिकार होता है और उस व्यवस्था के सामने कैसे विवश होकर घुटने टेक देता है, उसका यथार्थ रूप इस उपन्यास में पाठक महसूस करता है। 'अकाल' रामप्रसाद का यथार्थ है तो वहीं 'उत्सव' सरकारी ख़ज़ाने को लूटने का तरीक़ा, तरीक़ा क्या बल्कि इसे उत्सव कहना ही ज़्यादा सही होगा। रामप्रसाद के दुखद अंत और सांस्कृतिक उत्सव के सफल आयोजन होने के बीच कथानक में २१वीं सदी की उन सभी विसंगतियों को बहुत ही बारीक और सजीवता से पंकज सुबीर ने उकेरा है, जो आज मानव को दानव बनाने में लगा है। देश के प्रशासनिक अधिकारियों की अंग्रेज़ी मानसिकता अंग्रेज़ों के देश छोड़ के चले जाने के ७० वर्ष बाद भी किस प्रकार से सिस्टम का अंग बना हुआ है और वह सिस्टम यहाँ के ग़रीब, किसान और निम्न वर्ग के लोगों का दिन-रात शोषण कर रहा है। "कलेक्टर नाम के इस प्राणी को अंग्रेज़ों ने बहुत फुर्सत में बनाया था। सारी कूटनीति घोलकर डाल दी थी उसमें।" (पृष्ठ-१७४)

एक ज़िलाधिकारी की किसानों के प्रति नजरिया देखिये-"हिंदुस्तान का किसान बहुत लालची होता है, इसको ज़रा सा लालच दे दो तो, यह कुछ भी करने को तैयार रहता है। क़र्ज़ ले लेगा तो फिर क़र्ज़ा माफ़ी के लिए चिल्लाएगा, बिजली का यूज़ कर लेगा फिर बिजली के बिल माफ़ करने के लिए रोएगा। फ़सल ख़राब हो गई तो मुआवज़े के लिए छाती पिटेगा। इससे लालची कोई हो ही नहीं सकता है। सरकार भी वोट के चक्कर में गोद में बिठा कर खिलाती है इनको। इनकम टैक्स यह नहीं भरें, दूसरा कोई टैक्स यह नहीं भरे, पहले लगान भरते थे, तो वह भी ख़तम-सा हो ही गया है। एक बार खेत में बीज डाल दिये, फ़सल काट ली, और उसके बाद कोई काम नहीं। भारत के किसानों के साथ तो केवल अंग्रेज़ ही सही तरीक़े से डील करते थे, उस तरीक़े के बिना तो यह लोग मानने वाले भी नहीं है।" पृष्ठ- १७४-७५ जिस कलेक्टर के हाथों में ज़िले की समूची आबादी की ज़िम्मेदारी होती है, जिसके हाथों में सरकारी योजनाओं को जन-जन तक पहुँचने की ज़िम्मेदारी होती है और उस जनता के लिए अगर ऐसी निर्दयी सोच रहेगी तो वाकई में सभी ग़रीब, ज़रूरतमंद और किसानों का जीवन उसके भाग्य के भरोसे ही रहेगा। जब तक हमारे देश में श्रीराम परिहार जैसी मानसिकता वाले ज़िलाधिकारी और सरकारी तंत्र रहेगा तब तक किसानों क्या बल्कि देश का भी भला होने वाला नहीं है। अब हाल ही में मई २०२१ में देश कोरोना महामारी की दूसरी लहर से कराह रहा था और उस बीच देशभर के कई ज़िलाधिकारियों और अन्य अधिकारियों की असंवेदनशील करतूतें मीडिया में देखने को आईं। इक्कीसवीं सदी के भारत की यह कड़वी सच्चाई है, चाहे कलेक्टर हो या अन्य सरकारी नौकरशाह, सभी अपने पदों पर बैठे तो हुए हैं जनता की सेवा करने के लिए लेकिन सेवा तो दूर जनता से ऐसे पेश आते हैं मानों वो कोई ग़ुलाम हों और जनता पर एहसान कर रहे हों।

आज समाज में जिस प्रकार से धार्मिक अंधविश्वास हावी होता जा रहा है और धर्म को व्यवसाय बनाया जा रहा है, वह समाज को मज़बूत नहीं बल्कि और खोखला करते चला जा रहा है। धर्म के नाम पर चुनाव में वोट करना, उपद्रव और अन्य कुकृत्य करना आज इस ज्ञान और विज्ञान की सदी में न तो स्वीकार्य है और न ही प्रासंगिक। वैसे तो कोई भी धर्म कुकृत्य करने की छूट कभी नहीं देता है। धर्म के इस विकृत होते रूप को रचनाकार ने बहुत बेचैनी से पाठक के समक्ष रखा है। अब धर्म को व्यवसाय और अपने फ़ायदे के लिए एक हथियार के रूप में प्रयोग में लाया जाने लगा है। धर्म के ढकोसलेबाज़ी और धंधा बनते जाने के यथार्थ रूप को भी पंकज सुबीर ने तमाम पात्रों के संवादों के माध्यम से पाठक के समक्ष रखने की कोशिश की है। समाज में धर्म को लेकर ऐसी संकीर्णता है कि लोग भूखे पेट रह कर भी अपने ईश्वर के प्रति अनास्था नहीं रख सकते। जिसे खाने के लाले पड़े हों वह भी अपने धर्म की कट्टरता को नहीं छोड़ता। धर्म के असली स्वरूप को मानने को कोई भी तैयार नहीं है। जिसे धर्म का साधारण अर्थ तक नहीं पता, वह धार्मिक उपदेश देता है और धर्म के नाप पर न जाने अपना कितना बड़ा साम्राज्य खड़ा कर लेता है। आज धर्म जिस प्रकार हमारे जीवन में हावी होता जा रहा है, वह मानव के अस्तित्व के लिए कहीं न कहीं ख़तरे की घंटी है। धर्म के नाम पर धर्म गुरुओं के द्वारा अमीर तो अमीर ग़रीब जनता से भी वसूली किया जाता है। "आपके अपने घर का जीर्णोद्धार भले ही नहीं हो पाए लेकिन, आपको भगवान के घर के जीर्णोद्धार के लिए तो पैसा अनाज की शक्ल में देना है।" पृष्ठ-१८४ धार्मिक पाखंड के विषय में उपन्यासकार कई जगह चर्चा करते हैं।

पाठक के सभी प्रश्नों का उत्तर उपन्यासकार अपने पात्रों के माध्यम से दिलवा देता है। "अगर किसान खेती नहीं करेगा तो आप और हम खाएँगे क्या ? और वैसे भी अब किसान धीरे-धीरे मज़दूर होता जा रहा है इस देश में। उसकी ज़मीनें जा रही हैं। कुछ दिनों बाद इस देश में मल्टीनेशनल कंपनियाँ ही खेती केरेंगी सारी।" पृष्ठ-१९४ धर्म को व्यवसाय बनाने वालों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। "काश जिस प्रकार से देश में मंदिर बाबा पैदा हो रहे हैं, उस तरह से गाँवों में कोई स्कूल बाबा, अस्पताल बाबा या सड़क बाबा भी पैदा होना शुरू हो जाएँ, जो क़सम खाएँ कि पचास गाँव में स्कूल, अस्पताल तथा सड़क बनवाएँगे।" पृष्ठ-१८६ धर्म और आस्था लोगों में डर पैदा करता है

और उस डर की वजह से ही धर्म का कारोबार फलता-फूलता है। "दुनिया के सारे धर्म स्थल असल में भय का कारोबार करने वाली दुकानें हैं। इन दुकानों की बिक्री ही भय पर टिकी है, जितना अधिक भय उतनी अधिक बिक्री। डराओ और कमाओ।" पृष्ठ-१८६ अगर कहें कि जिस तीव्र गति से विश्व में पूँजीवाद का विस्तार हो रहा है उसी तीव्रता से धार्मिक कट्टरता का भी विस्तार हो रहा है तो शायद ग़लत नहीं होगा।

देश की जर्जर सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं की बदहाली को उपन्यास के माध्यम से जनता के सामने रखा है। सरकारी स्वास्थ्य केन्द्रों की बदहाली और उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर भी पाठक को ध्यान दिलाया है। आए दिन हम अख़बारों में सरकारी अस्पताल के डॉक्टरों एवं कर्मचारियों की मिलीभगत से दवाई की कालाबाज़ारी और निजी लैब में जाँच के नाम पर लूट के रैकेट के बारे में पढ़ते हैं। सरकारी डॉक्टर, सरकारी अस्पताल में आए मरीज़ों को अपने निजी नर्सिंग होम में भर्ती करवाने, बाहर से दवाइयाँ ख़रीदने और अनगिनत टेस्ट करवाने को विवश करवाते हैं। "यहाँ सरकारी अस्पताल में तो सब ऐसा ही चलेगा कामचलाऊ, तुम लोग उनको डॉक्टर साहब के घर ले जा कर दिखा लो एक बार। वहाँ पर अच्छी तरह से देख लेंगे। यहाँ तो एक बार में इतने सारे मरीज़ों को देखना होता है कि बस देखा न देखा एक बराबर ही होता है। घर ले जाकर दिखा दो, उनकी फीस दे दो, अच्छी तरह से देख लेंगे और अगर तुम्हारी गुंजाइश होगी, तो किसी नर्सिंग होम में भी भर्ती कर देना, वहाँ दिन भर डॉक्टर साहब का चक्कर लगता रहता है।" पृष्ठ-६५ कोरोना महामारी में एक तरफ हमने सरकारी अस्पतालों की बदहाली देखी तो वहीं दूसरी तरफ निजी अस्पतालों द्वारा आपदा को अवसर बनाने की अनगिनत घटनाएँ सुनने, देखने और पढ़ने को मिली। सरकारी स्वास्थ्य तंत्र के प्रति सरकार की बेरुख़ी और वहाँ व्याप्त अव्यवस्था का ख़ामियाज़ा आम जनता को उठाना पड़ता है। अमीरों के लिए तो मॉल नुमा बड़े-बड़े सुपर स्पेशिएलिटी हॉस्पिटल हैं ही।

आज किसानों की बेबसी और पीड़ा का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि जब एक किसान को क़र्ज़ के बोझ से बेबस हो कर अपनी स्त्री के उन आभूषणों को बेचना पड़ता है जिसे वो पुरखों से चली आ रही परंपरा का हिस्सा मानता है। पहले तो आभूषणों को गिरवी रखता है और बाद में क़र्ज़ बढ़ने पर उसे बेचना पड़ जाता है और फिर उसके बाद परंपरा का आगे बढ़ाने का सिलसिला टूट जाता है। फ़सल बोने के लिए लिये गए क़र्ज़ की लाचारी को उपन्यासकार ने पाठक के सामने रखा है। "कमला की तोड़ी बिक गई। बिकनी ही थी। छोटी जोत के किसान की पत्नी के शरीर पर के ज़ेवर क्रमशः घटने के लिए होते हैं। और घटाव का एक भौतिक अंत शून्य होता है, घटाव की प्रक्रिया शून्य होने तक जारी रहती है। पुरुष पुरखे, खेत, ज़मीन और उन पर लदा हुआ क़र्ज़ छोड़ कर जाते हैं, तो महिला पुरखिनों की ओर से ज़ेवर मिलते हैं। कुछ धातुएँ। जब परिवार की महिला के पास इन धातुओं का अंत हो जाता है, तब यह तय हो जाता है कि किसानी करने वाली बस यह अंतिम पीढ़ी है, इसके बाद अब जो होंगे, वह मज़दूर होंगे।" पृष्ठ-१२२ और इसी प्रकार से देश में छोटे जोत के किसान कर्ज़ के बोझ तले दबते चले जा रहे हैं और फिर मज़दूर बनने को विवश होते हैं। "हर छोटा किसान किसी न किसी का क़र्ज़दार है, बैंक का, सोसायटी का, बिजली विभाग का या सरकार का।" पृष्ठ-२९ आज किसानों का यही यथार्थ है। लिए गए कर्ज़ को न चुका पाने की दशा में हज़ारों किसान प्रति वर्ष मौत को गले लगा लेते हैं और हज़ारों मज़दूर बनने को शहरों की ओर पलायन करते हैं।

वर्तमान भारतीय राजनीति के यथार्थ रूप को पात्रों के बीच होने वाले संवादों के माध्यम से सामने लाने का प्रयास किया है। जो राजनीतिक पार्टियाँ लोकतंत्र की आवाज़ बुलंद करती हैं उन पार्टियों में ही लोकतंत्र नहीं है। "यह होता है पार्टियों का अंदरूनी लोकतंत्र। विरोध करेंगे, तो हाशिये पर डाल दिये जाएँगे। और हाशिये पर जाने से अच्छा है कि बहते रहो धारा के साथ। सबसे अच्छा पार्टी कार्यकर्ता वह होता है, जो ऊपर से आए हुए हर निर्णय को, आँख बंद कर अपना समर्थन देता है। पार्टियों को कार्यकर्ता नहीं चाहिए होते, उन्हें अंधे, बहरे और गूँगे लोगों की फ़ौज चाहिए होती है। और इन अंधे, बहरे, गूँगे लोगों के पास दिमाग़ या विचार जैसी किसी चीज़ का तो अंश भी नहीं होना चाहिए। न सुनो, न देखो, न बोलो और सबसे ज़रूरी, सोचो भी मत।" पृष्ठ-९६ आज जिसे अंध भक्त कहते हैं यहाँ कथाकार उन्हीं अंध भक्त रूपी राजनीतिक कार्यकर्ताओं को रेखांकित करते हैं। आज ऐसा लगता है मानों राजनीतिक पार्टियों के कार्यकर्ता विवेक शून्य हो रहे हैं। वर्तमान राजनीतिक अंध भक्तों में न तो तर्क करने की क्षमता है और न ही आलोचना करने की समझ।

पत्रकारिता के गिरते मूल्य पर कथाकार की चिंता उपन्यास में कई जगह जाहिर होती दिखती है। पत्रकारिता और पत्रकार किस प्रकार सत्ता की दलाली कर रहे हैं, उसका सटीक उदाहरण उपन्यास में पाठक को मिलता है। "जनसम्पर्क विभाग के पास एक विशेष फंड है, जिसको सीधी भाषा में कहें तो वह पत्रकार-मनोरंजन फंड होता है। इस फंड से पत्रकारों को चाय-नाश्ता आदि करवाने का प्रावधान होता है। ताकि वह सरकार के खिलाफ़ नहीं लिखे।" पृष्ठ-१८ आज हम अपने आस-पास ऐसी अनगिनत घटनाएँ देखते है, जहाँ बलात्कार, किसान आत्महत्या, सरकार विरोधी आंदोलन, सरकारी भ्रष्टाचार की ख़बरों को सरकारें चाहती हैं कि दबा दिया जाए और ऐसा करने की कोशिश भी करती हैं (यह बात अलग है कि आज सोशल मीडिया सरकार को उन कोशिशों में बहुत कामयाब होने नहीं देती है)। और इसमें सरकार को जिस तरीक़े के पत्रकार मदद करते हैं, वैसे ही पत्रकारों की ओर लेखक पाठक का ध्यान आकृष्ट करवाते हैं। ज़िले के कलेक्टर पत्रकार राहुल से कहते हैं "और हाँ राहुल एक बात ज़रा ध्यान रखना कि सारे पत्रकारों को इस कार्यक्रम को लेकर विश्वास में ले लेना। ज़रा मैनेज करके रखना

मीडिया को।" पृष्ठ-४०

ज़िले के लाखों लोगों की ज़िम्मेदारी जिस 'कलेक्टर' के हाथों में होती है, वह पत्रकारों को मैनेज करने की बात कर रहा है। जिलाधिकारी श्रीराम परिहार एक बार फिर पत्रकार राहुल से कहते हैं- "राहुल मैनेज करो कुछ....सीएम साहब बहुत ग़ुस्साए हुए हैं। बार-बार जो मुख्यमंत्री के क्षेत्र में किसान ने आत्महत्या की है, मीडिया पर आ रहा है, उससे उनकी छवि ख़राब हो रही है। देखो कहीं कुछ मैनेज हो सकता हो तो कर लो।" पृष्ठ-२३८ इसके बाद पत्रकार राहुल कलेक्टर साहब को सुझाव देता है- "सर अब इलेक्ट्रोनिक मीडिया रात में तो जाएगी नहीं वहाँ गाँव में। सारे सुबह ही भागेंगे अपने-अपने कैमरे लेकर। तो एक तो यह कीजिए कि रात को ही मैनेज करवाइये वहाँ गाँव भेजकर किसी को। कोई डिफरेंट स्टोरी करवाने की कोशिश कीजिये, ताकि किसान शब्द हट जाए स्टोरी में से। बाकी अब जो टिकर चलने से डैमेज हो गया है, वह तो हो ही गया है। प्रिंट में देख लेता हूँ मैं कि न्यूज़ कुछ डैमेज़िंग नहीं हो ज़्यादा। बाकी छपने से तो नहीं रोक सकते अब हम क्योंकि, इलेक्ट्रोनिक मीडिया पर आ गई है।" पृष्ठ-२३८-२३९ वर्तमान मीडिया को आख़िर गोदी मीडिया क्यों कहा जाता है, उसका उत्तर उपन्यास में पत्रकार और सत्ता की साँठ-गाँठ के रूप में सामने आता है और सामान्य पाठकों के लिए भी पत्रकारिता के इस गिरते मूल्य को समझना आसान हो जाता है। "आजकल अख़बार पढ़ता कौन है ? अख़बार का काम अब अगले दिन पोहा-समोसे बाँधने का ही रह गया है।" पृष्ठ- ५७ यह व्यंग्य अपने आप में पत्रकारिता की शर्मनाक स्थिति को बयाँ करने के लिए काफी है।

उदारीकरण नाम की जिस चिड़िया ने सन् ९० के दशक में उड़ना शुरू किया था, उसकी यात्रा आज तक यथावत् चलती ही जा रही है। वह न तो पीछे मुड़ कर देखती है और न ही दाँए-बाँए। इसका एकमात्र लक्ष्य है पूँजीवादी व्यवस्था के उत्थान नामक स्थान पर ही जा कर रुकना। जिस उदारीकरण को लोगों के आर्थिक विकास और उन्नति के लिए खोला गया था आज उसने समाज में आर्थिक खाई को पहले से भी अधिक गहरा कर दिया है। उदारीकरण ने देश में एक ऐसे पूँजीवादी वर्ग को जन्म दिया है जिसका सरोकार किसान, मज़दूर, ग़रीब, निम्न-मध्यम वर्ग से तो दूर-दूर तक नहीं है, है तो सिर्फ ख़ुद को मालामाल करने भर से। "कितना बड़ा मज़ाक है कि ग़रीब किसान की मक्का का तो न्यूनतम समर्थन मूल्य तय है मगर उस मक्का से कॉर्न-फ्लैक्स बनाने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनी के लिए कोई भी समर्थन मूल्य नहीं है। डेढ़ रुपये किलो की मक्का को बहुराष्ट्रीय कंपनी कॉर्न-फ्लैक्स बना कर तीन सौ रुपये किलो में बेचती है।" पृष्ठ-४८ अब जब देश में ऐसी व्यवस्था रहेगी तो शायद सदियाँ बीत जाएँगी फिर भी इन किसानों की हालत ऐसी ही रहेगी। सरकारें आज पूँजीवाद के साँठ-गाँठ से चलती हैं तो भला उन पूँजीपतियों के फ़ायदे के बारे सरकारें कैसे नहीं सोचेंगी। जनता को गुमराह करके वोट लेना और बड़े-बड़े उद्योगपतियों के हित में नीतियाँ बनाना तो अब सरकारें खुलकर कर रही हैं।

समाज का एक और ऐसा सच देखिये जिसे हम सब जानकर भी अंजान बने रहते हैं। "नीचे की तरफ पानी में नमक और मिर्च घोल के झोल सा बना है, उसमें ही मीड़-मीड़ कर रोटी खा रहा है। एक तरफ कुचला हुआ प्याज़ा रखा है। और एक दो हरी मिर्च रखी है, जिनको हर कौर के साथ कुतल लेता है वो।" पृष्ठ- ४९ नियति का कितना बड़ा खेल है कि जिस किसान की उपजाई फ़सल से हज़ारों प्रकार की व्यंजनें बनती हैं और उन व्यंजनों को खाने के लिए करोड़ों की गाड़ियों में चलने वाले लोग एक से एक होटल में टोकन लेकर घंटों लाइन में लगते हैं। जो पूरी दुनिया को निवाला देता है, उसके नसीब में मात्र हरी मिर्च, नमक और प्याज है। क्या इसे ही पूँजीवाद का चरम परिणति कहते हैं ? क्या सन् १९९१ ई. में (एलपीजी पॉलिसी) उदारीकरण, निजीकरण और वैश्विकरण की नीति किसानों के इसी दशा के लिए शुरू की गई थी ? अगर नहीं तो वो वादे और सपने कहाँ हैं, जो सन् १९९१ ई. में अर्थव्यवस्था को उदार बनाने के नाम पर किए गए थें ? क्या देश में किसानों की बदहाली सन् १९९१ ई. के पहले भी ऐसी ही थी ? किसानों की स्थिति में सन् १९९१ के पहले और आज ३० वर्ष बाद भी कोई सुधार आया है ? ये तमाम ऐसे प्रश्न हैं जो पाठक के मस्तिष्क में उपन्यास पढ़ते-पढ़ते आते हैं और अगर पाठक सजग है तो फिर इन प्रश्नों के उत्तर उसके दिमाग़ में ख़ुद-ब-ख़ुद आ जाते हैं।

कहीं न कहीं अपनी भाषा, संस्कृति और परंपरा पर पाश्चात्य हमला लेखक को कचोटता है और यह उपन्यास में कई जगह दिखता है। "सही कह रहे हो आप मोहन जी। यह किसी षड्यंत्र के तहत ही किया जा रहा है। हमारी भाषा, हमारी संस्कृति को समाप्त करने के लिए।, हाँ सर, अब तो घर में भी कहावतों का उपयोग करने में डर लगता है, कॉन्वेंट स्कूल में पढ़े बच्चे डाट देते हैं कि क्या गंदी बातें कर रहे हैं। एक दिन मैंने अपनी पोती को किसी बात पर कह दिया कि 'गोदड़े में पादने का लाड़ नहीं होगा हमसे', तो वह रोती रही देर तक कि दादू हमसे ऐसा कह रहे हैं। बताइये क्या किया जाए ? बच्चों से बात ही न की जाए क्या, क्योंकि, मुहावरें और कहावतें तो ज़बान पर चढ़े हैं, दिमाग में फीड हैं, वह तो बात-बात में निकलेंगे ही, उनको निकलने से कैसे रोका जाए ?" पृष्ठ-१४०-४१ समाज में आधुनिक शिक्षा के मिल जाने से भले ही मल्टीनेशनल कंपनियों में नौकरियाँ मिल जा रही हैं लेकिन उसके साथ मानवीय मूल्यों का ह्रास होते जाना बहुत ही चिंतनीय है। अपनी भाषा, बोली और संस्कृति को भूलना, अपनी पहचान को मिटाना है।

कथानक ऐसा है कि पाठक इसे एक बार पढ़ने के लिए बैठता है तो फिर कोशिश करता है कि समाप्त कर के ही उठे। पात्रों के संवादों में इतनी जीवंतता है कि हर एक पात्र के बीच का संवाद पाठक को ख़ुद के जीवन या आस-पास की घटना ही लगती है। एक मुख्य कथानक के साथ अनगिनत छोटी-छोटी कथाएँ, लोक कथाएँ, लोकोक्तियाँ, कहावतें, मुहावरें आदि कथानक की रोचकता को

बनाएँ रखती हैं। स्थानीय बोली और शब्दों का प्रयोग कथा को यथार्थ के और क़रीब ला देता है। ग्रामीण परिवेश, संस्कृति, खान-पान, रीति-रिवाज, धार्मिक आस्था, स्त्री की सामाजिक और पारिवारिक स्थिति को भी बखूबी स्थान दिया है। भाषा का बेहतरीन प्रयोग किया है। जैसे पात्र हैं, वैसी भाषा का प्रयोग किया है। अधिकारी, समाजसेवी, राजनेता, पत्रकार, अस्पताल और बैंक कर्मचारी, पटवारी आदि की भाषा में उसके पेशे के साथ-साथ आज के अंग्रेज़ी और हिन्दी मिश्रित शब्दों का प्रयोग किया हैं। आज सोशल मीडिया के ज़माने में आम बोल-चाल की यही भाषा है। वैसे तो यह उपन्यास एक कर्ज़ तले दबे किसान 'रामप्रसाद' पर केन्द्रित हैं परंतु इसके माध्यम से उपन्यासकार ने समाज के उन सभी पहलुओं का पोल बखूबी खोला है, जिसका सरोकार देश के बहुसंख्य वर्ग से है। इस एक कथा में समाज के सभी महत्त्वपूर्ण विषयों/मुद्दों पर बात की है।

पंकज सुबीर व्यंग्यों के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था की खोखली परतों को खोलते हैं, चाहे वह सरकारी शिक्षा व्यवस्था हो या फिर स्वास्थ्य, सभी के यथार्थ रूप को पाठक के सामने रख दिया। सरकारी कार्यालयों की कार्य प्रणाली और उसमें व्याप्त लूट-खसोट को उसी रूप में रखा है जिस रूप को अमूमन हममें से हर किसी ने कभी न कभी सामना किया होगा या फिर उन परिस्थितियों को अपने जीवन में यथार्थ रूप में झेल होगा। ऐसा लगता है मानों सभी पात्र हमारे जीवन से किसी न किस रूप में संबद्ध हैं और हमारे जीवन की यथार्थ तस्वीर आँखों के समाने आ जाती है।

उपन्यासकार सामाजिक समस्याओं को जिस संवेदनशीलता से पाठक को बताते हैं वह अद्वितीय है। जैसे-जैसे पात्रों के संवाद कथानक को आगे बढ़ाते हैं वैसे-वैसे सरकारी सिस्टम के प्रति पाठक का ग़ुस्सा बढ़ता ही जाता है। यह एक ऐसा उपन्यास है जिसे पढ़ने के बाद हर एक गंभीर पाठक को कुछ न कुछ लिखने का मन करेगा।

000

पुस्तक समीक्षा

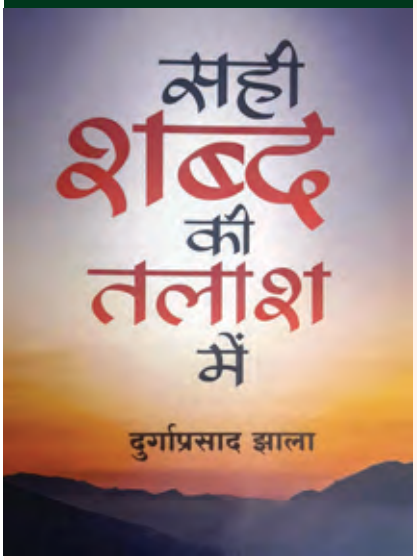

सही शब्द की तलाश में

(कविता संग्रह)

समीक्षक : ब्रजेश कानूनगो

लेखक : दुर्गाप्रसाद झाला

प्रकाशक : ज्ञानमुद्रा प्रकाशन, भोपाल

'सही शब्द की तलाश में' वयोवृद्ध कवि डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला का नवीनतम कविता संग्रह है जिसमें उनकी 101 छोटी बड़ी कविताएँ संग्रहित हैं। संग्रह की कविताओं से गुज़रते हुए सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि ये रचनाएँ मनुष्य जीवन और प्रकृति को नज़दीक से देखने समझने वाले धीर गंभीर अनुभवी कवि की अभिव्यक्तियाँ हैं जो केवल बाह्य चीज़ों के निरीक्षण से नहीं बल्कि उस दृश्य या अनुभूति के भीतरी मंथन,विश्लेषण से निकल कर आई हैं। कविता के लिए सही शब्द की तलाश का रास्ता कवि के अंतर्मन के भीतर से ही गुज़रता है। जहाँ शब्दों का अथाह सागर हिलोरे मारता है लेकिन असली शब्द मोतियों की प्राप्ति तो सटीक अर्थ और विचार की गहराई में उतरकर ही पाई जा सकती है। संग्रह की कविताएँ कवि के भीतर से निकलकर मोतियों की तरह पाठक के भीतर भी संवेदनाओं की चमक से उजाला करती हैं।

लगभग 90 वर्ष के जीवनानुभव के बाद जीवन के उत्तरार्ध में कवि के कविता और सृजन के प्रति समर्पण और संलग्नता किसी भी रचनाकार के लिए प्रेरणादायक होगी। डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला जी का स्वयं यह मानना है कि जीवन का उत्तरार्ध केवल उदासी,अवसाद और अकेलेपन की त्रासदी का ही नाम नही है। वह उन उठती गिरती तरंगों का नाम भी है जो आसमान को छूने को लालायित रहतीं हैं। अपनी दुर्बलताओं को स्वीकारने में उसे कोई हिचक नहीं, लेकिन उसके बावजूद जिंदगी से उसका रिश्ता कायम रहता है।

झाला जी की कविताओं में न सिर्फ मनुष्य के दुखों, स्वप्नों,संघर्षों और स्मृतियों से बल्कि प्रकृति और कवि कर्म से उनका गहरा जुड़ाव दिखाई देता है। कुछ हद तक उनका अपना अलग कविता का मुहावरा उनके सृजन में पढ़ा जा सकता है। ख़ास कर छोटी कविताओं में वे चंद पंक्तियों में जीवन का बड़ा दर्शन उद्घाटित करते दिखाई देते हैं।

एक कविता 'आँसू' की कुछ पंक्तियाँ देखिए- आँसू की एक बूँद में जीवन का महाकाव्य लिखा रहता है/ आँखों के आँसू जब आग बन जाते हैं,हत्यारे झुलसने लगते हैं...

'सही शब्द की तलाश में' संग्रह में वरिष्ठ कवि डॉ. दुर्गा प्रसाद झाला जी की ऐसी ही गहरे अर्थों और संवेदनाओं से युक्त बेहद प्रभावी कविताएँ हैं जो अच्छी भी लगती है और जीवन को समझने में रास्ता भी दिखाती हैं। इस कृति के लिए झाला जी को बहुत-बहुत बधाई और शुभकामनाएँ।

000

ब्रजेश कानूनगो, 503,गोयल रिजेंसी, इंदौर 452018
मोबाइल- 9893944294

पुस्तक समीक्षा

किसी शहर में

(उपन्यास)

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : अश्विनीकुमार दुबे

प्रकाशक : नेशनल पेपरबैक्स, नई दिल्ली

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

"किसी शहर में" वरिष्ठ व्यंग्यकार, कथाकार अश्विनी कुमार दुबे का चर्चित व्यंग्य उपन्यास है। व्यंग्यकार के समक्ष यह चुनौती होती है कि वह अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज की जीती जागती तस्वीर पेश करे। इस दृष्टि से अश्विनी कुमार दुबे की व्यंग्य रचनाएँ समय से संवाद करते हुए दिखाई देती है। दूसरी पीढ़ी के वरिष्ठ व्यंग्यकारों ने अपनी व्यंग्य प्रतिभा से हिन्दी गद्य व्यंग्य को ऊँचाई प्रदान की है उनमें अश्विनी कुमार दुबे का स्थान विशेष है। इन्होंने कथात्मक शैली में व्यंग्य को सरलता, पठनीयता प्रदान की है। अश्विनी कुमार दुबे जीवन के विभिन्न पहलुओं पर सामान्य प्रसंगों द्वारा विसंगतियों की तह में चले जाते हैं और कथा के माध्यम से विसंगतियों की गाँठें खोलकर पूरे परिवेश का चित्र उकेरते हैं और आम आदमी की व्यथा को प्रकट करते हैं। दुबे जी की व्यंग्य रचनाओं में सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और कथ्य की गहराई दृष्टिगत होती है। वरिष्ठ व्यंग्यकार श्री प्रेम जनमेजय अश्विनी कुमार दुबे की व्यंग्य रचनाओं पर लिखते हैं "अश्विनी कुमार दुबे मात्र व्यंग्यकार नहीं दृष्टिगत होते, वे मानव जीवन की बेहतरी की चिंता में ग्रसित एक चिंतनशील साहित्यकार दृष्टिगत होते हैं। वे विसंगतियों को कथा के माध्यम से अभिव्यक्त करने में यकीन रखते हैं। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में जहाँ एक ओर व्यंग्य अपनी अभिव्यक्ति के साथ रोचकता उत्पन्न करता है वहीं कथा भी उत्प्रेरक का काम करती है। इधर व्यंग्य लेखन में जो प्रदूषण आ गया हैं, उसमें अश्विनी कुमार दुबे जैसे रचनाकारों की रचनाएँ आश्वस्त करती हैं कि व्यंग्य का भविष्य उज्ज्वल है।"

अपने आत्मकथ्य में अश्विनीकुमार दुबे लिखते हैं - सत्य की राहों में जगह-जगह नुकीले पत्थर बिछे हुए हैं, जिन पर चलते हुए आदमी लहूलुहान हो जाता है। इसके बावजूद उस पर चलना और निरंतर चलते रहने का साहस कुछ लोगों में कभी नहीं चुकता। ऐसे उठते, गिरते और चलते लोगों की कहानी है यह उपन्यास "किसी शहर में"। इसका सधा हुआ कथानक, सरल-स्पष्ट भाषा, चरित्र चित्रण व पात्रों के आपस की बारीकियाँ, पात्रों का रहन-सहन, व्यवहार, उनकी स्वाभाविकता, सामाजिक, आर्थिक स्थिति आदि बिंदुओं, छोटे शहर की पृष्ठभूमि इसे बेहद उम्दा उपन्यास बनाती है। उपन्यास की कथा बहुत ही रोचक व संवेदनशील है। इस कथा के नायक देवदत्त को अपने पैतृक मकान को किरायेदार दीनानाथ से खाली करवाने के लिए लंबा संघर्ष करना पड़ता है। सरकारी दफ़्तर के चक्कर, बाबू, वकील, पटवारी, कोर्ट-कचहरी, थाना, राजनीति, धार्मिक संगठन, जातिगत संगठन कहाँ-कहाँ नहीं भटकना पड़ता है नायक देवदत्त को अपना मकान खाली करवाने के लिए। क़स्बे की पूरी व्यवस्था में मौजूद सभी विसंगतियों और भ्रष्टाचार को इस पुस्तक के माध्यम से उजागर किया है। इस उपन्यास का नायक देवदत्त सहज, सरल व्यक्ति है। उपन्यास के मूल में देवदत्त की पीड़ा, उसका संघर्ष है। लेखक ने शहर के सभी शासकीय विभागों की हर गतिविधि में दिखने वाली विसंगतियों पर रोचक तरीके से व्यंग्यात्मक प्रहार किये हैं।

उपन्यास में मरती जा रही संवेदना और मानवीय धूर्तता के दर्शन होते हैं। किस तरह अर्थ के पीछे दौड़ता वर्तमान समाज इंसानियत को भूला देता है। उपन्यास में समाज का नग्न सच दिखलाई पड़ता है। क़स्बों और शहरों में व्याप्त विसंगतियाँ, विडम्बनाएँ और विद्रूपताओं का व्यंग्यात्मक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। "किसी शहर में" एक ऐसा उपन्यास है जिसमें सम्पूर्ण कथा एवं पात्र व्यंग्य से परिपूर्ण हैं। देश के सभी क़स्बों व शहरों में हरबोंगपुर जैसा परिवेश और देवदत्त, एस.डी.एम. कार्यालय के तिवारी बाबू, पटवारी रामदीन, देवदत्त का बड़ा

बेटा श्याम, छोटा बेटा मुकेश, किरायेदार दीनानाथ, दीनानाथ के बेटे कमलेश, महेश, दिनेश, गुप्ता जी जैसे पात्रों दिखेंगे। उपन्यास के पात्र एस.डी.एम. कार्यालय के तिवारी बाबू, पटवारी रामदीन, किरायेदार दीनानाथ, दीनानाथ के बेटे कमलेश, महेश, दिनेश, जैसे पात्र अपनी मक्कारी, पैंतरेबाजी, अड़ंगेबाज़ी में आकंठ डूबे हैं। उपन्यास में शासकीय कर्मचारियों-अधिकारियों की कार्यप्रणाली और उनकी ज़िंदगी पर रोशनी डाली गई है। इस कृति में शासन व्यवस्था पर कटाक्ष किया गया है। "किसी शहर में" उपन्यास में क़िस्सागोई की शैली अद्भुत है। इस व्यंग्य उपन्यास के माध्यम से लेखक ने भ्रष्टाचार, बेईमानी, धोखाधड़ी, घूसखोरी, धूर्तता और तथाकथित आदर्श की विकृतियों का का कच्चा-चिट्ठा खोला है। इस व्यंग्य उपन्यास में लेखक ने हिन्दी के मुहावरों और कहावतों का सुंदर संयोजन किया है।

"किसी शहर में" एक कथा नहीं सत्य है, एक सच है इस देश की कार्यपालिका का सच। इस उपन्यास को पढ़ते हुए मुझे श्रीलाल शुक्ल के "राग दरबारी" व्यंग्य उपन्यास की याद आती है। उपन्यास में यथार्थ की प्रभावशाली अभिव्यक्ति हुई है। लेखक ने व्यवस्था की विडम्बना को कई रूपों में चित्रित किया है। दुबे जी ने मुखर होकर व्यवस्था और अपने समय की सच्चाईयों का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है। व्यंग्यकार ने नेताओं, ठेकेदारों, प्रशासन के कर्मचारियों-अधिकारियों, नगर पालिका के अधिकारियों-कर्मचारियों की सूक्ष्म मनोवृत्तियों को अभिव्यक्त किया हैं। व्यंग्यकार ने इस कृति के माध्यम से समाज की जीती जागती तस्वीर पेश की है।

उपन्यास बेहद रोचक है। इस व्यंग्य उपन्यास में व्यंजनात्मक तीखी अभिव्यक्ति और भरपूर कटाक्ष है। इस पुस्तक की रोचक बानगी प्रस्तुत है –

दोनों प्रदेशों की राजधानियों में ट्रांसफर उद्योग के दलाल भली-भाँति सक्रिय थे। लोग आते, दलालों का पता लगाते, सौदा तय होता और मनचाही जगह के लिए ट्रांसफर का आदेश लेकर लोग वहाँ ज्वाइन करने चले जाते। कुछ वर्षों पूर्व तक ट्रांसफर की यही प्रक्रिया थी। इसमें धोखा न होता था। पहले यह कहा जाता था कि बेईमानी के काम बड़ी ईमानदारी से होते हैं। अब ऐसा नहीं है, आजकल बेईमानी के काम में ही और बड़ी बेईमानी होने लगी है। लोगों ने दलाल को पैसे दिए, दलाल ने मंत्री को, फिर भी काम नहीं हुआ। कुल मिलाकर न घर के रहे न घाट के। (पृष्ठ ३)

पटवारी रामदीन बहुत महान व्यक्ति हैं। उनकी महानता के क़िस्से पूरे हरबोंगपुर में बड़े गौरव से गाये जाते हैं। किसी का प्लॉट किसी के नाम, कहीं का खसरा कहीं की खतौनी और नक़्शों की गड्ड-मड्ड में रामदीन ने कीर्तिमान स्थापित किया था। यही वे गुण हैं, जो उन्हें महान बनाते हैं। देवदत्त ने उनके घर और दफ़्तर के सैकड़ों चक्कर लगाए परंतु खसरा, खतौनी और नक़्शे की नक़ल उन्हें प्राप्त नहीं हो सकी। उधर उनका आवेदन इन ज़रूरी क़ाग़जों के बिना इंच भर आगे न सरक रहा था और इधर रामदीन हर बार चश्मा ऊपर चढ़ाकर यही कहते, बाबू, क़ाग़जों के इस पहाड़ में से आपका रिकॉर्ड ढूंढ़ने में बहुत मेहनत है। ठीक उतनी ही, जितनी हनुमान जी को हिमालय पर्वत में संजीवनी बूटी ढूँढ़ने में हुई थी। (पृष्ठ ८)

अखबार पढ़कर ही देवदत्त ने जाना कि जिस तालाब का पानी वे पी रहे हैं उसमें पिछले एक हफ्ते से एक बंदर की लाश उतरा रही थी। पूरे शहर ने इस असाधारण घटना को अत्यंत सहजता से लिया, मानों कहीं कुछ न हुआ हो। लोग गली, चौराहों और पान की दूकान पर हँस-हँसकर चर्चा करते, "अरे बड़े तालाब में बंदर डूब कर मर गया।"

शिक्षा के क्षेत्र में हरबोंगपुर का बड़ा योगदान है। परीक्षाओं के दिन नज़दीक आ गए इसलिए छात्र जगत् में कई प्रकार की हलचलें दिखाई देने लगीं। किसी भी प्रकार परीक्षा में पास होना है, ऐसा सोचने वाले छात्र परम प्रतिभाशाली हैं। जो रात-दिन पढ़ रहे हैं, कड़ी मेहनत कर रहे हैं, वे सामान्य छात्र हैं। सामान्य छात्र पास तो हो जाएँगे परंतु जब परिणाम आएगा तब कई परम प्रतिभाशाली छात्र इनके बराबर होंगे। कुछ तो उनसे ज़्यादा अंक अर्जित कर प्रावीण्य सूची में भी अपना नाम दर्ज़ कराने में सफल हो जाएँगे। (पृष्ठ ७२)

व्यंग्य सृजन की अनूठी पद्धति अश्विनीकुमार दुबे को अपने समकालीन व्यंग्यकारों से अलग खड़ा कर देती हैं। दुबे जी अपने उपन्यास के पात्रों के अंतस के तार-तार खोलकर सामने लाते हैं। इस उपन्यास में यथार्थवादी जीवन का सटीक चित्रण है।

व्यंग्यकार की लेखन शैली सहज और शालीन हैं, लेकिन उनके व्यंग्य की मारक क्षमता अधिक हैं। लेखक ने पात्रों का चरित्रांकन स्वाभाविक रूप से किया है। किरदारों को पूर्ण स्वतंत्रता दी है। १८७ पृष्ठ की यह पुस्तक अपने परिवेश से पाठकों को अंत तक बाँधे रखने में सक्षम है। इस उपन्यास के माध्यम से दुबे जी ने शासकीय कर्मचारियों, दलालों, ठेकेदारों, वकीलों, नेताओं, मंत्रियों को बेनकाब किया है और इन सभी को कठघरे में खड़ा किया है। अश्विनी कुमार दुबे बेबाकी से सच को बयाँ करते हैं। व्यंग्यकार ने इस पुस्तक में हरबोंगपुर शहर का जो चित्र खींचा है वह उनकी अद्भुत व्यंग्य शक्ति का परिचय देता है। दुबे जी ने इस उपन्यास की कहानी को इस तरह ढाला है कि वह पाठक को अपने प्रवाह में बहाकर ले जाती है। पाठक के मन में निरंतर आगे आ रहे घटनाक्रम को जानने की उत्कंठा बनी रहती है। अश्विनी कुमार दुबे ने व्यंग्य कथा जगत् में अपनी एक अलग पहचान बनाई है। लेखक ने व्यवस्था को झकझोरने का सफल प्रयास किया है और वे अपने इस प्रयास में सफल हुए हैं। नि:संदेह दुबे जी की लेखन शैली और व्यवस्था में मौजूद सभी विसंगतियों, अनैतिक मानदंडों पर उनकी तिरछी नज़र देश के अग्रणी व्यंग्य लेखकों में उन्हें स्थापित करती हैं। यह उपन्यास सिर्फ पठनीय ही नहीं है, संग्रहणीय भी है। अश्विनी कुमार दुबे की यह कृति प्रत्येक साहित्य प्रेमी को अवश्य पढ़नी चाहिए।

000

पुस्तक समीक्षा

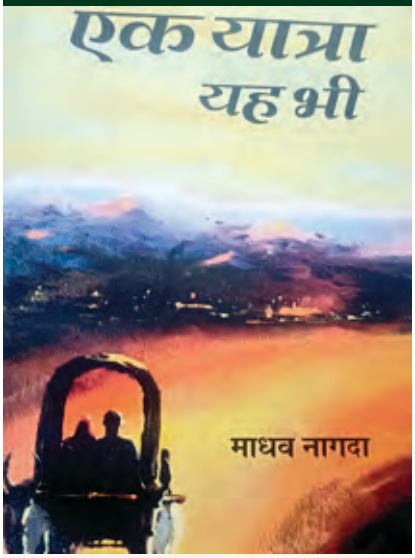

एक यात्रा यह भी

(समीक्षा संग्रह)

समीक्षक : त्रिलोकी मोहन पुरोहित

लेखक : माधव नागदा

प्रकाशक : के एल पचौरी प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद

त्रिलोकी मोहन पुरोहित
शांति कॉलोनी, कांकरोली, राजसमंद
राजस्थान, पिन- 313324
मोबाइल- 9414174179 8094531111
ईमेल- tmpshreeram@gmail.com

साहित्य-शास्त्रियों ने साहित्य को जीवन की व्याख्या कहा है। साहित्य जीवन की व्याख्या है तो उसी साहित्य की समालोचना जीवन व्याख्या की व्याख्या कहने में हिचक नहीं होती है। व्याख्या किसी की भी क्यों ना की जाए, जीवन की या जीवन की किसी एक प्रवृत्ति की, तटस्थता महती और प्राथमिक आवश्यकता होती है। उसी से नवीन सृजन की संभावना को बल और दिशा मिलती है। वरिष्ठ साहित्यकार माधव नागदा की पुस्तक 'एक यात्रा यह भी' तटस्थ समालोचनाओं का पठनीय और संग्रहणीय संकलन है। समालोचना के क्षेत्र में माधव नागदा एक जाना-पहचाना नाम है। इस समालोचनात्मक आलेख-संकलन से यह स्पष्ट पता चल जाता है कि वे विविध साहित्यिक अभिरुचियों के स्वामी हैं और विभिन्न विधाओं के प्रति उनका सूक्ष्म और विवेचनात्मक ज्ञान है। यही कारण है कि विवेच्य कृति उनका प्रतिभाशाली सृजनधर्मी समीक्षक के रूपमें परिचय कराती है।

किसी कृति की समीक्षा करने के लिए यह बहुत आवश्यक होता है कि पहले हम अपने आप को कवि के रूप में रूपांतरित करें। इसमें ख़तरा भावुक हो जाने का है। यह रूपांतरण कृति के मूल को तलाशने और उसके उद्देश्यों को खँगालने तक ही बना रहे। इस रूपान्तरण का लाभ यह है कि इससे कृति के कथ्य को तलाशने, उसके उद्देश्यों का अन्वेषण करने और मूल विचार को पकड़ने में सहूलियत रहती है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कृतिकार ही ठीक से समझता है कि उसकी कृति में अभी और क्या संभावनाएँ है? यदि समीक्षक अपना रूपांतरण कवि के रूप में कर ले तब समीक्षा के लिए रास्ते खुल जाते हैं। एक जीवंत समीक्षक, समीक्षक से कवि में रूपांतरित होकर शीघ्र ही पुन: अपने मूल समीक्षक स्वरूप में लौट आता है। इससे समीक्षक अपनी तटस्थता के साथ कृति के मूल्यों को पाठकों के लिए उकेरता है। कवि और कृति के विचारों से रू-ब-रू कराता है। यही नहीं अपितु, कृति के अंदर निहित संभावनाओं को कृतिकार के सृजन-उन्नयन हेतु संकेतों के साथ उजागर कर देता है। माधव नागदा को काव्य-कृतियों की समीक्षा करते हुए आत्मीयता के साथ स्वयं को कृतिकार के रूप में रूपांतरित होते देखा जा सकता है। वे अभीष्ट प्राप्त करते हैं और पुन: समीक्षकीय रूप में लौट जाते हैं। यह हृदय और विवेक का जबर्दस्त सामंजस्य कहा जाएगा। इसलिए माधव नागदा 'एक यात्रा यह भी' समीक्षा-संकलन कृति के आलेखों में मूल्यों की प्राप्ति, रागात्मकता, भाव और विचार के साथ सोद्देश्यता की सराहना करते हुए देखे जा सकते हैं। वहीं जहाँ कहीं कोई खालीपन मिलता है या, अतिवादिता मिलती है तब दो टूक बात कहने से भी नहीं चूकते। इससे कृति पाठकों के लिए कितनी उपादेय है, यह ठीक-ठीक समझ में आ जाता है। साथ ही, कृतिकार को अपने नवसृजन के लिए मार्गदर्शन भी मिल जाता है। उक्त दोनों बातों का अपना महत्त्व है। इसे कृतिकार और पाठकों को अपने हित में देखना चाहिए। उदाहरण के तौर पर "पतझड़ रिश्तों का" कृति की मूल्य-वरेण्यता को सराहते हुए वे लिखते हैं-

"वस्तुत: ज्यों-ज्यों हम कवि के अंतरजगत में प्रवेश करते हैं त्यों-त्यों यह देखकर स्तंभित हो जाते हैं कि वहाँ बाह्य जगत् की सच्चाइयाँ पूरी शिद्दत के साथ उपस्थित है" – इस कथन से स्पष्ट है कि समीक्षक अपने व्यक्तित्त्व का रूपान्तरण कर कवि के स्थान पर स्वयं को अनुभव करता है।

इसी प्रकार माधव नागदा का यह कथन देखिए, "कृति 'पतझड़ रिश्तों का' की कविताएँ अकेले कवि का सच नहीं है बल्कि हम सब का सच है, युग सत्य है। उदाहरण के लिए 'हिदायतें' 'नसीहतें' और 'बन्दिशें'। इन तीनों में वार्धक्य के रोग और उनसे बचने के लिए परिजनों और डॉक्टरों के बताए गए चित्र आते हैं। लेकिन ये उपचार और ये दवाएँ ऊपरी बातें हैं। कवि समस्या की तह में जाना चाहता है। कवि कहता है ये बीमारियाँ अपने आप में कोई समस्या नहीं है। समस्या है विरल होता जा रहा अपनापन और बढ़ता जा रहा एकाकीपन" ।– इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि समीक्षक ने अपना कृतिकार के रूप में रूपांतरण कर कृति के अंतर्गत

समाज से अनुभूत समस्या को पहचानने का सफल प्रयास किया।

'पतझड़ रिश्तों का' कृति की समीक्षा में ही एक जगह वे बेबाक हो कर लिखते हैं-

"कवि ने संग्रह की प्रथम कविता 'गृहलक्ष्मी, सरस्वती, भगवती हैं बेटियाँ' गजल के शिल्प में प्रस्तुत करने की कोशिश की है। भावनाएँ उच्च हैं लेकिन यहाँ रदीफ़-काफिया का निर्वहन पूरी तरह नहीं हो सका है, खास तौर से रदीफ़ का"

इसी प्रकार वे एक स्थान पर विशेषण-विशेष्य एवं उपमेय-उपमान की असंगति पर लिखते हैं- "कविता 'धूप का सच' में धूप की तुलना दावानल से की गई है जो कि विरोधाभासपूर्ण है। धूप का काम सबको सहलाना है जबकि दावानल सर्वभक्षी होता है"।

उक्त समीक्षकीय अंशों को उद्धृत करते हुए मैं यह तो कह ही सकता हूँ कि कवि, कथाकार, डायरी-लेखक के रूप में प्रतिष्ठित वरिष्ठ साहित्यकार माधव नागदा ऋषिवत् आत्मरूपांतर कर पुन: अपने मूल स्वरूप में लौट आने की क्षमता रखने वाले सहज चेतना युक्त जागरूक समीक्षक हैं। वे कृति की समीक्षा करने में संभावित ख़तरों को भी स्वीकार करते हैं। यही कारण है कि वे पाठक-वृंद और कृतिकारों की मंडली में समान रूप से आदृत हैं। इस भाग की विशिष्टता है कि समीक्षक के हृदय पर विवेक और विवेक पर हृदय कभी हस्तक्षेप करते हुए, एक दूसरे को रौंदते हुए नहीं देखे जा सकते। काव्य में विवेक और हृदय का जो सामंजस्य अभीष्ट माना जाता है वही सामंजस्य काव्य की समीक्षा में भी अभीष्ट है। वही सामंजस्य 'एक यात्रा यह भी' के प्रथम समीक्षा- भाग में सहज प्राप्त है। इससे समीक्षाएँ ज्ञान से बोझिल और भावुकता में लिजलिजी होने से बच गईं हैं। उनमें एक प्रवाह है जो पाठकों को अंत तक बाँधे रखता है।

'एक यात्रा यह भी' का दूसरा भाग "उपन्यास' अभिधान से है। इस भाग में चार उपन्यासकारों की छह कृतियों पर माधव नागदा की समीक्षाएँ संकलित हैं। ये तमाम समीक्षाएँ औपन्यासिक कृतियों को लेकर बहुत ही सारगर्भित हैं और प्रत्येक कृति को उपन्यास के तत्त्वों को ध्यान में रखकर अपनी ओर से संवाद स्थापित करती हैं। यह संवाद करते हुए समीक्षा करना ही समीक्षागत कलात्मकता है। संवादिया-शैली में समीक्षक नागदा समष्टिगत सत्य के द्वारा व्यष्टिगत सत्य को भी अनुभव कराते हैं। यह बात महत्त्वपूर्ण है। यहाँ, प्रश्न है कि आख़िर वे संवाद किससे स्थापित करते हैं? निवेदन कर दूँ- वे संवाद पाठकों से करते हैं और कृतिकार को संवादों के माध्यम से संकेत करते चलते हैं। हालाँकि पूरी समीक्षा में समीक्षक अपने निजी व्यक्तित्व के साथ सरूप चलते हैं। वे आरंभ में पाठकों से कृतिकार का परिचय कराते हैं, अत्यंत आत्मीयता से कथानक प्रस्तुत करते हैं, चरित्रों से परिचय कराते हैं। वातावरण निर्माण कराते हैं। कृति के संवादों को समझाते हैं। कृति की सोद्देश्यता पर खुलकर विचार करते हैं। यहाँ तक वे समीक्षक ना होकर कृति के पात्रों को अपने अंदर अनुभव करते हैं। तदुपरान्त वे अपने समीक्षकीय व्यक्तित्त्व को उभार लेते हैं। मैंने प्रत्येक समीक्षा में सामान्य रूप से देखा है- वे धरती की तरह धीरज बनाए रखते हैं, हवा की तरह प्राणवान बने रहते हैं, जल के समान संवेदनशील बने रहते हैं, आसमान की तरह सभी संभावनाओं को बनाए हुए रखते हैं और आग की तरह ज़रूरत के अनुसार ताप भी रखते हैं। मेरे विचार से एक अच्छे समीक्षक में इससे बढ़िया क्या संतुलन और तटस्थता हो सकती है? इन सब तत्वों के चलते प्रत्येक समीक्षा पठनीय और विचारोत्तेजक हो उठी है।

इस द्वितीय भाग में एक विशेष बात यह भी पाई गई है कि वे जीवन-मूल्यों के उन्नयन के साथ-साथ साहित्यिक मूल्यों को भी नहीं भूलते। कहना यह चाहता हूँ कि नागदा पाठक-वृंद के साथ-साथ कृतिकार को भी स्थान देते हैं। उनके कृतित्व को सान पर चढ़वाने के लिए कुछ न कुछ मंत्र हाथ में देते चलते हैं। स्वीकृत तत्त्वों को सराहना के साथ स्वीकार कराने के लिए अपील करते हैं। वहीं कृति के साधारणीकरण में जो बाधक है, उससे भविष्य में बचने के लिए भी कहते हैं। ये समीक्षाएँ अच्छे शिल्प और सहज भाषाई-सौष्ठव के कारण ललित निबंधों–सा आनंद देती है। अच्छी कृति की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं, वहीं अपेक्षित संभावना के लिए शालीनता से बात रखते हैं। उदाहरण के तौर पर प्रसिद्ध उपन्यासकार रूपसिंह चंदेल की "दगैल" कृति की समालोचना का समापन देखिए-

"वे बड़े धैर्य के साथ मुख्य कथा व उपकथाओं को एक सूत्र में पिरोते हुए इस तरह आगे बढ़ते हैं कि सब कुछ चित्रात्मक और विश्वसनीय लगता है। चाहे विश्वविद्यालयों में पसर चुका भाई-भतीजावाद-जातिवाद हो या, वहाँ की राजनीतिक पैंतरेबाज़ियाँ या तथाकथित बुद्धिजीवियों का पाखंड; लगता है रूपसिंह चंदेल ने उपन्यास लिखने से पहले इन केंद्रों की खूब खाक छानी है। निस्संदेह उपन्यास बहुत रोचक और पठनीय है और पाठकों के मन में एक प्रश्न-चिह्न छोड़ जाता है जिसका उत्तर पाठकों को ही ढूँढ़ना है"। इसी प्रकार पंकज सुबीर के उपन्यास 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पर नाज़ था' उपन्यास को लेकर यह टिप्पणी देखिए, "यह उपन्यास हमारे चारों ओर पसरते जा रहे अंधकार को चीरकर एक प्रकाश-पुंज की तरह सामने आता है। निराशा के इस जानलेवा समय में पंकज सुबीर की यह कृति हमें हौसला और उम्मीद बँधाती है। इसे पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया जाना चाहिए और युवाओं तक नि:शुल्क पहुँचाया जाना चाहिए ताकि उनकी दृष्टि का विस्तार हो सके। आज के पुस्तक और प्रेम विरोधी दौर में ऐसा कुछ किया जाना चाहिए कि 'जिन्हें जुर्म ए इश्क़ पर नाज़ था' उपन्यास घर-घर में पढ़ा जाए।"

ये पंक्तियाँ किसी भी कृतिकार को आश्वस्त करने के लिए पर्याप्त हैं। साथ ही, इस प्रकार की पंक्तियाँ समीक्षक की क़लम से तभी उकेरी जाएँगी जब कृतिकार की कृति विश्वसनीय और जीवन मूल्यों को लेकर

चलने वाली हो। उक्त दोनों कृतियाँ भी ऐसी ही विश्वसनीय और जीवन-मूल्यों को सँजोने वाली, उनकी चिंता करने वाली हैं।

वहीं दूसरी ओर मुकेश सोहन की कृति 'व्यर्थ का प्रलाप' की समीक्षा का प्रारम्भ माधव नागदा अपने चिर-परिचित अंदाज़ में करते हैं। प्रारम्भ में कृतिकार के कृतित्व से परिचय कराते हैं। दूसरे ही अनुच्छेद में शीर्षक पर बात करते हुए कहते हैं- "सर्वप्रथम हम 'व्यर्थ का प्रलाप' शीर्षक पर आते हैं। प्रलाप का अर्थ ही है व्यर्थ की बातें। इसमें व्यर्थ को जोड़ना मुझे त्रुटिपूर्ण लगता है। " वास्तव में प्रलाप कभी भी सार्थक नहीं होता है, वह व्यर्थ का ही होता है। इस तरह की बात समीक्षक तभी कह पाएगा जब वह पानी की तरह संवेदनशील और आग की तरह ताप लिए हुए है। क्योंकि ताप ही परिशुद्धता का कारण है। उसके हेतु प्रथम स्वयं को ताप से भरना है और फिर अशुद्ध तत्त्व को तपाना होता है।

'एक यात्रा यह भी' का तीसरा भाग-कहानी शीर्षक से समलंकृत है। इस भाग में तेरह कहानी-कृतियों पर माधव नागदा की समीक्षाएँ संकलित हैं। ये समीक्षाएँ बहुत ही परिष्कृत और पूर्व समीक्षाओं की तरह लालित्य लिए हुए है। कहीं-कहीं बहुत गंभीर होकर विचार प्रकट करते हैं। माधव नागदा स्वयं देश के प्रतिष्ठित कथाकार हैं। अत: कहानी विधा की समस्त प्रविधियों को खूब अच्छे से पहचानते हैं। कृति के शिल्प और कथ्य पर बात करते हैं और व्यष्टिगत सत्य को पकड़ कर समष्टिगत सत्य से पाठकों को परिचित कराते हैं। कहानी जीवन के किसी एक भाग, घटना या चरित्र को लेकर रची होती है। वह चरित्र अपने आप में व्यष्टिगत सत्य है। परंतु, वह एक तबके या वर्ग का प्रतिनिधि हुआ करता है। अत: वह समष्टिगत सत्य की ओर संकेत करता है। इस व्यष्टिगत सत्य से समष्टिगत सत्य का उद्घाटन वे कहानी-कृतियों की प्रत्येक समीक्षा में करते हैं। उस समय लगता है कि इन समीक्षाओं से जुड़कर कुछ तो मिला है। उदाहरण के रूप में देश के नामवर कवि, कथाकार, संपादक क़मर मेवाड़ी की कृति "लाशों का जंगल" पर चर्चा करते हुए कहते हैं- "संक्षेप में कहा जाए तो संग्रह की कहानियाँ अँधेरे की शिनाख़्त और उसके खिलाफ़ जेहाद की कहानियाँ हैं"। कुल मिलाकर माधव कहानियों की समीक्षाओं में सूक्ष्म तरीके से पड़ताल करते हैं और अभीष्ट को उकेर कर कृति की सार्थकता को पाठकों के सामने व्यष्टिगत सत्य के माध्यम से समष्टिगत सत्य को तटस्थता के साथ प्रस्तुत करते हैं।

'एक यात्रा यह भी' का चतुर्थ भाग-विविध विधाओं पर केन्द्रित है। इस भाग में व्यंग्य, संस्मरण, यात्रा संस्मरण, निबंध, साक्षात्कार, पत्र-पत्रिका विशेषांक सहित अन्य कथेतर विधाओं पर लिखी गई समीक्षाएँ संकलित हैं। ये सभी लेखन को दिशा देने वाली और जीवन मूल्यों की वकालत करने वाली समीक्षाएँ हैं।

उक्त भाग की समीक्षाओं में नागदा ने विधागत स्वरूप को पूरी तरह से तात्विक स्तर पर खँगालने की कोशिश की है। यह कोशिश मुझे आवश्यक भी लगती है। कथेतर विधाओं में कई विधाओं की बाहरी और मूर्त तत्त्वगत समानताएँ इतनी मिलती-जुलती अनुभव होती है कि कभी-कभी निर्णय करने के लिए चिंतन की आवश्यकता हो जाती है कि प्रस्तुत विधा संस्मरण है या रेखाचित्र। इसी तरह से आत्मकथा और जीवनी विधाएँ भी बहुत साम्यता दिखाती हैं। तब तात्विक चिंतना ही उसका निर्णय करती है कि प्रस्तुत विधा का मूल स्वरूप तत्त्वगत स्तर पर खरा है भी या नहीं है। कथेतर विधाओं की यह पड़ताल सटीक न हुई तो न्याय-संगत समीक्षा कृति की नहीं हो सकती। परंतु, माधव नागदा हर विधा की तात्विक पड़ताल अपनी चिंतना में पहले से तय कर लेते हैं। उपरांत वे धीरे-धीरे सधे तरीके से समीक्षा को प्रस्तुत कर कृति के मंतव्य को सुस्पष्ट करते हैं। उदाहरण स्वरूप हम प्रसिद्ध व्यंग्यकार कृष्ण कुमार 'आशु' की व्यंग्य कृति "स्कैंडल मार्च" की समीक्षा को देखते हैं। वे 'स्कैंडल मार्च' कृति की समीक्षा करते हुए कहते हैं-

"व्यंग्य लेखन एक तरफ तनी हुई रस्सी पर तो दूसरी तरफ तलवार की धार पर चलने की तरह ख़तरों से भरा सफ़र है। रस्सी पर चलते हुए अगर लुढ़क गए तो व्यंग्य के खालिस हास्य बनते देर नहीं लगती। और गंभीरतापूर्वक व्यंग्य लेखन में आगे बढ़ते गए तो लोग तलवारें भाँजने में देर नहीं करते। व्यंग्यकार को उन प्रतिष्ठानों का कोपभजन बनना ही पड़ता है जिन्हें अभिव्यक्ति की आज़ादी फूटी आँखों नहीं सुहाती। कृष्ण कुमार 'आशु' इस ख़तरे के प्रति सचेत हैं। ... प्रस्तुत संग्रह में 'आशु' समाज की नब्ज़ टटोलकर केवल मर्ज का पता लगाकर ही नहीं ठहर गए हैं बल्कि सर्जरी करने से भी नहीं कतराए हैं"।

इस चतुर्थ भाग की समस्त समीक्षाएँ विधागत विविधताओं के कारण वैविध्य से सम्पन्न और रुचिकर हैं जिन्हें पढ़ने के बाद बहुत कुछ जानने और दृष्टि के विकसने के अवसर भी पाठकों को मिलेंगे। प्रस्तुत कथेतर विधाओं की समीक्षाओं में माधव नागदा व्यंग्य में व्यंजना उकेरते हुए, संस्मरण में निजी स्मृतियों को भुनाते हुए, यात्रा-संस्मरणों में यायावरी जीते हुए, निबंधों में निजता को खोजते हुए, साक्षात्कार में सम्मुखीकरण करते हुए, समीक्षा कृतियों की समीक्षा में सत्यान्वेषण करते हुए और विशेषांक-समीक्षा में समीक्षकीय स्तर पर विशिष्टता को खोजते हुए देखे जा सकते हैं। कभी वे समीक्षक तो कभी-कभी दार्शनिक अंदाज़ में अनुभव होते हैं। ये समीक्षाएँ समय के बड़े भाग में किस्त-दर-किस्त समयानुसार लिखी गई हैं अत: समीक्षा में घाल-मेल होने के ख़तरे से बचे हैं।

'एक यात्रा यह भी' का पाँचवाँ भाग-भाषांतर है। इस भाग में राजस्थानी लेखकों की कृतियों पर की गई समीक्षाएँ हैं। ये समीक्षाएँ भी सधी हुई और पूर्वोक्त समीक्षाओं की तरह ही संतुलित, तटस्थ और सत्यान्वेषण में तत्पर दिखाई देती हैं।

अस्तु, "एक यात्रा यह भी" समीक्षा के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण कृति मानी जाएगी। इस कृति से जहाँ पाठकों और शोध-छात्रों को दिशा-दर्शन मिलेगा वहीं नवोदित और युवा लेखकों के लिए यह साहित्य के क्षेत्र में "उपनिषद्" का काम करेगी।

000

पुस्तक समीक्षा

शिलाएँ मुस्काती हैं
(कविता संग्रह)

समीक्षक : डॉ. मनोहर अभय

लेखक : यामिनी नयन गुप्ता

प्रकाशक : प्रखरगूँज प्रकाशन

डॉ. मनोहर अभय
आर.एच-111, गोल्डमाइन
138-145, सेक्टर - 21
नेरुल, नवी मुम्बई - ४००७०६,
मोबाइल- 9167148096
ईमेल- manohar.abhay03@gmail.com

नारी की काया में प्रवेश कर कोई भी रचनाकार स्त्री की पीड़ा को उतनी साफगोई से व्यक्त नहीं कर सकता जितनी वाक् निपुणता से एक महिला सृजनधर्मी। फिर भी यह आवश्यक है कि यह पीड़ा उसकी झेली या भोगी हुई हो। आत्मसात् की हो संत्रस्त महिला की त्रासदी। आजकल समय के शिलाखंड पर प्रेम की अभीप्सा से लेकर प्रेम में छली गई किशोरियों, परित्यक्ताओं, भुलाई हुई स्त्रियों या खुरदरे दाम्पत्य जीवन पर बहुत कुछ लिखा जा रहा है। इस में भोगा और ओढ़ा हुआ दोनों हैं। विमर्शवादियों का हल्ला -गुल्ला भी।

यामिनी नयन गुप्ता हिन्दी कविता की ऐसी स्थापित साहित्यधर्मी है जो महिलाओं के मन की उथल-पुथल, बदलती सामाजिक जीवन शैली से पैदा हुई बेचैनी और नए समीकरणों को सशक्त स्वर दे रही हैं। उनके स्वर में छिछली भावुकता नहीं, महिलाओं के हर्ष –विषाद की गहरी अनुभूति है। साक्षी हैं 'शिलाएँ मुस्काती हैं" नामक संकलन की बासठ कविताएँ। चाहे सामाजिक सरोकार हों या जीवन की निजता के प्रश्न; इनमें जुड़ा है "प्रेम, नेह, और देह का त्रिकोण"। "व्याकुल मन का संगीत" और प्रेम में पड़े होने का एहसास। "प्रेम, नेह और देह" की इस यात्रा में कभी देह पिछड़ जाती है 'अदेह' को जगह देने हेतु, तो कहीं सशक्त साम्राज्ञी बन बैठती है (अब मैंने जाना -क्यों तुम्हारी हर आहट पर मन हो जाता है सप्तरंग\ मैं लौट जाना चाहती हूँ \ अपनी पुरानी दुनिया में देह से परे - बार-बार तुम्हारा आकर कह देना\ यूँ ही - \ मन की बात \ बेकाबू जज़्बात, \ मेरे शब्दों में जो ख़ुशबू है \ तुम्हारी अतृप्त बाँहों की गंध है)। कहाँ देह से परे की पुरानी दुनिया, कहाँ 'अतृप्त बाँहों की गंध'। हर मंजर बदल गया। छा गई प्रेम की खुमारी - (तुम संग एक संवाद के बाद \ पृष्ठों पर उभरने लगती हैं \ सकारात्मक कविताएँ \ निखरने लगते हैं उदासी के घने साये \ छा जाता है स्याह जीवन में\ इंद्रधनुषी फाग)।

प्रेम में डूबी स्त्री को प्रेम के अतिरिक्त और कुछ दीखता ही नहीं। वह प्रेमास्पद से नहीं, उसके प्रेम से प्रेम करती है(मुझे तुम से नहीं \ तुम्हारे प्रेम से प्रेम है \ तुम खुद को -प्रेम से नहीं कर पाते हो अलग \ और अर्जुन के लक्ष्य सदृश्य \ मुझे दीखता है बस प्रेम)। स्त्री 'हर काल, हर उमर में' बनी रहना चाहती है प्रेयसी। वैवाहिक जीवन उसके लिए विडंबना है, जिसमें हैं गृहस्थी की उलझनें\ पौरुष दम्भ से जूझती पति की लालसाएँ--जबकि ये चाहती हैं कि बची रहे जीने की ख्वाहिशों की जगह \ याँत्रिक जीवन से परे \ बनी रहे नींदों में ख्वाबों की जगह'। नारी विमर्शवादी अनामिका कहती हैं --'बच्चे उखाड़ते हैं/ डाक टिकट/ पुराने लिफ़ाफ़ों से जैसे-/ वैसे ही आहिस्ता-आहिस्ता/ कौशल से मैं खुद को/ हर बार करती हूँ तुमसे अलग! अनामिका जी भूल गईं कि प्रेम संबंधों को जोड़ता है,उखड़ता नहीं। खटास से भरे होते हैं प्रेम विहीन संबंध। पर समय बदल रहा है। अलग कर लेना सरल हो चुका है। सुलभ हैं "मनचाहे साथी" जिनकी प्रेमिकाएँ \ कभी बूढ़ी न हुईं \ साल दर साल बीतते \ वर्षों बाद भी रहीं प्रेमी के दिल में \ स्मृति में कमसिन, कमनीय\ उस उम्र की तस्वीर बन कर \ महकती रहेंगी वो स्त्रियाँ \ किताबों में रखे सुर्ख़ गुलाब की तरह। सीधी बात है विवहिता स्त्री की उलझनों से मुक्त, कमनीय जीवन बिताया जाय। फिर परिवार का क्या होगा?स्त्री पुरुष का मिलन नैसर्गिक है-कुछ नैसर्गिक आवश्यक्ताओं की पूर्ती के लिए। 'अतृप्त बाँहों की गंध' से कहीं अधिक गंधमयी सुगन्ध से प्लावित जीवन।

डॉ. पद्मजा शर्मा को दिए एक साक्षात्कार में प्रसिद्ध कथाकार साहित्यकार सूर्यबाला ने कहा- ''देह पर आकर स्त्री मुक्ति का सपना टूट जाता है और एवज में बाज़ार की ग़ुलामी मिलती है, स्त्री को। पुरुष से मुक्ति की कामना पुरुष वर्चस्वी बाज़ार की दासता से आ जुड़ती है। स्वयं को वस्तु (कमोडिटी)बनाने के विरोध को लेकर चलने वाली स्त्री आज स्वयं अपने शरीर की सबसे अनमोल पूँजी को वस्तु (कमोडिटी)बना कर बाज़ार के हवाले कर रही है''। यामिनी का कवि वस्तु या कमोडिटी के जंजाल से बचा कर प्रेम की शुचिता को बनाए रखना चाहता है। यद्यपि वह चूकता नहीं प्रश्न उठाने से -- मेरी छवि, मेरे बिम्ब और संकेतों में \ गर तुम बाँच नहीं सकते प्रेम \ तो कैसा है तुम्हारा प्रेम \ और कैसा समर्पण \ रास नहीं आ रहा है मुझे \ तुम्हारा होकर भी, न होने का भाव।

एक प्रश्न और --पत्नी बड़ी या प्रेमिका?। विमर्शवादी मंतव्य है कि पत्नियाँ कभी प्रेमिका नहीं बन पातीं। कंचन कुमारी कहती हैं तुम्हारी दुनिया में पत्नियाँ प्रेमिकाएँ नहीं होती। पत्नियाँ नहीं पहुँचती चरमसुख तक \ यह हक़ है सिर्फ प्रेमिकाओं का \ पत्नियाँ डरती है तुम्हारे ठुकराने से, \ प्रेमिकाएँ नहीं डरा करतीं \ वहाँ होता है विकल्प \ सदैव किसी और साथी का.. अर्थात सब कुछ अस्थायी है। एक देह का चरमसुख नहीं दे पाया, तो दूसरा सही, दूसरा नहीं तो तीसरा। प्रेम न हुआ तीहर है, जब चाही बदल ली। फिर यह कहना व्यर्थ है कि प्रेम में पड़ी स्त्री के मन में, दिल की गहराई में, उनींदी आँखों में हर पल हर क्षण प्रेमी की सुखद छुअन के एहसास भरे होते हैं। क्या ज़रूरत थी कबीर को यह कहने की ''प्रेम न बाड़ी ऊपजे, प्रेम न हाट बिकाई, राजा परजा जेहि रुचे, सीस देहि ले जाई''। शायद आयातित आधुनिकता और बाजारी संस्कृति में बुढ़िया गए हैं कबीर। कोरोना संक्रमण से हाल ही में दिवंगत हुए जाने-माने साहित्यकार प्रभु जोशी ने अपने अंतिम लेख में कहा कि ''मेरा शरीर मेरा'' जैसा नारा (स्लोगन) अश्लील साहित्य के व्यवसाइयों की क़ानूनी लड़ाई लड़ने वाले वकीलों ने दिया था। उसे हमारे साहित्यिक बिरादरी में राजेन्द्र यादव ने उठा लिया और लेखिकाओं की एक बिरादरी ने अपना आप्त वाक्य बना लिया।

विमर्शवादी मंतव्य को स्पष्ट करते हुए कवि की कहन हैं कि पत्नियों के लिए ''मन चाहे स्पर्श, आलिंगन \ चरम उत्कर्ष के वह पल \ सदा रहे कल्पना में ही \ कभी उतर नहीं पाते वास्तविकता के धरातल पर''। देहातीत संबंधों की बात सिमट कर रह जाती है चरमसुख और प्रणयी की मुलायम छुअन में। विमर्शवादियों की ऐसी बातें कवि ने बहुत ही संयत और शालीनता के साथ स्पष्ट की हैं। ये नारेबाज़ी से कहीं अधिक शिष्ट और सार्थक हैं। उसके लिए प्रेम तर्क- कुतर्क का विषय नहीं है ''एक बारगी प्रेम- \ मौन से जीत जाता है \ किन्तु तर्क से जाता है हार''। कवि अनभिज्ञ नहीं है गृहस्थ जीवन की सुखानुभूति से। पढ़िए 'सफ़रनामा' या 'पुस्तैनी घर' जैसी मार्मिक कविताएँ। 'गंतव्य' नामक कविता का माधुर्य ही अलग है (प्रेममय मेरे मन का \ तुम ही हो गंतव्य \ मेरी तृप्त कामनाओं का \ तुम ही तो मंतव्य हो \ प्रेम मिश्रित मुस्कान का \ क्या मैं प्रतिदान दूँ \ उन्मुक्त हँसी के बदले \ कहो तो प्राण दूँ)। प्रेम में एकाकार होना आवश्यक है। नहीं चाहिए दान -प्रतिदान। खलील जिब्रान कहते हैं ''प्रेम की कोई आकांक्षा नहीं होती, सिवाय इसके कि उसकी सम्पूर्ति हो। अगर तुम आकांक्षाओं के साथ प्रेम करते हो, तो करो उनकी पूरी वेदना और नाज़ुकी के साथ''। कवि कथन है ''सफ़र पर चलते चलते \ अब महसूस ये होता है कि तुम होने लगे हो मुझ जैसे \ और मैं -मैं रही \ अपनी सी ही \ उम्र के इस मोड़ पर आकर एक हो गए हैं हम दोनों के चश्मे \ और - नज़रिया भी''। प्रेम की सबसे बड़ी बाधा है 'मैं'(अहम)--(जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं) खलील ने कहा ''तुम एक साथ पैदा हुए और इस से भी अधिक एक साथ ही रहोगे सदा, किन्तु खालीपन भी रहे तुम्हारे एकत्व में। दोनों एक दूसरे को प्यार करो लेकिन, प्रेम का कोई बंधन ना बाँधे : बल्कि इसे अपनी आत्माओं के किनारों के बीच एक बहते हुए सागर के समान रहने दें''।

कविताएँ और भी हैं, विविध विषयों पर। लेकिन जिनमें प्रेम की प्रतीति है उनकी मिठास ही कुछ अलग है। प्रेम भी ऐसा जिसमें मिलन और विरह की धूप- छाईं है। विरह में शोक नहीं, मिलन की प्रत्याशा के श्लोक हैं।

अरे !प्रेम तो मृदुल और मधुर होता है। इसकी अगवानी में बिछ जाते हैं सैकड़ों इंद्रधनुष। हज़ारों सुकुमार पुष्प जिनकी पंखुरियाँ कुचल कर रख देतीं हैं हीरे के शिलाखंडों को (हीरे- सा हृदय हमारा कुचला शिरीष कोमल ने --प्रसाद)। यामिनी की कविताओं में यदि प्रेम का स्पर्श न होता, तो शिलाएँ कैसे भर पातीं मुस्कान। इन कविताओं में इतनी ''हिमशीतल प्रणय अनल'' है कि हिमवंत पिघल कर पानी -पानी हो जाते हैं।

प्रसाद गुण से सम्पन्न सरल, सहज सम्प्रेषणीय भाषा है यामिनी की कविताओं की। यहाँ आपको मिलेंगे -अनुभूति के हलन्त हैं, आवेग के अनुस्वार,नेह का उजास, किरकिराता अकेलापन, संवेदना की वीथिका या गवाक्ष, यक़ीन की चादर, मृगतृष्णा के लंगर, पीड़ा के पिरामिड आदि। कवि ने अज्ञेय से उधार ले लिया है उनका वाक्य, थोड़े बदलाव के साथ 'दुःख ही सबको माँजता है' (दुःख सब को माँजता है--अज्ञेय)। ऐसा कहना कि ''हर स्त्री लिखा कर लाती है लेखे में \ कोई न कोई अपजस अपने नाम'' बात के साधारणीकरण का संकेत देता है।

अच्छा होता यदि ''प्रिय के जाने पर मन का बुद्ध होने'' की जगह, यशोधरा के मन की बात कही होती। उस निर्दोष को भरी नींद में छोड़, सिद्धार्थ तथागत बनने निकल पड़े। एक स्त्री ही उसकी वेदना को गहरायी से समझ सकती है।

कुछ भी हो कवि ने अपने प्रथम प्रकाशन के माध्यम से सिद्ध कर दिया कि उसकी कविताएँ बाध्य करती हैं शिलाओं को मुस्काने के लिए। सार्थक है कवि का श्रम और उसकी सारस्वत साधना। आने वाली सुबह और भी उजली होगी, जब शिलाओं की कोख से दूधिया झरने, झर-झर करते गुनगुनाएँगे कवि की प्रेमासिक्त कविताएँ।

000

पुस्तक समीक्षा

वह कौन थी

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : बी आकाश राव

लेखक : संजीव

प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

बी आकाश राव
पीएच.डी. शोध छात्र
हिन्दी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय

संजीव हिन्दी के समकालीन कथाकारों में शुमार एक ऐसे कथाकार हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं के लिए हमेशा नए विषयों, पात्रों एवं घटनाओं का चयन किया है। यही कारण है कि संजीव उपन्यास तथा कहानी जैसे सशक्त एवं चर्चित विधा के सभी आयामों को छूते आए हैं। उनका नवीनतम कहानी संग्रह "वह कौन थी ?" इसी कथन का एक बेहतर उदहारण है। वर्ष २०१९ में प्रकाशित होने वाले इस संग्रह में विभिन्न पात्र, घटनाओं और परिवेश से जुडी हुई कुल दस कहानियाँ हैं। सीमित कहानियाँ और सीमित पृष्ठों वाले इस कहानी संग्रह को जो चीज़ पहली दृष्टि में आकर्षक बनाती है वह है इसका शीर्षक, "वह कौन थी ?" जैसे रहस्यात्मक कहानी को संग्रह का शीर्षक बनाने के पीछे लेखक की छिपी मंशा इस संग्रह को पढ़ने से ही पता चलती है।

इस संग्रह में लेखक ने कोई भूमिका नहीं लिखी है केवल समर्पण में अपने कुछ परिचितों के नाम दिए हैं, भूमिका में कहानी लिखने के पीछे की आकुलता और अन्य किसी स्पष्टीकरण की विशेष आवश्यकता लेखक ने महसूस नहीं की, कदाचित ऐसा पाठकों को सोचनीय या जिज्ञासु बनाने के लिए किया गया हो ! बहरहाल पहली कहानी 'मैं भी ज़िन्दा रहना चाहता हूँ' एक थर्ड जेंडर के जीवन पर आधारित है, जिसमें 'सुलेमान' और 'सलमा' दो नामों के बीच अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने वाले एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो धर्म, मुल्क, शरीर जैसे बंधनों से मुक्त होकर जीना चाहता है। दूसरी कहानी है – 'रामलीला'। रामलीला बीते दशकों में जन्मी हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के बीच गंगा-जमुनी तहज़ीब की कहानी है। जहाँ दो तिहाई मुसलमान और एक तिहाई हिंदू वाले गाँव अहमदपुरा में मुस्लिम संप्रदाय के लोग पूरे उत्साह से रामलीला खेला करते। अब्बास और अल्ताफ़ नामक भाई राम-भरत का पार्ट खेलते। कुतुबन परशुराम बनते, सुलेमान चाचा जामवंत बनते, मुमताज शूर्पणखा और युसूफ़ मेघनाद बनते। जिस गाँव में हुसैनी ब्राह्मण रहते थे और हिन्दू नामों में राम सुभान, राम इकबाल और मुसलमान में भोला मियाँ थे। जो गाँव सैंतालिस का बँटवारा हँसते-हँसते झेल गया उस गाँव में साम्प्रदायिकता की ऐसी लहर आई कि पूरा गाँव बिखर गया, साथ ही रामलीला भी। राम (अब्बास) पाकिस्तान चला गया है और भरत (अल्ताफ़) ने हिंदुस्तान में मिलिट्री ज्वाइन कर ली। रामलीला के राम-भरत का ऐसा विभाजक निर्वासन बेहद दर्दनाक था। कहानी के अंत में सूचना नंबर एक से तीन तक राम-भरत या अब्बास-अल्ताफ़ के अंत को किसी निर्णायक मोड़ पर न लाकर एक संभावना के रूप में समाप्त करना और दो मुल्कों के आपसी रंजिश के प्रभावों को दिखाना संजीव की कथा-शैली को और भी मॉडर्न और रेलेवेंट बना देता है।

इसी प्रकार संग्रह की अन्य कहानियों में 'दरार', 'छिनाल', 'कोकिला व्रत', 'तोता पंडित', 'भिड़ंत', 'अपसगुनी' आदि कहानियाँ है। जिनमें मध्यवर्ग से लेकर निम्नवर्ग तथा ग्रामीण से लेकर महानगरीय परिवेश की कहानियाँ शामिल है। 'दरार' कहानी सुयश और नीरा की प्रेमकथा है। जहाँ उच्च शिक्षा की समन्वयवादी आधुनिकता में उपजी प्रेमकथा अंत तक उन्हें ब्राह्मण और

इसाई बना देती है। फिर धार्मिक पृष्ठभूमि की कट्टरता दो प्रेमियों को खान-पान से लेकर कर्मकाण्ड में उलझा कर रख देती है। जहाँ प्रेम को प्रबल करने वाले उनके सारे पढ़े-लिखे आधुनिक तर्क निरस्त हो जाते हैं। 'छिनाल' कहानी में मुनिया का जीवन छिनाल में परिवर्तित होना और कोलियरी के गंदले बस्तियों में उसका शोषण स्त्री जीवन के दारुण कथा का प्रतीक है जहाँ पुरुषवादी समाज की स्त्रियों के प्रति उपभोगतावादी दृष्टिकोण गाली और संज्ञा का भेद मिटा देती है।

'कोकिला व्रत' जैसी कहानी मुंबई जैसे महानगर में आस्था और मान्यताओं को दरकिनार करते आधुनिक विकास के प्रति हमारी संवेदनशीलता को दर्शाती है। जहाँ कोयल को देखकर कोकिला व्रत तोड़ने की बात सनसनीखेज़ न्यूज़ बन जाती है और पर्यावरण की चिंता का विकल्प विज्ञान के रूप में देखा जाता है। जो तात्कालिक समाधान तो प्रस्तुत करता है लेकिन भविष्य को लेकर उदासीन है। वहीं 'तोता पंडित' कहानी में क़ानूनी गवाह बने तोते के माध्यम से पंडित सीताराम के वास्तविक चरित्र का नाटकीय रहस्योद्घाटन समाज की प्रच्छन्न बुराइयों और दिखावेपन की संस्कृति का पर्दाफाश करता है।

'भिड़न्त' इस संग्रह की एक ऐसी कहानी है, जहाँ स्कूली शिक्षा के माध्यम से नई एवं पुराणी विचारधारा के द्वंद्व को दिखाया गया है। 'लकीर के फ़कीर' और नई ज्ञानधारा के वाद-विवाद से लेकर संवाद स्थापित करने की यह कहानी दो पीढ़ियों के बीच सेतु का कार्य करती है। 'अपसगुनी' के सहदेव पांडे की कथा ग्रामीण जीवन में व्याप्त अंधविश्वास की बानगी है। जहाँ किसी के दुर्भाग्य को पूरे गाँव से जोड़ लिया जाता है और उसका बहिष्कार कर दिया जाता है। अगर इस कहानी को हम वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता के निकष पर देखें तो गाँवों की दयनीय स्थिति पर हमें चिंता होने लगती है। पीढ़ियों के अंतर एवं बीते समय के आपसी सौहार्द की दुहाई देने वालों को भी इस कहानी में निराशा के ही दर्शन होंगे। जहाँ मानवीयता अब ग्रामीण क्षेत्रों में भी नहीं दिखती है। 'सलाम' कोयलांचल के मज़दूर-जीवन की त्रासदी पर आधारित कहानी है। कोयला खदान में पानी का भर जाना और उसके बीच मज़दूरों का जीवन के प्रति ज़द्दोज़हद हमें कोयला-खदानों एवं उससे जुड़ी समस्याओं के प्रति सोचने पर विवश करता है।

इस संग्रह की अंतिम व टाइटल स्टोरी 'वह कौन थी ?' एक रेल-यात्रा में सहयात्रियों के बातचीत के दौरान कश्मीर के बिगड़ते हालात और वहाँ के स्थानीय लोगों के विस्थापन के दर्द की कहानी है। कश्मीरी पंडित की कहानी में विस्थापन का दंश, हिन्दी-पंजाबी-उर्दू मिश्रित बोली से झलकता भाषिक अपनापन और ज़िन्दा रहने की कवायद में संघर्षरत औरत की कहानी ट्रेन के सफ़र को एक ऐसी स्मृति में बदल देता है जिसे हर कोई आत्मसात् कर सकता है और अंत में उस औरत के लिए एक पहचानविहीन संज्ञा 'वह कौन थी ?' शरणार्थी जीवन की पीड़ा को बखूबी रेखांकित करता है।

वस्तुत: 'वह कौन थी ?' संजीव के पूरे साहित्यिक जीवन के पड़ावों का मर्मस्थल है। जिसमें अति प्राचीन एवं आधुनिक से उत्तर आधुनिक विमर्शों, समस्याओं और मुद्दों से जुड़ी कहानियाँ हैं। थर्ड जेंडर से लेकर शरणार्थी जीवन की त्रासदी, ग्रामीण अंधविश्वास से लेकर महानगरीय जीवन परिवेश में आस्था का बदलता रूप, साम्प्रदायिकता से आक्रांत भाईचारे एवं प्रेमकथा का विघटन जैसे महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं के संस्पर्श से 'वह कौन थी ?' संग्रह की कहानियाँ आधुनिक जीवन को समूची दुनिया से एकाकार करती हैं। पात्रानुकूल भाषा और नामों से कथानक ज़्यादा सजीव प्रतीत होता है किन्तु कहानियाँ अपने उद्देश्य एवं उठाये गए प्रश्नों के कारण देर तक साथ नहीं छोड़ती। संजीव का ऐसे संजीदा विषयों और नए मुद्दों पर लेखन तथा पुराने ढर्रे की कहानियों में नए दृष्टिकोण का संचार कहानी को और भी अधिक जीवंत एवं बहुआयामी बनाता है।

000

नई पुस्तक

पुकारती हैं स्मृतियाँ

(कविता संग्रह)

लेखक : आनंद पचौरी

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

चर्चित कवि आनंद पचौरी का यह नया कविता संग्रह शिवना प्रकाशन से हाल में ही प्रकाशित होकर आया है। इस संग्रह में आनंद पचौरी की नई कविताएँ संकलित हैं। इस संग्रह की भूमिका में आनंद पचौरी लिखते हैं- मैं अपने चारों ओर इस काव्य का गान सुनता हूँ और उसे आपको भी सुनने के लिए आमंत्रण दे रहा हूँ। मेरा यह तीसरा कविता संग्रह सुधि पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। मैंने कुछ गढ़ा नहीं, सहज सरल और स्वच्छंद प्रवाह के रूप में जो कुछ मुझे आनंदित करते रहा है, उस संगीत के आनंद में आपको भी थिरकने के लिए आमंत्रण है मेरा। अपनेपन के भाव से मुक्त होकर परमसत्ता के साथ एकाकार होने की उमंग और छटपटाहट इन कविताओं का राग है। प्रकृति को जब जहाँ जिस-जिस रूप में मैंने अनुभव किया और उससे मेरा साक्षात्कार रहा, उसका शाब्दिक प्रस्तुतिकरण ये कविताएँ हैं किन्तु इनका आनंद समीक्षा में नहीं समाधि में है। इसलिए ये काव्य के आनंद के साथ मेरे रिश्तों का गायन है।

000

पुस्तक समीक्षा

निन्यानवे का फेर

(लघुकथा संग्रह)

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : ज्योति जैन

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

"निन्यानवे का फेर" सुपरिचित साहित्यकार ज्योति जैन का तीसरा लघुकथा संग्रह है। इसके पूर्व लेखिका के "जलतरंग", "बिजूका" (लघुकथा संग्रह) "मेरे हिस्से का आकाश", "माँ-बेटी" (काव्य संग्रह) "भोरवेला", "सेतु तथा अन्य कहानियाँ", "नज़रबट्टू" (कहानी संग्रह) "यात्राओं का इंद्रधनुष" (यात्रा वृत्त) "पार्थ तुम्हें जीना होगा !" (उपन्यास) जीवन दृष्टि (निबंध संग्रह) प्रकाशित हो चुके हैं। ज्योति जी का लेखन कहानी, कविता, लघुकथा, उपन्यास जैसी विधाओं से गहन रूप से जुड़ा हुआ है। देश के विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाओं में ज्योति जी की रचनाएँ निरंतर प्रकाशित हो रही हैं। इनकी लघुकथाएँ महाराष्ट्र राज्य शिक्षा बोर्ड १० वीं और विश्वविद्यालय-महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल हो चुकी हैं। महाराष्ट्र के एक विद्यार्थी ने "ज्योति जैन के साहित्य में जीवन मूल्य" विषय पर पीएॅच.डी की है। ज्योति जैन ने वामा साहित्य के पाँच संग्रहों का संपादन किया हैं। लेखिका कई पुरस्कारों से सम्मानित हो चुकी हैं। ज्योति जी ने इस संग्रह की लघुकथाओं में मानवीय संवेदना, सामाजिक सरोकार और पारस्परिक संबंधों का ताना-बाना प्रस्तुत किया है। लेखिका ने बहुत ही सटीकता से सामाजिक-पारिवारिक मूल्यों के ह्रास के प्रति चिंता व्यक्त की है। अधिकतर लघुकथाएँ भावनात्मक और मानवीय संवेदनाओं से ओतप्रोत हैं। ज्योति जी की लघुकथाएँ जनसाधारण की मानवीय संवेदनाओं को जगाने वाली हैं। लघुकथाएँ पाठकों में चेतना जगाने में सक्षम है। इन लघुकथाओं में अनुभूति की सच्चाई है। इस संग्रह में कुल ९९ लघुकथाएँ संकलित हैं। ज्योति जी अपनी रचनाओं में भारतीय संस्कृति के प्रति अत्यंत ही सजग हैं। इनकी लघुकथाएँ हमारे आसपास की हैं। इस संग्रह की रचनाएँ अपने आप में मुकम्मल और उद्देश्यपूर्ण लघुकथाएँ हैं और पाठकों को मानवीय संवेदनाओं के विविध रंगों से रू-ब-रू करवाती है। इस संकलन पर वरिष्ठ कथाकार व संपादक पंकज सुबीर ने अपनी टिप्पणी में लिखा है "ज्योति जैन जी ने जीवन और लोक दोनों को नहीं छोड़ा है; बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि उन्होंने अपनी जड़ों को बहुत मज़बूती के साथ इनमें गाड़ रखा है। इसीलिए ही उनकी रचनाएँ जीवन से भरी होती हैं।"

संग्रह की शीर्षक लघुकथा "निन्यानवे का फेर" शीर्षक को सार्थक करती रचना है जिसमें परेश नाम का व्यक्ति निन्यानवे के फेर में ही लगा रहता है और अपना चैन गँवा देता है।

"अनपढ़" और "दोहरे मापदंड" रचनाएँ पुलिस की मानसिकता को उजागर करती है। "अनपढ़" लघुकथा को पढ़ने के पश्चात चिब्बी का सशक्त, स्पष्टवादी और ईमानदार व्यक्तित्व मन-मस्तिष्क पर छा जाता है। "क्रेडिट" रचना में सास की प्रवृत्ति पर गहरा कटाक्ष किया है। इस लघुकथा में सास की संकीर्ण मानसिकता के दर्शन होते हैं। लघुकथा "शबरी के बेर" समाज में फैली विषमताओं को दर्शाती है। "बद-बदनाम" लघुकथा में लेखिका ने भ्रष्टाचार जैसी समस्या को सटीक ढंग से उकेरा है। "रंगहीन धर्म" में मिडिया की असंवेदनशीलता की प्रवृत्ति पर चोट की गई है। "रंगहीन धर्म" लघुकथा में कल ही के अख़बारों में रमज़ान मुबारक हरे रंग से और अक्षय तृतीया केसरिया रंग से छपा हुआ था। अख़बार तो साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रतीक हैं। क्या वे इन रंगों को उल्टा नहीं छाप सकते थे। - पंक्तियाँ ही सब कुछ कह देती हैं। "लिली" रचना में कामवाली बाई के भावों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। "जननी-जन्म भूमिश्च" और "काग के भाग बड़े सजनी" रचनाओं को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया गया है। "स्वार्थी" और "तेरहवीं" लघुकथाओं में आत्मीय रिश्तों के बीच अर्थ की मज़बूत दीवार खड़ी है। "भरोसा" लघुकथा एक विधवा स्त्री के दोहरे चेहरों को बेनक़ाब करती है। "सुबह का तारा" सुखद अनुभूति का एहसास कराती है। "मूक संवेदना" लघुकथा भावुकता के सागर में भिगो देती है। यह रचना एक माँ की वेदना को बखूबी उजागर करती है। इस लघुकथा में सशक्त भावनाओं का संवेग देखिए, जिसमें एक माँ की विवशताओं और विडंबनाओं को रचनाकार ने स्वाभाविक रूप से शब्दबद्ध किया है - अनचाहे गर्भ यानि कन्या से मुक्ति पाकर वे लोग घर लौट रहे थे कि रस्ते में सड़क किनारे कुछ बंजर सी खेटनुमा जगह में ज़मीन से कुछ ही ऊपर एक टिटहरी क्रंदन कराती हुई उड़ रही थी। पत्थरों के बीच दिए उसके अंडे किसी ने तोड़ दिए थे। वह नहीं जानती थी कि अंडे भूरे थे या सलेटी। वह नहीं जानती थी कि भूरे अंडे मादा और सलेटी अंडे नर बच्चे का संकेत होते हैं।

इंसानों को जो शोर कर्कश लग रहा था दरअसल वह एक माँ का अपने होने वाले बच्चे के लिए क्रंदन था। जो दु:ख के साथ बढ़ता ही जा रहा था।

रंगहीन धर्म, स्मृति शेष ! जैसी लघुकथाएँ समाज में व्याप्त विसंगतियों को उजागर करती है। लेखिका ने "झूठ की पाठशाला", "अछूत", "फादर्स डे" इत्यादि लघुकथाओं में बच्चों के मनोविज्ञान को बहुत ही स्वाभाविक रूप से उकेरा है। "जननी जन्मभूमिश्च", "अलादीन का चिराग", "अनपढ़", "रंगहीन धर्म", "स्वार्थी", "योग्यता" जैसी लघुकथाएँ लंबे अंतराल तक जेहन में प्रभाव छोड़ती हैं। "सच्चा झूठ", "पुण्य ?", "शबरी के बेर", "मात्र एक भाषा", "क्रेडिट" इत्यादि कटु यथार्थ से साक्षात्कार कराती लघुकथाएँ हैं। लेखिका ने स्वार्थी दुनिया के मुखौटे का चित्रण "स्वार्थी", "इमोशन फूल" लघुकथा में सटीक ढंग से किया है। लेखिका ने कुछ लघुकथाएँ जैसे "दस्तक", "निसन्नी", "औक़ात", "आग में तपकर", "मूक संवेदना", "उजाले की ओर", "औकात" इत्यादि सांकेतिक, मानवेतर पात्रों के माध्यम से व्यक्त की हैं। इस संग्रह की अन्य लघुकथाएँ मन को छूकर उसके मर्म से पहचान करा जाती है।

लघुकथाओं में सामाजिक सरोकार भी है, रिश्तों में चेतना, नैतिक और आदर्श जीवन मूल्यों की स्थापना के प्रति गहरी संवेदना से भरी हुई है। ज्योति जी कथानकों का ऐसा सार्थक ताना-बाना बुनती है जो समाज में घटित यथार्थ का ब्योरा प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक की लगभग सभी लघुकथाएँ भाषा, कथ्य एवं विषयवस्तु की दृष्टि से पाठकों के हृदय को झकझोर कर रख देती है। भावनात्मक पहलुओं को लेखिका ने बहुत ही सशक्त रूप से व्यक्त किया है। लेखिका की इन लघुकथाओं से उनकी समाज के प्रति सकारात्मक सक्रियता दृष्टिगोचर होती है। इस संकलन की लघुकथाओं में लेखिका ने घर-परिवार की छोटी से छोटी समस्याओं को विभिन्न कोणों से उजागर किया हैं, अनेक चेहरों से मुखौटे उतारे हैं। पारिवारिक रिश्तों, संबंधों की विकृतियाँ के विरूद्ध लेखिका का आक्रोश साफ-साफ दिखाई देता है। लघुकथाकार जीवन की तल्ख़ सच्चाइयों से रू-ब-रू करवाती है। जीवन की विविध मार्मिक घटनाओं पर रचनाकार की बारीक दृष्टि काबिले-तारीफ़ है।

लेखिका सामाजिक सरोकार के शाश्वत मूल्यों को बड़ी शिद्दत के साथ रेखांकित करती हैं। इस संग्रह की लघुकथाओं में ज्योति जी मानवीय स्वभाव और समाज की सूक्ष्म पड़ताल करते हुए दिखती हैं। इस संग्रह की लघुकथाएँ सामाजिक विसंगतियाँ, पुरुष के अहं, बाल मनोविज्ञान, मातृत्व भाव, माँ की कोमल भावनाओं, बाज़ारवादी दृष्टिकोण, दोहरे चरित्र, नारी सुरक्षा, नैतिक और चारित्रिक कमज़ोरी, बुज़ुर्गों की उपेक्षा, महिलाओं का स्वतंत्र अस्तित्व, अकेलेपन से उबरते वृद्ध, पारिवारिक रिश्तों के बीच का ताना-बाना, रिश्तेदारों, समाज और मीडिया की संवेदनहीनता, पारिवारिक रिश्तों का विद्रूप चेहरा, समयानुसार बदलते सामाजिक रंग, जातीयता, सांप्रदायिक सद्भाव, रिश्तों में चेतना, नैतिक और आदर्श जीवन मूल्यों की स्थापना, भारतीय संस्कृति, बुज़ुर्ग लोगों की व्यथा इत्यादि बुनियादी सवालों से साक्षात्कार करती नज़र आती हैं। रचनाओं की भाषा सहज, स्वाभाविक और सम्प्रेषणीय है। लेखिका की रचनाएँ जीवन की सच्चाइयों से साक्षात्कार कराती है।

ज्योति जैन की लघुकथाएँ पाठकों को सोचने को मजबूर करती हैं तथा समाज को आईना दिखाती हैं। विषय की विविधता और आमजन के प्रति ख़ास नजरिया इन लघुकथाओं को सशक्त बनाती है। लेखिका ने समय के साथ बदल रहे सामाजिक परिवेश में व्याप्त विसंगतियों, वेदनाओं और विडम्बनाओं को बहुत ही सहज ढंग से संवेदनात्मक अभिव्यक्ति दी है। संग्रह की लघुकथाएँ मानवीय संवेदना से लबरेज हैं। आशा है प्रबुद्ध पाठकों में इस लघुकथा संग्रह का स्वागत होगा।

000

पुस्तक समीक्षा

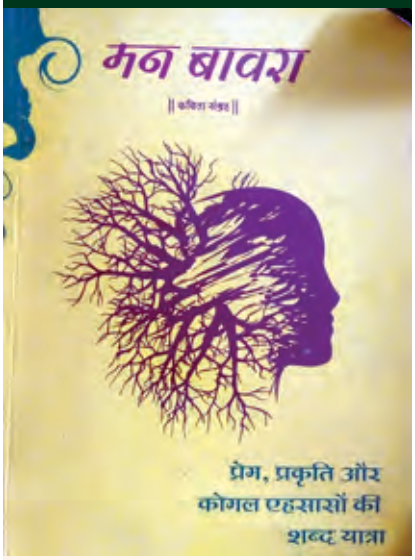

मन बावरा

(कविता संग्रह)

समीक्षक : अनीता रश्मि

लेखक : घनश्याम श्रीवास्तव

प्रकाशक : संकल्प प्रकाशन

अनीता रश्मि
सी, डी ब्लॉक, सत्यभामा ग्रैंड, कुसई,
डोरंडा, राँची, झारखण्ड -834002
मो. 9431701893
ईमेल - anitarashmi2@gmail.com

एक पत्रकार की कविताएँ यथार्थ की धरातल पर रची गई शुष्क, गरिष्ठ रचनाएँ मान ली जाएँगी गर उसके अंदर झाँका न जाए, ऐसी अनुभूति पत्रकारिता में अपना जीवन खपा देनेवाले घनश्याम श्रीवास्तव की कविता पुस्तक 'मन बावरा' से गुज़रते समय हुई। 'संकल्प पब्लिकेशन' से आई 'मन बावरा' में हर मूड और शेड की रचनाएँ हैं। जीवन को गहराई से देखते हुए कवि उसे बड़ी आसानी से प्रकृति से जोड़ देता है। 'ज़िंदगी ये जो है' में काव्याभिव्यक्ति है - कभी अपराजिता का फूल / कभी रेंगनी का काँटा / कभी अरंड के रेशे, / कभी तलैया का कमल। / ज़िंदगी! और ऐसी ही अनगिन कविताओं से है सजा "मन बावरा"।

अलग साज-सज्जा, ख़ूबसूरत बोलते रेखांकन के बीच प्रकृति, प्रेम, जीवन के राग-विराग की कविताई। बहुत शांत ढंग से अपनी बात कहती 'मन बावरा' की कविताओं में कवि घनश्याम श्रीवास्तव का जैसे मन, सरोकार और वैचारिक प्रतिबद्धता मुखर हो उठती है।

घनश्याम श्रीवास्तव प्रसिद्ध संपादक, कवि और निबंधकार हैं। प्रभात ख़बर, दैनिक हिंदुस्तान, अमर उजाला, राष्ट्रीय पाक्षिक द पब्लिक एजेंडा आदि पत्रों और घर प्रभात (प्रभात ख़बर की पत्रिका) के संपादन के दौरान उनकी पहचान एक सजग, समृद्ध, दृष्टि संपन्न संपादक की बनी थी। पत्रकारिता एवं जनसंपर्क में स्नातकोत्तर घनश्याम श्रीवास्तव का कवि-कर्म भी उतना ही सराहनीय होगा, किसी ने सोचा न था।

पुस्तक की भूमिका उपन्यासकार, कवयित्री श्रीमती ऋता शुक्ल ने लिखा है। ऋता जी द्वारा कहे गए "घनश्याम एक ऐसे ही शब्द साधक हैं। उन्होंने जीवन के सभी रंगों को स्वानुभूति के कैनवास पर उतारने का अनवरत प्रयास किया है। घनश्याम ने शब्दों को मित्रवत् साधा है घनश्याम की मौन साधना के प्रमाणक हैं।" इन शब्दों से इंकार की कोई वजह नहीं।

इसकी हृदयस्पर्शी कविताओं में से प्रथम कविता 'प्रेम का सुख' का एक काव्यांश - चलो

एक फूल तोड़ लूँ पलाश का / टाँक दूँ तुम्हारे जूड़े में, / तुम सुर्खियों के साथ चहकना / और मैं समझ लूँगा / मैंने प्रकृति का प्रेम बाँट लिया।

प्रेम अबूझा है, परिभाषित नहीं किया जा सकता क्योंकि सबके अनुभव अलग हैं, सबके लिए अलग संसार रचता है यह प्रेम... सबकी चाहत अलग, सबकी चाहतों के स्वप्निल भरोसे अलग। वैसे प्रेम को यहाँ विराट बना दिया है कवि ने। प्रेम को प्रकृति का जैसे हरकारा बनाकर प्रस्तुत किया है।

कवि या कथाकार के तौर पर यह उनकी पहली कृति है। लगती नहीं कि पहली है।

लगभग ३००० से अधिक आलेख और नियमित स्तंभ लेखन ने उन्हें एक धार और अनुभूतिजन्य समझ थमाई, जो उनके काव्य कर्म में नज़र आता है।

एक बया सा मन / चाहता है सृष्टि रच देना / सूरज को दिखा कर एक दीया / सितारों तक डग भर लेना (मन की राह)

- कितनी ख़ूबसूरती से कवि-हृदय खुलता है यहाँ। सब कुछ रच देने की, बिखरे हुए को समेटने की, खो गए को पाने की छटपटाहट परिलक्षित होती है। इसी कविता की अगली पंक्तियाँ प्रमाण हैं - मन की गठरी अनायास खोल / शब्दों को अर्थवत्ता देना / (मन की राह)

'कौन हो तुम' में कवि उन बड़ी बहनों को याद करते हैं, जो अपने ही छोटे, कभी बड़े भी भाई-बहनों की माँ में ढल जाती हैं। समीक्षक के एकदम दिल के क़रीब हौले से खिसक आई यह कविता क्योंकि उसने भी बचपन में यह रोल इसी तरह बखूबी निभाया था। बाद में भी ससुराल वह बड़ी बहन उसी रोल को निभाती सबका प्यार-आदर पाने लगी। व्यक्तिगत होना नहीं चाहते हुए भी 'कौन हो तुम' ने व्यक्तिगत संस्मरण थमा दिया। झारखंड ही नहीं, देश भर की माँ में ढल जातीं अनगिन बेटियों की कथा। मिलें कविता से - कैसे रख पाती हो तुम। / अभी तो तुम बड़ी नहीं हुई हो। / आठवीं के इम्तिहान सिर पर हैं। / घर के सारे काम भी तुम्हें करने हैं। / निर्बल माँ की सेवा करते हुए, / चार बहनों की चिल्ल-पों, / उनकी शरारतें, / इससे निजात पाते कभी देखा नहीं तुम्हें। / शाख़ पर टँगी उम्मीदें / कभी हरी थी शाख़ों की तरह / पर उम्मीदों को भी मरना होता है / पतझड़ के गिरे पत्तों की तरह / (उम्मीद)

- मौन कवि की बोलती कविता है यह। एक पुरुष की नज़र से देखी गईं, व्यक्त की गईं 'लड़कियाँ' किसी भी स्त्री के रूप को संवेदनशील तरीक़े से प्रस्तुत करती है। कवि जैसे स्त्री की चेतना, दर्द और संवेदना में डूब जिरह सी करता है, स्त्री दृष्टिकोण का आईना बन समझता है, समझाता है - कोई समझता नहीं / उनके होने का मर्म। / वे माँ हैं, बहनें हैं, सृष्टि हैं। / अपनी या पराई / किसी की तो हैं लड़कियाँ।

'मन बावरा' में कवि उदासियों को हटाने की पुरज़ोर वकालत करता है। वजह, उसका मन बावरा हुआ जा रहा है क्योंकि अलसाई साँसों ने अँगड़ाई लेकर कूकती कोयल, रससिक्त आम्र मंजरियों और आम्र रस की आमद को देख चुका है। गेसुओं को ढँकनेवाले बदरा आ चुके हैं। ऐसे में कह उठता है वह - इस चुप्पी को शब्द दो / और भावनाओं का ज्वार। / ट्यूलिप की स्निग्धता के साथ / खुल कर निखरो इस बार।

झारखंड के रचनाकार हों, और झारखंड अछूता रह जाए, अमूमन ऐसा होता नहीं। 'मन बावरा' में भी नहीं हुआ।

घनश्याम जी ने बहुचर्चित नेतरहाट को कम शब्दों में परिभाषित करते हुए के इसी नाम की रचना में लिखा है - वहाँ देखा है मैंने अकसर / महर्षि धौम्य से आचार्य। / आरुणि से शिष्यगण। / छात्रों में देखी है उत्सुकता। / वशिष्ठ के गणित ज्ञान की। / (नेतरहाट)

वक्त की जुंबिशें, मिठास, तपिश, करवटें ...कौन नहीं कायल है इसका। शब्दों को बरतने का हुनर जाननेवाले सजग कवि की कलम बोलती है 'वक्त' में - / कैलेंडर की आखिरी तारीख़, / और विदा होता हुआ साल। / नई उम्मीदों की फेहरिश्त जोड़कर / पुराने से करता है कुट्टी। / अल्लसुबह उठ गई हैं दादी अम्मा, / गर्म हुआ अलाव, बुहर गया आँगन। / (रोज़नामा)

- पुराने, नए समय की व्यक्तित्व और दिनचर्या को स्वर देती यह कविता अपनी तरलता से मनमोहक बन पड़ी है। ऐसे अनगिनत कविताओं की तासीर कोमल, तरल, शीतल और मिठास से भरी है।

और कवि की नज़रों में 'घर' को देखें तो सुखद अहसास से भर जाना लाज़िमी है। क्योंकि- घर, घर होता है। / सोंधी मिट्टी में उगे बिरवे सा, / उमंग से भरा, शाश्वत, सुंदर होता है।

लगभग हर स्थिति-परिस्थिति, राग-रंग की कविताओं से बना है - मन बावरा, मन को बावरा करने की क्षमता से लैश! यहाँ ज़िंदगी की विवधवर्णी छवियाँ हैं तो प्रकृति की मासूम पुकार। एक संवेदनशील मानव की अकुलाहट है तो रिश्तों की तारतम्यता के महीन रचाव। 'मन बावरा' में उम्मीदों, आशाओं, विश्वास की उर्वर ज़मीं है, निराशा की जहाँ गुंजाइश नहीं। उम्मीद उगाती, उम्मीद से भरी, उम्मीद ओढ़ती-बिछाती, उम्मीद जगाती हुई एक उम्दा पुस्तक।

अब कवि के शब्दों को भी देखें..."मन बावरा ऐसे ही आवारा ख़यालों को मुट्ठी में पकड़ने का एक उपक्रम है।"

काफी पहले से धीरे-धीरे रचित-पोषित काव्य कवि की एक परिपक्व छवि गढ़ता है। बिना शोर के सुकवि घनश्याम जी अपने रचनाकर्म में जुटे रहे हैं। लगा, जैसे बिना शोर के ही यह पुस्तक धुंध में न खो जाए। इतनी महत्त्वपूर्ण कविताओं से युक्त 'मन बावरा' को धुंध में खोना भी नहीं चाहिए। काव्य अभिव्यक्तियों से संगत करते अर्थपूर्ण रेखांकन जैसे कविताओं के द्वार झपाटे से खोल, अंदर की दुनिया में पाठक को ले जाने के लिए उत्सुक है। प्रथम गिरीजा शंकर स्मारक पत्रकारिता पुरस्कार से सम्मानित पत्रकार-कवि की 'मन बावरा' काव्य संग्रह का स्वागत खुले दिल से होगा, ऐसा सोचना असामान्य तो नहीं। उतर रहा है रंग समय का / वह समय का गिरता हुआ मिज़ाज है / वह इस घर के किसी कोने में / एक दबी हुई आवाज़ है।

000

पुस्तक समीक्षा

इंसानियत डॉट कॉम

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : रमेश खत्री

लेखक : नीलिमा टिक्कू

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

रमेश खत्री
53/17, प्रतापनगर,
जयपुर 302033, राजस्थान
मोबाइल- 9414373188
ईमेल- sahityadarshan@gmail.com

नीलिमा टिक्कू का कहानी संग्रह, "इंसानियत डॉट कॉम" हाल ही में आया है। जिसमें उन्होंने अपने समय की समकालीनता के बीच से स्त्री विमर्श की अवधारणा के प्रचलित मानदंडों को दरकिनार करते हुए उन कथा रचनाओं की सर्जना की जो वर्तमान समय की आपाधापी के बीच स्त्री को गहरे तक कचोटती रही है। इस कहानी संग्रह में कुल ग्यारह कहानियाँ सम्मिलित है। निश्चित तौर पर इस कहानी संग्रह में हम पाते हैं समय की उस आँच को जो हमारे आसपास ही छितराई हुई है। संग्रह के आरंभ में लेखिका स्वयं अपने उद्गार प्रकट करते हुए कहती है, "बदलते समय के साथ हमें भी अपनी सोच का दायरा विस्तृत करना होगा। मन की बंद खिड़कियों को खोलकर बदलाव की हवा के एहसास को महसूसना होगा।" यही इस सग्रह की कहानियों को देखने की दृष्टि देता है।

जब हम संग्रह की कहानियों से गुज़रते हैं तो हमें अलग-अलग स्तर पर बदलाव का रूप दिखाई देता है। यक़ीनन यह एक बेहतर समाज एवं ज़िंदगी को बनाने के लिए ही है। समाज में व्याप्त विडंबनाओ, कुरीतियों, संकीर्ण सोच को दूर करने का प्रयास करती, बेटियों के जुझारूपन, उनके हौसले की उड़ान को क्षितिज देती संग्रह की सभी कहानियाँ दिल की संवेदनाओं के तार से जुड़ी है और उस तार का नाम है इंसानियत डॉट कॉम।

समीक्ष्य संग्रह की कहानियाँ एक खुशनुमा संसार की परिकल्पना करती हैं, इनमें हँसते मुस्कुराते परिवार हैं, आपसी संबंधों को निभाते हुए लोग हैं और आपसी भाईचारा है। यह सभी माननीयता को पुष्ट करते हैं और हमें उस दिशा की ओर ले जाते हैं जहाँ भागदौड़ से दूर, बाज़ार की आपाधापी के बरअक्स अभी भी बची हुई है आपसी रिश्तों में गर्माहट।

संग्रह की कहानी "तुम्हारी नंदिनी" अनचाहे विवाह की परिणति को बड़े ही विश्वसनीय ढंग से हमारे सम्मुख खोलती है। अबीर अपने परिवार के दबाव में आकर नंदनी के सघन प्रेम को छोड़कर फूहड़ किंतु धनाढ्य निशा से विवाह कर लेता है और जीवन भर हताशा में रहता है। तो वहीं दूसरी और नंदिनी अपना जीवन संवेदना और समझदारी से बिताते हुए सँवार लेती है। तो वही "ज़िंदगी रुकती नहीं" कहानी में विचारों का टकराव इस हद तक होता है कि उसकी परिणति गाँव में होती है। आधुनिक समय में युवा पीढ़ी के लिए विवाह से पूर्व साथ रहने का तो जैसे रिवाज ही बन गया है। इस कहानी में भी लड़का लड़की विवाह के पहले ही साथ रहने लगते हैं किंतु उनके विचार नहीं मिलने के कारण उनमें टकराव पैदा होता है। यहाँ हम देखते हैं कि एक की जागरूकता दूसरे के लिए जड़ता साबित होती है। कहानीकार इन कहानियों में अपने समय को प्रस्तुत करने का प्रयास करती है जो समकालीन व्यवस्था में पुरुष की जड़ता से उत्पन्न त्रिशंकु स्थितियों का परीक्षण कर कहानियों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कहानी के पात्र अर्थकेंद्रित वर्तमान समाज व्यवस्था के संकटों को समझने की कोशिश करते हैं तो दिन पर दिन छीजती जा रही संवेदनाओं को बचाने की चिंता भी।

संग्रह की शीर्ष कहानी, "इंसानियत डॉट कॉम" में लेखिका सामाजिक उपेक्षा, अवहेलना झेल रहे लोगों के पक्ष में खड़ी नज़र आती है और उन सफेदपोश लोगों का पर्दाफाश करती है जो शरीर से अपूर्ण होने के कारण किन्नरों को बचपन से ही शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना देते रहते हैं। समाज की इस मानसिकता के कारण ऐसे लोगों को परिवार में किसी का भी प्यार नहीं मिलता और ना ही उनको किसी तरह की समाज में सामाजिक सुरक्षा ही मिल पाती है। ऐसे लोग समाज के हर क्षेत्र में शिकार होते हैं उनकी स्थिति दयनीय होती चली जाती है इसी सब को केंद्र

में रखकर लिखी गई मार्मिक कहानी है यह। लेखिका इस कहानी के माध्यम से हमारे मन में ऐसी भावना की रचना करने का प्रयास करती है जिससे ऐसे लोगों के प्रति हम संवेदनशील हों और उम्मीद करती है कि समाज में व्याप्त विसंगतियों और विडंबनाओं को दूर करने का प्रयास लगातार किया जाना चाहिए। तभी शायद ऐसे समाज की निर्मिति हो सकती है जिसमें आदमी एक दूसरे की भावनाओं को समझे और दुख दर्द में मदद करें, ''आरती जी हम भी आप जैसे इंसानों की ही संतान हैं, फिर भी ये समाज हमें इंसान नहीं मानता। आपने हमें इंसान माना और हमारी इंसानियत को पहचाना। हमारे लिए यही बहुत है। समाज से हम इसी स्वीकृति की चाहत रखते हैं।''

कुछ इसी तरह की परिस्थितियों से जूझती संग्रह की एक और कहानी है ''अब और नहीं'' यह कहानी हमें ऐसी दुनिया में ले जाती है जहाँ पर समाज में स्थिरीभूत धारणाओं, अंधविश्वासों और स्त्री अस्मिता विरोधी क्रूर अवधारणाओं के बरअक्स ऐसी परिस्थिति से हमारा साबक़ा करवाती है जहाँ पर बेटे की कामना के कारण बेटियों की भ्रूण हत्या, बलत्कृत लड़कियों के प्रति सामाजिक क्रूरता और पुरुष की हिंसक मानसिकता पर कहानी के माध्यम से प्रहार किया है। कहानी में पुरुष दंभ के कारण क्रूरता की शिकार स्त्रियों की दयनीय दशा का बयान करने के बावजूद उनकी ममता, करुणा और अदम्य शक्ति पर विश्वास करने का मन करता है। कथा के माध्यम से लेखिका विवेकवान स्त्रियों के साहसिक कार्यों को परत दर परत हमारे सम्मुख खोलती है, ''आशा जी आपका ये एहसान मैं कभी नहीं भूलूँगी। आप हम माँ-बेटी के लिए एक फरिश्ता बनकर आई हैं। आपने हमारे लिए दिन-रात एक कर दिया। सच कहूँ तो एक माँ होकर भी मैं इसके लिए इतना नहीं कर सकती थी। मैं तो बस ना जाने कैसे हिम्मत करके इसे यहाँ तक ले आई....बाकी सब कुछ आपने ही सँभाला है। ...आपकी वजह से मेरी बेटी बच गई।''

समीक्ष्य संग्रह की एक और कहानी है,''तुम्हारी नन्दनी'' इसमें रूढ़ मानसिकता वाली माँ है जो अपनी अंधविश्वासी सोच के कारण अपने ही बेटे की ज़िंदगी में अशांति भर देती है। सदियों से चला आ रहा बेटे के प्रति मोह और बेटी के प्रति दुर्वव्यवहार हमारे समाज में कोढ़ की तरह है। देखें, ''अबीर इसीलिए मैंने तुम्हें कभी बताया नहीं। इससे पहले जो मेरा गर्भपात हुआ था वो मैंने स्वयं करवाया था क्योंकि गर्भ में बेटी थी।'' तो वहीं दूसरी ओर इस कहानी में यह भी हमें देखने को मिलता है, जहाँ बेटी और बेटे में कोई फ़र्क नहीं करते, ''कैसी बातें कर रही है आंटी, मम्मी की तो वर्षों से एक ही तमन्ना थी कि उनके एक बेटी हो लेकिन भगवान ने उनकी एक ना सुनी। पहले जुड़वाँ बेटे हुए और पाँच साल बाद बेटी की चाह में एक और बेटा हो गया। अब जाकर हमारे घर में बेटी हुई है। उनकी वर्षों की साध पूरी करी है मैंने। वो गर्व से सिर ऊँचा किए प्रसन्नता से चहक रही थी। ''

''ज़िन्दगी रुकती नहीं है'' कहानी में माँ अपने बेटे सौरभ को उसकी प्रेमिका निमिषा से विवाह करने की इजाज़त नहीं देती है। अपनी नस काटकर बेटे को अपनी चुनी हुई लड़की से शादी करने को विवश कर देती है। तो बेटा सौरभ भी अपने विवेक को तिलांजली देकर और माँ के दबाव में आकर अपनी प्रेमिका को छोड़ देता है। लिव इन रिलेशन में रहने के बावजूद सौरभ निमिषा को अपमानित करने में कोई कसर नहीं छोड़ता। कहने का तात्पर्य यह है कि स्थिति चाहे जैसी भी हो स्त्री को ही हमेशा कठघरे में खड़ा किया जाता है, ''निमि तू ने अकेले रहकर बहुत कुछ सहा है....तेरी सरलता का फ़ायदा तेरे भाई-भाभी ने उठाया और तुझसे ज़मीन जायदाद के क़ाग़जों पर हस्ताक्षर करवा के दूध से मक्खी की तरह निकाल बाहर किया। ....अपने एकाकी पन को दूर करने के लिए तेरी सरलता का सौरभ ने फायदा उठाया। पर ये भी एक कड़वा सच है निमि कि इस तरह के बेनानी रिश्तों का ख़ामियाज़ा हम लड़कियों को ही भुगतना पड़ता है। ज़रा सोच कि इस तरह की नकारात्मक सोच वाले पज़ेसिव माँ-बेटे के साथ तेरा कोई क़ानूनी संबंध नहीं बना और विवाह से पहले ही तुझे इनकी असलियत पता चल गई।''

तो वहीं ''खुशियों के रंग'' कहानी में जीवन मूल्यों को लेखिका ने अलग अंदाज़ में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। परिवार में आपसी सद्भाव और प्रेम तभी संभव है जब परिवार के सभी सदस्य अपने निजी स्वार्थ और दंभ को छोड़कर सकारात्मक सोच से एक दूसरे की खुशियों में मन से शामिल हो, ''बहू आज तक तूने मेरे सामने कभी इस तरह का व्यवहार नहीं किया। लड़की चाहे कितना ही अपने पैरों पर खड़ी हो जाए घर के कामकाज और बोलने की तमीज़ तो उसे सीखनी ही पड़ती है ना।'' तो वहीं संग्रह की एक दूसरी कहानी है ''छोटे शहर की लड़की'' इसमें लेखिका ने महानगर में अकेली रहती लड़कियों के स्वछंद व्यवहार और नैतिकता की खिल्ली उड़ाने वाली लड़कियों से अलग अपनी नैतिक सोच के मुताबिक जीने की पक्षधर है इसकी पात्रा। वह अपने होनेवाले पति की भोगवादी प्रकृति और अर्थकेंद्रित मानसिकता को पहचनान कर उससे विवाह करने से इंकार कर देती है।

समीक्ष्य संग्रह की कहानियों में नीलिमा टिक्कू ने जहाँ एक ओर लिव इन रिलेशन की ख़ामियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए विवाह संस्था के महत्त्व को रेखांकित किया है और दाम्पत्य जीवन की स्थिरता के लिए पति-पत्नी में आपसी विश्वास और जीवन की वास्तविकताओं का मिलकर सामना करने का हौसला भी वो ज़रूरी मानती है।

निसंदेह हम कह सकते हैं कि नीलिमा टिक्कू की कहानियाँ वर्तमान समय का साक्ष्य ही प्रस्तुत नहीं करतीं वरन् वर्तमान समय की द्वंद्वात्मक स्थितियों को हमारे सम्मुख खोलती जाती हैं। निसंदेह इस संग्रह की कहानियाँ आत्म मंथन का आह्वान करती है। ये कहानियाँ देर तक हमारे मानस को उद्वेलित करती है और हमें सोचने पर विवश करती है। यही इस संग्रह की सार्थकता भी है।

000

पुस्तक समीक्षा

जापानी सराय

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : देवेश पथ सारिया

लेखक : अनुकृति उपाध्याय

प्रकाशक : राजपाल एंड संस, नई दिल्ली

देवेश पथ सारिया
पोस्ट डाक्टरल फेलो
रूम नं 522, जनरल बिल्डिंग-2
नेशनल चिंग हुआ यूनिवर्सिटी
नं 101, सेक्शन 2, ग्वांग-फु रोड
शिन्चू, ताइवान, 30013
मोबाइल- 886978064930
ईमेल- deveshpath@gmail.com

अनुकृति उपाध्याय के लेखन के एकाधिक ध्रुव हैं। अनुकृति कभी बिल्कुल विदेशी संस्कृति से रू-ब-रू कराती हैं और कभी भारतीय मध्यम वर्ग से, कभी हिन्दी में लिखती हैं और कभी अंग्रेज़ी में, कभी कहानियाँ और कभी कविताएँ। बतौर रचनाकार अनुकृति हर ध्रुव पर निस्पृह नज़र आती हैं। यह लेखिका की ख़ूबी तो है किन्तु दूसरा पहलू यह भी है कि आयामों का सम्मिश्रण न करना उन्हें प्रयोग के असीमित विकल्पों से वंचित रख सकता है।

'जापानी सराय' अनुकृति का पहला कहानी संग्रह है। 'राजपाल एँड संस' से प्रकाशित इस संग्रह में कुल १० कहानियाँ हैं। अनुकृति की कहानियों का शिल्प बहुत सधा हुआ होता है और भाषा ऐसी कि कहीं एक शब्द भी नहीं खटकता। दृश्यावलोकन की कला इस लेखिका को पता है। इन कहानियों से गुज़रते हुए वैज्ञानिक सन्दर्भ बहुतायत में आते हैं जो विज्ञान में दिलचस्पी वाले पाठकों को रोमांचित करते हैं, साथ ही अन्य पाठकों के ज्ञान में इज़ाफ़ा करते हैं।

पहली कहानी 'जापानी सराय' जो कि संग्रह की शीर्षक कहानी भी है, अनुकृति की कहानी बुनने की तकनीक की हस्ताक्षर है। इसमें जापान की संस्कृति है और वहाँ के खाद्य पदार्थों का उल्लेख भी है। बीच में कॉकटेल का ज़िक्र भी आता है, जो शराब के नामों, माहौल और बार टेंडर की कुशलता के वर्णन के चलते शराब न पीने वाले को भी आकर्षक लगता है। कहानी का एक किरदार शोधकर्ता है, इसलिए समुद्री जीवन के बारे में भी शोधपरक कुछ बातें हैं, पर उनसे कहानी कहीं भी बोझिल नहीं होती। अनुकृति जानती हैं कि ऐसी बातों को कहानी में प्रयुक्त करने का सही अनुपात क्या है। कहानीकार की कारीगरी का एक नमूना देखिए-

"हम दोनों को ग़लतफ़हमी हो गई थी। मैं जापान के लिए अपने प्यार को उसके लिए प्यार समझ बैठा। वह क्या समझी यह मैं आज तक नहीं जान पाया। ऐसा अक्सर हो जाता है क्योंकि हम अपने को समझने में उतना समय भी ख़र्च नहीं करते जितना एक शर्ट चुनने में।"

'चेरी ब्लॉसम' कहानी में जापान में वसंत का वर्णन मिलता है एवं चेरी ब्लॉसम आधारित पर्यटन के महत्त्वपूर्ण ठिकानों का पता भी। साथ ही जापानी लोगों के जीने का तरीक़ा, विनम्रता और ज़िन्दादिली भी इस कहानी में देखी जा सकती है।

संग्रह की तीसरी कहानी 'रेस्टरूम' कुछ-कुछ एब्स्ट्रेक्ट होते हुए आगे बढ़ती है और एक अजनबी रोती हुई औरत, कहानी की मुख्य पात्र (इस पर बहस हो सकती है कि मुख्य पात्र कौन थी) के प्यार के दो बोल से पिघलकर उसे कसकर गले लगा लेती है। अनुकृति इस कहानी में कई जगह अद्भुत शिल्प बुनती हैं। अपनी एब्स्ट्रेक्ट कहानियों में वे ऐसे प्रयोग करती देखी गई हैं-

"सब कुछ थोड़ा सा बिगड़ा हुआ है, अपनी धुरी से थोड़ा सा हिला, अपनी लीक से कुछ

टेढ़ा, जैसे किसी ने तस्वीर तिरछी लटका दी हो। ऐसे में शुक्र है कि चाय है और काम।"

'शावर्मा' कहानी एक कॉर्पोरेट कॉन्फ्रेंस और वहाँ के दिखावटी साथ जैसे बोझिल परिदृश्य से शुरू होती है और जल्द ही अपनी भाषा से पाठक के मन पर पकड़ बनाना शुरू करती है। यहाँ एक पात्र है जिसकी प्रिय बिल्लियाँ उसकी पत्नी को पसंद नहीं। पात्र को भी पसंद है कोई और, मन ही मन।

"मेरे भीतर कुछ दुखता-सा उसे बाँहों में लेने के लिए कराहता है।"

और ये कवितामय पंक्तियाँ भी देखिए-:

"मैं उसकी आँखों को चूम लेना चाहता हूँ। उनमें चमकता कुछ ढलकता क्यों नहीं?"

वह जो है और कोई, है अपने जीवन में उलझी हुई, अकेली संगीत सुनती हुई। इस कहानी में हांगकांग नज़र आता है। कहानी का अंत चमत्कृत करने वाला है।

मध्यमवर्गीय परिवारों में कई अरेंज मैरिज बिना प्रेम के बस एक समझौते जैसी होती हैं। 'प्रेजेंटेशन' कहानी की नायिका और उसके पति के बीच प्रेम जैसा कुछ मुझे नज़र नहीं आया। इस कहानी में दर्शाया गया है कि पुरुष प्रधान समाज में एक स्त्री सुशिक्षित और कामकाजी होते हुए भी किस विकृत मानसिकता और दोयम व्यवहार का सामना करती है। नायिका को दिए गए ससुराल की महिलाओं के ताने पढ़कर लगता है कि कितना कुछ ग़लत है हमारे समाज में। कहानी का शीर्षक नायिका के काम के संदर्भ में देखते हुए एक कामचलाऊ सा शीर्षक लगता है, किंतु यदि इसी शीर्षक को पारिवारिक संदर्भ में स्त्री की दशा से जोड़कर देखा जाए, तो यह प्रतीकात्मक तौर पर सटीक मालूम होता है।

'हरसिंगार के फूल' मृत्यु और मृत्यु के बाद के दृश्यों का जीवंत चित्रण करती है। कहानी का अंत होते-होते एक अलग पहलू आता है, जिसके बारे में यह बहस हो सकती है कि क्या उसे इतना ही संक्षिप्त रखना उचित था? उसका बैकड्रॉप क्या और विस्तृत हो सकता था? यदि बैकड्रॉप इतना ही था, तो कहानी की नायिका का एक पूर्व सहकर्मी के साथ संबंध बनाना ज़ब्त प्रेम की अपेक्षा पिता की मृत्यु के शोक का असर अधिक लगता है।

'इंसेक्टा' कहानी में कीड़ों की विभिन्न प्रजातियों के बारे में जानकारी मिलती है, चूँकि कहानी का नायक उनके संकलन का शौक़ रखता है। यह कहानी भारतीय स्कूलों में व्याप्त बूलींग कल्चर की तरफ़ भी ध्यान आकर्षित करती है। एक ओर हम भारतीय संस्कारों की दुहाई नहीं देते नहीं थकते और दूसरी तरफ हम अपने बच्चों को यह आधारभूत तमीज़ ही नहीं सिखा पाते कि अपने सहपाठियों की अलग अभिरुचि का सम्मान कर सकें और उनके बाहरी स्वरूप के आधार पर कोई भेदभाव या छींटाकशी न करें। साथ ही भारतीय परिवार में पढ़ाई को लेकर माता-पिता का दबाव बच्चे को मानसिक विक्षिप्तता की हद तक ले जाता है। कहानी का नायक इन दोनों चीज़ों का शिकार है।

कहन के दृष्टिकोण से 'छिपकली' कहानी को इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में गिना जाएगा। एक माँ-बेटे के बीच आत्मीयता की इस कहानी की सबसे बड़ी ख़ूबी इसका बेहद साधारण होना है जो कि अपने संवादों, संवेदनशीलता और प्रवाह के माध्यम से पाठक को प्रभावित करती है।

मनुष्य प्रकृति और जीव-जंतुओं के बीच तारतम्य की कहानी है 'जानकी और चमगादड़'। यहाँ भी अनुकृति अपनी वैज्ञानिक सोच और जानकारी साझा करती हैं। किंतु हैं विज्ञान के मूल में यहाँ भावनाएँ ही। कहानी का दुखद अंत भावुक करता है।

'डेथ सर्टिफिकेट' संग्रह की अंतिम कहानी है। यह कहानी कार्पोरेट संस्कृति और नगरीय संभ्रांत रिश्तों की कलई खोलती है। एक स्त्री की हत्या को डेथ सर्टिफिकेट पर सामान्य मृत्यु दर्शा दिया जाता है। इस षड्यंत्र में न केवल भ्रष्ट अधिकारी बल्कि स्त्री का पति और प्रेमी भी साथ देते हैं।

अनुकृति की लेखन सामर्थ्य के कई पहलुओं का आकार लेना अभी शेष हैं। कहानी के स्वभाव के अनुसार अपनी सामर्थ्य के विभिन्न आयामों का मिश्रण उनकी कहानियों को दीर्घायु प्रदान करेगा।

000

नई पुस्तक

अनामिका

(उपन्यास)

लेखक : गजेन्द्र सिंह वर्धमान

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

अपने पहले उपन्यास कहिए मंज़िल से इंतज़ार करे के द्वारा हिन्दी साहित्य में अपना क़दम मज़बूती के साथ रखने वाले गजेन्द्र सिंह वर्धमान का यह दूसरा उपन्यास है। पहले उपन्यास में जहाँ मानव जीवन के संघर्ष की कहानी थी तो इस दूसरे उपन्यास अनामिका में प्रेम और जीवन का द्वंद्व लेकर वे आए हैं। इस उपन्यास की भूमिका में कथाकार, पंकज सुबीर लिखते हैं- उपन्यास की भाषा को भी लेखक ने एकदम सरल और सहज रखा है। वही सरल भाषा, जो आम ज़िंदगी में बोली जाती है। यदि पात्र आम ज़िंदगी से आ रहे हैं, तो ज़ाहिर सी बात है कि उनकी भाषा भी वही रखनी होगी। इस एक ज़रूरी बात को लेकर अक्सर लेखक लापरवाही कर जाते हैं। अक्सर कृतियों में आम ज़िंदगी के पात्र कठिन और जटिल भाषा बोलते दिखाई देते हैं, जो असहज लगता है। गजेन्द्र सिंह वर्धमान ने अपने उपन्यास को इस एक चूक से भी बचा लिया है। उपन्यास की भाषा शिल्प की दृष्टि से भी और पठनीयता की दृष्टि से भी एकदम वही है, जो होनी चाहिए।

000

पुस्तक समीक्षा

समय पर दस्तक

(लघुकथा संग्रह)

समीक्षक : सूरजमल रस्तोगी

लेखक : संदीप तोमर

प्रकाशक : इंडिया नेटबुक नोएडा

सूरजमल रस्तोगी
डी 2/1 जीवन पार्क, उत्तमनगर
नई दिल्ली - 110059
मोबाइल- 8377875009
ईमेल- gangdhari.sandy@gmail.com

"सतसैया के दोहे ज्यों नाविक के तीर
देखन में छोटण लगें घाव करें गम्भीर"

लघुकथा विधा के बारे में कवि बिहारी लाल का यह दोहा एकदम सटीक और प्रासंगिक प्रतीत होता है और बात जब संदीप तोमर जैसे कथाकार की हो तो ये पंक्तियाँ और अधिक प्रासंगिक हो जाती हैं। संदीप तोमर एक कहानीकार, उपन्यासकार, एक उद्भट समीक्षक और एक कवि भी हैं। उनका कविमन वहाँ तक भी पहुँच जाता है जहाँ सूर्य की किरणें भी नहीं पहुँच पातीं। पाठक कृपया इसे मेरी अतिशयोक्ति न समझें, वे अपने हर पात्र के साथ ऐसा तादात्म्य कर लेते हैं कि वह सजीव हो उठता है। वे कथा, लघुकथा की बारीकियों को अपनी सशक्त वाणी में कहने में सक्षम हैं।

यह सृष्टि नियति के आधीन है। यह किसे कब कितना और कैसे प्रभावित करती है कोई नहीं जानता। थॉमस हार्डी ने इसे प्रोविडेंस (Providence) कहा जिसे समय कह सकते हैं। लेकिन समय को कौन खटखटा सकता है, कौन दस्तक दे सकता है, यह हुनर कोई हमारे प्रिय लेखक संदीप तोमर से पूछे। ऐसा तो कोई क्रांतिकारी ही कर सकता है जिसे आज से शताब्दियों पूर्व अंग्रेज़ी के महान कवि पी. बी. शैली ने किया था। ब्रिटिश उपनिवेशवाद की क्रूरता से आहत पी. बी. शैली ने इंग्लैंड छोड़कर इटली में शरण ली थी जो ब्रिटिश की देशों को ग़ुलाम बनाने की प्रक्रिया का परिचायक और मानवता के विरुद्ध मूलभावना का द्योतक थी। मानवीय स्वतंत्रता, सहृदयता, भ्रातत्व और समानता में अटूट विश्वास रखने वाले शैली को संदीप तोमर की रचनाओं में मैंने महसूस किया है।

दीर्घ और लघु में एक बड़ा अंतर है। दीर्घ में एक विस्तृत रूप है जबकि उसी को लघुतम रूप में व्यक्त करना एक कुशल चितेरे कहानीकार की विद्वता है जो कुछ शब्दों में ही अपने पात्रों के माध्यम से कह देता है। हमारे चारों ओर निर्बाध गति से बहुत कुछ घटता रहता है, बहुत कुछ अप्रत्याशित सा। मानवीय संवेदना के अभाव में जिसे हम अनदेखा कर देते हैं लेकिन एक कविमन युक्त कहानीकार उस सत्य को प्रकट कर देता है लेशमात्र भी नहीं सकुचाता क्योंकि वह मानवीय संवेदनाओं, स्नेह, दया और करुणा से भरा हुआ है।

मानवीय संवेदना की उपेक्षा से जन्मी असहिष्णुता, घृणा, द्वेष, सामाजिक विषमताएँ और विसंगतियाँ, असमानता, ग़रीबी और भुखमरी भी इसी का परिणाम है। तोमर जी के लघुकथा संग्रह "समय पर दस्तक" की लघुकथाओं में यह सब स्पष्ट है। उनकी इन लघुकथाओं में विविधता है। उनमें समाज को देखने की एक पैनी दृष्टि है जिससे वह सूक्ष्मतम को भी दृष्टिगत् कर लेते हैं। उनके कथानक का वर्णन पाठक को सजीव लगता है और फलत: प्रभावित भी

करता है। समाज के हर परिवेश को उन्होंने स्पर्श किया। उनके विषय चयन में विविधता है तो कहन में नयापन है, वे हर रचना में अनुप्रयोग करते प्रतीत होते हैं, हर लघुकथा बहुत कुछ कहने में समर्थ है। पुस्तक की भूमिका में प्रसिद्ध लघुकथा लेखक "अशोक लव" लिखते हैं- "सन्दीप की लघुकथाएँ वैविध्य लिए हैं। ऐसा तभी होता है जब साहित्यकार अपने परिवेश से सम्बद्ध होता है, वह समाज का सूक्ष्म अवलोकन करता है, सजगता से मानव-मनोविज्ञान को जानने का प्रयास करता है।"

सन्दीप तोमर की लघुकथाएँ समाज के यथार्थ को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करती हैं। इस संग्रह की एक भी लघुकथा ऐसी नहीं जिसे कपोल-कल्पित संसार की कल्पना माना जा सके। वे समाज के यथार्थ को पैनेपन के साथ हमारे सामने रखते हैं। समाज का लगभग हर एक पक्ष इन लघुकथाओं में समाहित हुआ है। बतौर अशोक लव –"पारिवारिक संबंधों, प्रेम-प्रसंगों, मुक्त यौन-संबंधों, कार्यालयी विसंगतियों, व्यावसायिक क्षेत्रों की धांधलियों आदि पर सन्दीप तोमर ने तीखे व्यंग्य किए हैं। व्यक्तियों के मुखौटे लगाए चेहरों को अनावृत करने में सन्दीप तोमर तीक्ष्ण आघात करते हैं।"

लघुकथा के बारे में कहा जाता है कि यह कम से कम शब्दों में अधिक अभिव्यक्त करने की विधा है। व्याकरण के नियम अवश्य होते हैं लेकिन लघुकथा की शब्द-सीमा का कोई व्याकरणीय नियम नहीं है। लघुकथा स्वयं अपनी शब्द-सीमा निर्धारित करती है।

अशोक लव सन्दीप तोमर के बारे में लिखते हैं- "उनकी सबसे बड़ी विशेषता है कि वे अपने विषय और लक्ष्यों को सदैव सामने रखते हैं, उनकी लघुकथाओं में न ही अनावश्यक विस्तार है और न ही बात को कह देने की जल्दबाज़ी, ये रचनाएँ अपने चरम पर पहुँचकर अपना अभीष्ट पा लेती हैं। पाठक-मन को उद्वेलित करके ये लघुकथाएँ चिन्तन को बाध्य करती हैं।" संदीप तोमर लघुकथा की अंतिम पंक्ति यानी समापन बिंदु पर विशेष मेहनत करते दिखाई देते हैं, उन्हें पता है समापन बिंदु जितना सशक्त होगा, उसमें जितनी मारकता होगी, अंत जितना संवेदनशील होगा उतनी ही लघुकथा प्रभावशाली होगी। यही कारण है कि सन्दीप तोमर ने इस संग्रह कि रचनाओं में एक मँजे हुए कथाकार की भाँति समापन बिंदु पर विशेष ध्यान दिया है। संदीप तोमर कि एक विशेषता ये भी है कि वे लघुकथाओं में अन्य अंगों पर उपेक्षित भाव नहीं रखते। बतौर अशोक लव –"वही लघुकथा प्रभावशाली होती है, जो समग्रता से हृदय का स्पर्श करती है, चिन्तन को बाध्य करती है।" सन्दीप तोमर के रचनाकर्म की यही विशेषता है, वे रचना के हर अंग पर हर क्षेत्र में बराबर मेहनत करते हैं, कहना न होगा वे समग्रता के रचनाकार हैं। इस संग्रह की अधिकांश लघुकथाओं में विवरण और संवाद के स्तर पर रचनाकार ने अनूठे प्रयोग किए हैं, जिन्हें रचनाओं के साथ यात्रा करते हुए पाठक स्वयं अनुभूत होता है।

'ख़ुदा का घर', 'ट्यूशनखोर', 'कुंडली या...', 'सड़क जाम', 'ग़रीब होने का अहसास', 'शहरी संस्कृति', 'भाग्य', 'वजह' आदि लघुकथाओं से संदीप तोमर सहज ही आकर्षित करते हैं। इसके अतिरिक्त सन्दीप की लघुकथाएँ- 'उज्ज्वल भविष्य', 'भूख', 'स्टेट्स', 'जहर', 'सिस्टम', 'मर्दानगी', 'जूते के तलवे में', और जनहित आदि लघुकथाएँ अपने कथ्य और अभिव्यक्ति-कौशल के कारण सहज ही हृदय को स्पर्श करती चली जाती हैं। बटवारा, बिकाऊ माल, मानसिकता, संविधान, मुक्तनदी, उज्ज्वल भविष्य, शून्य, सम्पादन कर्म आदि रचनाएँ भी सहज और मर्मस्पर्शी हैं।

सरल भाषा शैली में लिखी ये लघुकथाएँ निस्संदेह पठनीय हैं। बतौर अशोक लव- "अनेक स्थलों पर भाषा मर्यादा की सीमा का उल्लंघन भी कर जाती है क्योंकि लेखक भावावेश में विसंगतियों पर कुठाराघात करना चाहता है, एक बात यहाँ ध्यान देने योग्य है- यह भाषा लेखक की स्वयं की नहीं है, पात्र जिस भाषा का प्रयोग करता है, लेखक उसी रूप में संवाद लिख दायित्व पूरा करता है।"

000

नई पुस्तक

एक था भौंदू व अन्य लघुकथाएँ

(लघुकथा संग्रह)

लेखक : काजल कुमार

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

सुप्रसिद्ध व्यंग्यचित्रकार काजल कुमार का यह लघुकथा संग्रह हाल में ही शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया है। इस संग्रह में काजल कुमार की जो लघुकथाएँ संकलित की गई हैं, वह उनके लेखकीय पक्ष को उजागर करती हैं। यह लघुकथाएँ जीवन से होकर गुज़रती हुई लघुकथाएँ हैं। इनमें आम ज़िंदगी में आने वाली परेशानियाँ हैं, चिंताएँ हैं। ये लघुकथाएँ कभी व्यंग्य की भाषा में बात करती हैं, तो कभी करुणा के गहरे स्तर तक उतर कर अपने पाठक के साथ संवाद करती हैं। काजल कुमार जिस प्रकार व्यंग्यचित्रकार के रूप में अपने बनाए हुए व्यंग्य चित्रों में बिना कुछ कहे ही बहुत कुछ कह जाते हैं, उसी प्रकार इस संग्रह की लघुकथाओं में भी वे बहुत कम शब्दों में अपनी पूरी बात कह देते हैं। लघुकथाओं को पढ़ते हुए हम विषय वैविध्य से होकर गुज़रते हैं तथा लेखक की सूक्ष्म दृष्टि से भी परिचित होते हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

कुछ तो कहो गांधारी

(उपन्यास)

समीक्षक : सुषमा मुनीन्द्र

लेखक : लोकेन्द्र सिंह कोट

प्रकाशक : कलमकार मंच, जयपुर

सुषमा मुनीन्द्र
जीवन विहार अपार्टमेन्ट, फ्लैट नं० 7,
द्वितीय तल, महेश्वरी स्वीट्स के पीछे, रीवा रोड, सतना (म.प्र.) 485001
मोबाइल– 826989595

कई कहानियाँ, कविताएँ, लघु कथाएँ, आलेख, व्यंग्य की रचना करने वाले डॉ.लोकेन्द्र सिंह कोट का 'कुछ तो कहो गांधारी' पहला उपन्यास है। गांधारी नाम सुनते ही महाभारत की गांधारी याद आती है जिसने दृष्टिहीन धृतराष्ट्र के साथ विवाह होने के विक्षोभ या विवशता या विद्रोह स्वरूप आँखों पर पट्टी बाँधने जैसा अमानवीय – अकल्पनीय प्रण कर लिया था। सम्भव है किन्हीं अवसरों पर पछताई हो पर प्रण न छोड़ा। घटित को प्रत्यक्ष: देखने में और मात्र सुनने में भेद होता है। इसीलिये गांधारी स्थिति को परखती रही पर जहाँ बोलना ज़रूरी था वहाँ भी नहीं बोल सकी या उस तरह नहीं बोल सकी जिस तरह बोलना ज़रूरी था। 'कुछ तो कहो गांधारी' में एक नहीं तीन गांधारी हैं जिनकी नियति महाभारत की गांधारी के आस-पास है। गांधारी – मध्यप्रदेश के मांडव से पच्चीस किलोमीटर दूर बहने वाली नदी है। गांधारी – ग्वालियर रियासत की हवेली में रहने वाले ठाकुरों के घर टहल करने वाले रामदीन की नवोढ़ा पत्नी है। गांधारी – हेरिटेज होटेल (हवेली को हेरिटेज होटेल में परिवर्तित कर दिया गया है) में आने वाली पर्यटक बच्ची है।

लोकेन्द्र सिंह ने सुविचारित भाव से गांधारी नाम का चयन किया है। नदी गांधारी अपने वजूद पर अत्यधिक ऊँचाई वाला बाँध बनते देख रही है लेकिन पौराणिक पात्र गांधारी की भाँति असहाय है। रामदीन की पत्नी गांधारी, युवा ठाकुर और उनके मित्रों द्वारा छल से किये गए बलात्कार से आहत है पर इसे टहल करने वालों की नियति मान लेती है। पर्यटक बच्ची गांधारी अनजाने में ठाकुर द्वारा आत्महत्या किए जाने का कारण बनती है। गांधारी नाम को लेखक ने अपनी तर्क शक्ति, कल्पना और समकालीन सच्चाई के सम्मिश्रण से पूर्णता दी है। नदी गांधारी पूरे उपन्यास में विद्यमान है जो इंगित करती है जल स्त्रोत और जल संरचनाओं को बचाना

कितना ज़रूरी है। अभावग्रस्त गांधारी अपनी जद्दोजहद, ज़रूरतों, जवाब देहियों, जहमतों से स्पष्ट करती है सर्वहारा वर्ग का जीवन कितना कठिन है। बच्ची गांधारी अनजाने में समझा देती है ग़लत आचरण की एक ग्लानि होती है जो आत्मघाती वृत्ति को उत्पन्न करती है। महाभारत की तरह उपन्यास में समय नैरेटर की भूमिका में है जिसकी नियति मूक दर्शक बने रहना है।

उपन्यास की पृष्ठिभूमि चूँकि पहाड़ी पर बसा मांडव है तो जंगल अपने रहस्य और विस्मय के साथ मौजूद है। पहाड़ी, नदी, हरे वृक्ष, चौमासा, रहस्यमय महल, हवेली, विहग, पगडंडियाँ, धान की सोंधी महक जैसी प्राकृतिक छटा उपन्यास के प्रभाव को बढ़ाती है।

संदीप केन्द्रीय पात्र है। कड़ियों के रूप में ठाकुर, रामदीन, गांधारी, गांधारी की पुत्री भवानी, भवानी का पति विजय आदि जुड़ते जाते हैं। मानव मन मस्तिष्क भी जंगल की तरह एक रहस्य है अत: मनुष्य के विचार, व्यवहार बदलते रहते हैं। बचपन में माता-पिता को खो कर मांडव में नाना-नानी के साथ रहने वाला संदीप बारहवीं का छात्र है। जंगल में बनी पगडंडियों से चार किलोमीटर दूर स्कूल जाता है। कन्या शाला की ग्यारहवीं में पढ़ने वाली छात्रा मदालसा भी उसी राह से स्कूल जाती है। दोनों में मित्रता हो जाती है। मदालसा को जंगल की सम्यक् जानकारी है। वह संदीप को जंगल के आंतरिक भाग में निर्मित प्राचीन भग्न महल में ले जाती है। एकांत का लाभ ले संदीप उसके साथ कुचेष्टा का उपक्रम करता है। रुष्ट मदालता सहसा अदृश्य हो जाती है। यह विवरण अस्वाभाविक लगता है लेकिन नहीं भी लगता है क्योंकि महल और खण्डहर से ऐसी फंतासी, किवंदंती जुड़ी रहती हैं। मदालसा के अदृश्य होने से संदीप को इतनी आत्मग्लानि होती है कि वह आगे का जीवन पूरी गम्भीरता, कर्तव्य पारायणता, नैतिकता के साथ बिताता है। आई.आई.एम. करता है, यू.एस.ए. में चार साल माइक्रोसॉफ़्ट में नौकरी करता है लेकिन नदी, गाँव, आदिवासी उसके अवचेतन में विद्यमान रहते हैं। उनके उत्थान के लिये वह गाँव लौटता है। स्थानीय एन.जी.ओ. शुभकामना जो गांधारी पर बनते बाँध का विरोध कर रहा है को ज्वॉइन करता है। जल्दी ही एन.जी.ओ. की धूर्तता समझ लेता है कि यह समाजसेवा का नहीं देश-विदेश से धन संग्रह कर अपने स्तर को ऊँचा उठाने की चाल है। वह कहता है "गांधारी पर बन रहे बाँध का मैंने विश्लेषण किया है। बाँध की ऊँचाई और लोगों के विस्थापन की समस्या है। कितने ही गाँव वाले आज भी अपना सही मुआवजा नहीं ले पाए हैं। उनका मूल दर्द अपनी जगह को छोड़ना है जिसे कोई नहीं समझ रहा है।" उत्तर में संस्था की सदस्य हेमा कहती है "इन मुद्दों को लेकर और भी एन.जी.ओ. इस क्षेत्र में काम कर रहे हैं।" संदीप शुभकामना से अलग होकर अपना संगठन 'समर्पण' बनाता है। बाँध की ऊँचाई कम करने के लिये ग्रामीणों के साथ जल सत्याग्रह करते हुए नदी में धरना देता है। गांधारी पर बन रहे बाँध और हवेली को हेरिटेज होटेल बनाये जाने के माध्यम से लेखक ने उस पूँजीवाद पर प्रहार किया है जो ज़मींदारी प्रथा का ही रूप है। ठाकुर की हवेली जो अब आठ हिस्सों में बँट चुकी है, सबसे बड़ी ज़मींदारी का मुख्य केन्द्र रही है। हवेलियों के अपने रहस्य, अहंकार, उपद्रव, दबाव, आर्तनाद, फुसफुसाहटें होती हैं। आठ भाइयों में एक मात्र जीवित सबसे छोटे, बायपोलर मानसिक बीमारी से पीड़ित वृद्ध ठाकुर हवेली में डोलते-टहलते हुये असमान्य व्यवहार करते हैं "गांधारी चीखती है, उसके साथ अन्याय हुआ है।" वस्तुत: युवावस्था में गांधारी के साथ किये गए बलात्कार की ग्लानि उन्हें मानसिक रूप से बीमार बना देती है। एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी हवेली को हेरिटेज होटेल के तहत ख़रीदने का प्रस्ताव देती है लेकिन हवेली के अपने हिस्से में अंतिम समय बिता रहे अस्वस्थ ठाकुर सहमत नहीं हैं जबकि उनके भतीजे मुँहमाँगे दाम पर हवेली को बेच कर शहर का रुख़ करते हैं। ठाकुर के रहने के लिये हवेली के तीन कमरों को व्यवस्थित कर उन्हें होटेल के संरक्षक पद पर नियुक्त कर दिया जाता है। होटेल में ठहरने वाले पर्यटक उन्हें देख कर रोमांचित होते हैं कि हवेली के असली मालिक को देख रहे हैं। प्रसन्नता–अप्रसन्नता से निस्पृह ठाकुर ग्लानि में जी रहे हैं। एक पर्यटक बच्ची का नाम गांधारी सुन उन्हें पुराना प्रसंग याद आता है और वे आत्महत्या कर लेते हैं।

संदीप और ठाकुर की तरह रामदीन, गांधारी, भवानी, विजय भी महत्त्वपूर्ण पात्र हैं जो संदीप के संगठन से जुड़ते हैं। संदीप की तरह विजय उस कंपनी की धूर्तता समझ लेता है जहाँ नौकरी कर रहा है। उसे समझाया जाता है "प्रतियोगिता के इस ज़माने में जितना कार्ईयापन, जितनी चालाकियाँ आप कर सकते हो करो, यही है आपका मूल धर्म ७१)।" पंक्तियाँ स्पष्ट करती हैं कार्य स्थल पर महिलाओं के मानसिक, शारीरिक शोषण जैसे उपक्रम होते हैं तो पुरुषों का भी मानसिक, व्यवहारिक शोषण होता है। सिद्धांतप्रिय विजय नौकरी छोड़ देता है।

लोकेन्द्र सिंह पात्रों के चरित्र चित्रण के साथ गाँव की पृष्ठभूमि में हो रहे बदलाओं को भी बताते चलते हैं कि हेरिटेज होटेल के कारण किस तरह यह गाँव और आस-पास के गाँव उन्नत हो गए। सड़क बन गई। शहरी आदत बन कर गाँव में घुस आया विकास गाँव के सीमित चाल-चलन को ख़त्म करने लगा। मायावी बाज़ार ब्रैण्डेड वस्तु का लोभ दिखा कर गाँव को बरगलाने लगा। तेली, खाती, लुहार, कुम्हार, मोची, बसोर गाँव में काम न मिलने से मज़दूर बन कर शहर जाने को विवश हुये। गाँव में हिंसा पनपने लगी। बात-बात में मुकदमे लड़े जाने लगे। संदीप जो गाँव के लिये मिसाल बन रहा था की हत्या हो जाना हिंसा की पराकाष्ठा है। उपन्यास में संदीप, विजय, ठाकुर, गांधारी की मृत्यु होती है। रह-रह कर प्रश्न उठता है ये पात्र न मरते तो शायद उपन्यास का सकारात्मक पक्ष अधिक मज़बूत होता।

बहरहाल यह डॉ. लोकेन्द्र सिंह का पहला प्रयास है जो उम्मीद देता है भविष्य में वे इससे अच्छे उपन्यास साहित्य जगत् को देंगे।

000

पुस्तक समीक्षा

यह पृथ्वी का प्रेमकाल

(संस्मरण)

समीक्षक : लक्ष्मीकांत मुकुल

लेखक : अरविंद श्रीवास्तव

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

लक्ष्मीकांत मुकुल
मैरा, पोस्ट - सैसड,
भाया - धनसोई, बक्सर,
बिहार– 802117
मोबाइल– 6202077236
ईमेल– kvimukul12111@gmail.com

समकालीन हिन्दी कविता के बहुचर्चित हस्ताक्षर अरविंद श्रीवास्तव के ताज़ा कविता संकलन "यह पृथ्वी का प्रेम काल" मनुष्यता, क्रियाशील जीवन की श्रेष्ठ भावना और अतीन्द्रिय प्रेम राग की मुक्कमल अभिव्यक्ति है। इनकी कविताएँ मानुषिक प्रेम की अवधारणा की उत्स बिंदुओं को समेटे सर्वस्व समर्पण बोध के अनूठे रसायनों से तृप्त हुई हैं, जिसमें प्रेम तत्व के विविध समीकरण अपने अनेक चटक रंगों में प्राप्त होते हैं। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि प्रेम की अंत: क्रिया में व्यक्ति अपनी शक्ति को पूरी तरह खो देता है और अपने आप को खोजने के बजाय अपने प्रिय के व्यक्तित्व में समो देता है। हमारा यह कवि इस एहसास की अतल गहराई में जाकर इसके मूल तत्वों की पड़ताल करता हुआ इसके सच की खोज करता है और उसे कविता के ताने-बाने में बुनकर प्रेम की अनसुलझी -अनदेखी यथार्थ रूपों और आभास को उद्घाटित करता है। कवि अरविंद श्रीवास्तव की कविताओं में व्यक्त प्रेम राग प्रकृति, परिवेश, मनुष्य के जीवन जगत के कार्य व्यापार और समकाल की जटिल सामाजिक संरचना में हाशिए की जा चुकी मनुष्यता की मूल बोध को भी उद्घाटित करता है।

कवि ने अपनी कविताओं में प्रेम तत्व के विविध पक्षों को अपनी स्मृतियों, एहसासों एवं अनुभवजन्य ज्ञानात्मक संवेदनाओं के आधार पर सृजित किया है, जैसे दुखद प्रेम, आदर्शकृत प्रेम, असंभव प्रेम, संवेदनशील प्रेम, सौहार्दपूर्ण प्रेम, पारस्परिक प्रेम, अत्याचारी प्रेम आदि। हर्ष और विषाद जीवन का अभिन्न अंग हैं। हर्ष के पल जीवन काल में बहुत कम आते हैं, परंतु दुख, पीड़ा और कष्ट तो मृत्युभुवन के लोगों के लिए अनिवार्य अनुभव के रुप में सम्मिलित हुआ है। पीड़ा का अनुभव कविता सृजन का मुख्य आधार सदियों से माना गया है। स्व पीड़ा हो या अन्य पुरुष से संबंधित पीड़ा। कवि उस अनुभूति को आत्मसात् कर कविता के विभिन्न उपादानों के सहारे शब्द चित्रों का निर्माण करता है। कभी वाल्मीकि द्वारा देखी गई घटना पर सृजित की गई क्रौंच वध की कविता दुखद अनुभव का ही एहसास कराती है। यह कविता परंपरा का उद्गम बिंदु है। आह के प्रथम गान से कविता के स्वर लहरियाँ प्रकट होने की अवधारणा अब तक चली आ रही है। दुख की अनुभूति का सफल काव्यांकन एक सजग कवि का सर्वथा मूल्यवान गुण होता है। अरविंद श्रीवास्तव अपनी कविता में कहते हैं- एक दिन अचानक / दरवाज़ा खोलते ही/ झमाझम बारिश से बचते / बरामदे पर खड़ा मिल जाएगा / वर्षों बिछुड़ा हमारा प्यार / और मैं चौंक उठूँगा / या किसी सफ़र में ट्रेन पर सामने बैठी / या फिर किसी भीड़ भरे बाज़ार में / आमने-सामने हम हों और एक साथ बोले पड़ें- अरे, तुम ! / इसी तरह मिलेंगे हम एक दिन अचानक / असंख्य स्मृतियों को सीने में दबाए / जैसे राख के अन्दर दबी होती है आग / फल के अन्दर बीज / और आम जन के सीने में / उम्मीद भरे सपने / इन्हीं सपनों में टटोलते हैं हम / अतीत के खूबसूरत लम्हे / भविष्य का खुशनुमा वर्तमान / और करते हैं एलियन के संग / अंतरिक्ष की सैर / अनगिनत ग्रहों से करते हैं संवाद / और तारों को चाहते टूटने से बचाना / हमारी चुनिंदा तैयारियाँ रहती है प्यार के लिए / गिलहरियाँ ख़बर रखती हैं प्रेम की / प्रेमियों का पता होता है कबूतर को / हमारी छटपटाहट तिलस्म को तलाशती है / हिरण को कस्तूरी मिलने-सा चमत्कार / हमारे पास होता है / अनकही बातों का संग्रहालय भर पुलिंदा / लबालब घड़ा / एक दिन अचानक / जब हम मिलेंगे प्रिय / तब चाहेंगे हम रोना / फूट-फूट कर !

आदर्शकृत प्रेम आभासी, पर सच्चा प्रेम होता है। इसका मायने है कि किसी की अस्तित्व को इस प्रकार टूट कर चाहने की अनुभूति कि उसके अस्तित्व में ही अपनी हर इच्छा, हर सपना, हर

रंग उभरता हुआ महसूस होने लगे। स्व को उसमें समाहित कर एक दूसरे में लीन ख़ुद को लीन कर देना और साथ-साथ बैठकर गुपचुप तरीके से एक दूजे को निहारना, उसकी आँखों में अपनी तस्वीरों को देखना तथा उसे शिद्दत से महसूस करना होता है। अरविंद जी की कविता में ऐसा आभास अनायास ही मिल जाता है- प्रेम में / कइयों ने ख़ून से ख़त लिखे / कइयों ने लिखी कविताएँ / मैंने मैदान में दौड़ाई साइकिल / लगाया चक्कर / कई-कई बार / हैंडिल छोड़ के !

असंभव प्रेम में सर्वस्व अर्पण की भावना नहीं होती है, इसमें प्रेमी अपने अधूरे मन से प्रेमिका को चाहता है और उसके स्व के अस्तित्व को अपने पास रखना चाहता है। इसे एकतरफ़ा प्रेम भी कह सकते हैं। इस प्रकार के प्रेम कार्य व्यवहार में प्रेमी या प्रेमिका एक दूसरे पर नियंत्रण की भावना रखते हैं और असफल हो जाने पर एक दूसरे को नष्ट करने या अपने ही जीवन को नष्ट करने की कुत्सित भावना के शिकार हो जाते हैं। कवि अरविंद श्रीवास्तव की कविताएँ ऐसे मनोभाव के प्रतिरोध में खड़ी होती हैं और प्रेम-पथ में मनुष्यता, सहकार और संवेदनात्मक पक्ष के मूल्यों को स्थापित करती हैं- रात / पिरहाना मछलियों-सी कुतरती रही तुम्हारी यादें / और दिन भर बदनाम कुर्सियों को सुनाता रहा मैं मुक्ति-गीत / एक गिटार ने मुझे जीने का गुर सिखाया / एक आत्मा जो दूर है मुझसे / उसे बार-बार आमंत्रित करती रही / मेरी लहूलुहान कविताएँ / उदास दिनों में एक बेहतरीन सपने सौंपना चाहता हूँ उस स्त्री को / जिसे पृथ्वी पर मेरे होने का अंतिम सबूत मान लिया जाएगा ! / यह मेरी एक कूटनीतिक विजय होगी / कि हम दोनों ऊँची चहारदीवारी लाँघ सकेंगे अब / कि शिकारी कुत्तों को खदेड़ देंगे हमारे सपने / कि यातनाएँ झेलनेवाला ही होगा / प्रेम करने में सबसे अव्वल !

संवेदनशील प्रेम एक अर्थ में विनम्र प्रेम है, जिसके आगे समाज, परंपराएँ, नैतिकताएँ, वर्जनाएँ सब लुप्त प्राय हो जाते हैं। इसमें प्रेमियों की उपस्थिति, उसका सहअस्तित्व असंभव प्यार को सफल बना देता है; जैसे रेतीले भूमि में उगी आक फूलों की झाड़ियाँ ....! अरविंद जी अपनी कविता के माध्यम से कहते है कि- ढेर सारी बातें हस्तांतरित परंपराएँ नहीं बन पातीं / जैसे कभी दरवाज़े पर लटकने वाली पत्र-मंजूषा / डाकिए से संदेशवाहकों तक का इंतज़ार करने वाला यह बक्सा / कभी प्रबुद्ध और संभ्रान्त परिवार का परिचय देता और जिसे खोलता घर का मालिक / कम से कम एक बार / बार-बार अपनी बेचैनी के हिसाब से / क्योंकि चिट्ठियाँ एस. एम. एस. नहीं थीं तब ! / समय से बिछुड़ी हुई चीज़ों में ठहाकों की वह दौड़ भी थम गई / जो पचास-सौ मीटर दूर पान की दुकान से रह रह कर उड़ती / विषय कुछ भी हो, हमें यह नागवार क्यों न गुज़रता हो / हँसने वाले हँसते थे समूह में, ठहाका मार कर / अबकी तरह नहीं कि देख लेगा कोई ! / ठीक इसी तरह मौसम ने धो डाला / झगड़ालू स्त्रियों की घंटों और कभी-कभी, कई-कई दिनों तक / झाँव-झाँव कर लड़ने की परम्पराएँ / हमारे यहाँ तिनटोलिया और पचटोलिया की वीरांगनाएँ कभी हाथ नचा-नचा कर / झगड़ने की कला में माहिर मानी जाती थीं / घर-घर टी. वी. पहुँचने से पहले ! / ये कुछ चीज़ें हठात् ही लुप्त नहीं हो रही हमारी ज़िंदगी से / ऐसी ढेर सारी परम्पराओं ने कोसों सफ़र तय किए / जैसे प्रेमियों में ख़ून से ख़त लिखे जाने के क़िस्से / जैसे कवियों के लंबे घुँघराले बाल / जैसे सन्नाटे में झींगुर।

परस्पर प्रेम हमारी आदिम परंपराओं की अविच्छिन्न धारा रहा है। प्राचीन काल की शुक सारिकाओं के द्वारा भेजे संदेशों या संकेत व्यवहार, प्रेम पत्रों और वर्तमान के मोबाइल पर प्रेमिल वार्ताओं में आज भी बदस्तूर जारी है। इस माध्यम से वे एक दूसरे के सन्निकट आने की कोशिश करते हैं। अरविंद जी की कविता में ऐसे प्रेमसूत्र इस प्रकार प्राप्त होते हैं- हम ब्रह्मांड से / भटके हुए दो ग्रह हैं / देखना एक दिन / हम मिलेंगे / इसी जीवन में / इसी पृथ्वी पर!

प्रेम जब मन की भावना पर टिका होता है, तो वह पवित्र अप्रतिम और सौंदर्य सुख से लबरेज होता है; परंतु जब उसके प्रति आकर्षण का मुख्य कारण वह दैहिक बिंदु पर सिमट आता है तो प्रेम का मूल तत्व नष्ट हो जाता है और इसका प्रतिगामी प्रभाव पड़ना शुरू हो जाता है। इसे ही छद्म प्रेम कहा गया है। यह निर्दयी, स्वार्थी और अत्याचारी लोगों द्वारा किया जाता है। कोमल स्वभाव के कवि अरविंद श्रीवास्तव अपनी कविता के माध्यम से ऐसे प्रतिकूल विचारों का निषेध करते हैं- मामूली आदमी हूँ / असमय मरूँगा / तंग गलियों में / संक्रमण से / सड़क पार करते हुए / वाहन से कुचल कर / या पुलिस लॉकअप में / माफ़ करना मुझे / अदा नहीं कर सकूँगा / मैं अपना पोस्टमार्टम

अरविंद श्रीवास्तव की कविताएँ प्रेम बोध के साथ-साथ मनुष्यता की गहन पड़ताल करती हैं। वे स्थानीय बोध में विश्व दृष्टि की समझ को अपने काव्य सूत्रों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। इनकी कविताएँ बदलते सामाजिक परिवेश, बिकाऊ बाज़ार में तब्दील होती जा रही हमारी दुनिया, ध्वंस होती जा रही लोकतांत्रिक व्यवस्थाएँ और हाशिए की ओर ढकेले जा रहे जन सरोकार आदि के पक्षों को बखूबी तरीके से व्यक्त करती हैं। कवि अपनी इन कविताओं के माध्यम से पूरी दुनिया में बंधुत्व, प्रेम और सद्भाव की भावनाएँ फैलाना चाहता है और कोशिश करता है कि लगातार असभ्य, बर्बर और भ्रष्ट होती जा रही इस दुनिया के निवासियों में मनुष्यता का भाव भरा रहे। अन्यथा वह समय दूर नहीं कि चेतन विहीन व्यक्तियों से पूरी दुनिया पट जाए। शरीर तो होगा परंतु रोबोट जैसा पंच तत्वों और पंच महाभावों से वंचित ! कवि का कहना है कि यह दौर प्रेम को बचाने का है ताकि यह पृथ्वी बच सके !!

अरविंद श्रीवास्तव की यह काव्य कृति जो, १०४ पृष्ठों में समाहित है, वह हिन्दी कविता की समकाल में धारदार काव्य संरचनाओं और बोध परक कविता ही कथनों से संपृक्त है, जो पाठकों के मन पर गहरी छाप छोड़ती है, जिसकी भाव - ध्वनियाँ लम्बे समय तक मन की कोने को बाँसुरी की मधुर धुन - सी झंकृत करती रहती हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

बनियों की विलायत

(उपन्यास)

समीक्षक : संदीप वर्मा

लेखक : राजा सिंह

प्रकाशक : डायमंड पाकेट बुक, नई दिल्ली

संदीप वर्मा
(उप संपादक-अमर उजाला)
एम-1285, सेक्टर-आई
एल.डी.ए..कालोनी
कानपुर रोड, लखनऊ-226012 उप्र

एक कथाकार जब जीवन की बहु विविधता से साक्षात्कार करता है तो उसके अनुभव इतने व्यापक हो जाते है कि उन अनुभवों को अपनी चेतना और संवेदना बनाकर अपनी सर्जनात्मक बेचैनी को जाहिर करता है। इसलिए कहानी हो या उपन्यास वह अपने आधुनिक कलेवर में मनुष्य संवेदी, अनुभव संवेदी और उसके रचने वाला लेखक कहानी के यथार्थ या सत्य को अपना पाठ बनाता है तो सत्य कल्पना के मिश्रण से हृदय एवं मन में अंकित हो जाता है। यथार्थ का ठोस अनुभव संवेदना में बदलकर रचना के शिल्प में एक प्रभावशाली अभिव्यक्ति होती है। यह अभिव्यक्ति रचनाकार के लिए कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, या किसी अन्य विधा में हो सकती है।

राजा सिंह वैसे कथाकार हैं, लेकिन 'बनियों की विलायत' उपन्यास के साथ प्रथम बार पाठक के सामने उपस्थिति हुए हैं। यह उपन्यास एक बड़े और विविधता भरे आकाश पर एक ऐसे समाज के साभयंतिक संकटों, संघर्षों, और समस्याओं से संवेदनशील और सामाजिक लोगों से सामना करवाता है जिसमें एक वर्ग विशेष के प्रभुत्व का संगोपांग वर्णन है। इस उपन्यास को सामाजिक अनुभवों की यथार्थ कथा कह सकते है।

'बनियों की विलायत' की कथा प्रवेश नामक एक युवक की कथा है, और उसका स्थान विशेष से एक अत्यंत मार्मिक अमानवीय नियति और चरित्र को अंतर्दृष्टि संयम और नाटकीय विडंबना से मुठभेड़ होना है। वह शहरी मध्यम वर्गीय संवेदनशील युवक अध्यापकीय जीवन में अनिच्छुक प्रवेश करता है। वह स्वप्नदर्शी महत्त्वाकांक्षी है जो समानता का पक्षधर है, क़स्बाई जीवन से जीवन संघर्ष प्रारंभ करता है। वह अपनी व्यक्ति- गति उन्नति के साथ एक सच्चे प्रेम की तलाश में है जो फलीभूत नहीं होती है। किथोरा क़स्बे में वह एक बेहद नए जीवन से साक्षात्कार करता है जहाँ वह शहरी और क़स्बाई ज़िंदगी की संस्कृतियों, दोनों के अंतर्विरोध, दो मानसिकताओं, दो महत्त्वाकांक्षाओं, दो-दो प्यार-प्रेम के बीच मँडराते अपने बेहतर विकल्प को तलाशने में असफल रहता है। इस गाथा में पात्रों की छोटी शृंखला होने के बावजूद जीवन दर्शन है, विडंबनाएँ हैं, संबंधों के तनाव हैं, उजड़ती समाजिकताएँ हैं, धार्मिक मान्यताएँ हैं और सबसे ऊपर वैश्य समाज की स्वार्थपरकताएँ है। और इन सबके बीच प्रवेश खोज रहा है अपनी उन्नति और प्यार के मामले में और देख रहा है समाज की प्रगति के भी धूल धूलधूसरित होते मामले।

उसे कुछ भी नहीं प्राप्त होता है सिर्फ निराशा के सिवा। उर्वशी और मेनका में अपने प्यार को खोज पाने की असफल कोशिश, परिणति और अपनी उन्नति के सोपान पर चढ़ते, उतरते, फिसलते, ढहते उसके अरमान। अंत में विकल्पहीनता की स्थिति में सब कुछ जैसा है वैसा स्वीकार कर लेने की जद्दोजहद। यहाँ जीवन का यथार्थ कमोवेश वैसा ही है जैसा शहरी जीवन की संस्कृति में होता है। इसमें सब कुछ वैसा ही है जैसा शहरी जीवन में सामान्य से सामान्य आदमी के जीवन में घटित होता। नायक भी सामान्य से असामान्य बन कर सामान्य-असामान्य के बीच संघर्ष करता है। प्रवेश, उर्वशी, मेनका सभी सामान्य भी है और असामान्य भी। असामान्य से वापस आने के बाद पुनः सामान्य होने का अप्रतिम उदाहरण भी।

इस उपन्यास की मुख्य विशेषता हमारे देश समाज में मौजूद व्यवस्थागत विसंगतियों और विद्रूपताओं का उद्घाटन। यह एक कथा ऐसी है जिसके प्रवाह का नियंत्रण दशा, दिशा और प्रभुत्व वैश्य समाज द्वारा परिचालित होती है। लेखक ने इसमें मौजूद विसंगतियों, जनविरोधी एवं संवेदनहीन स्थितियों का वर्णन और मूल्यांकन जिस भाषा और अनुभव के साथ लिखा है वह उपन्यास में जिज्ञासा जाग्रत करता है। यहाँ तक की प्यार भी पैसा की तराज़ू में तौल कर आँका जाता है। लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि हर चमकती चीज़ सोना नहीं होती और पीतल पर भी सोने का मुलम्मा लगाकर पेश किया जाता है। जीवनगत सामाजिक विकृतियों के बीच भी जीवन जीने की मजबूरियों के बीच कथानक रचा जा सकता है।

प्रवेश किथोरा की क़स्बाई जिंदगी इसलिए स्वीकार करता है कि यहाँ की शांत ज़िंदगी में वह अपनी प्रशासनिक सेवा में जाने की महत्त्वाकांक्षा पूरी कर सकेगा। परंतु पहले वह अपनी छात्रा उर्वशी के प्रेम में अभिषिक्त होता है, जो उसके सावधानी पूर्व, रक्षात्मक और डरपोक व्यक्तित्व से ऊब कर अपने मुस्लिम प्रेमी के साथ भाग जाती है और वहाँ से लौटने के बाद ब्याह रचकर किथोरा को हमेशा के लिए अलविदा कह देती है। फिर वह अपने दोस्त की बहन मेनका के छद्म प्यार का शिकार बनाता है। वह उसके कॅरियर के तराज़ू पर प्यार को तौलती है। वह दोनों जगह असफल सिद्ध होता है।

उपन्यास छोटे किसान, बड़े किसान, छोटे दुकानदार, बड़े दुकानदार वहाँ के लोगों के विषय में सम्यक जीवन प्रस्तुत कराता है। उपन्यास अपने छोटे आकार प्रकार के बावजूद बेहद आकर्षक एवं पढ़ने की चरम उत्सुकता की चरम परिणति के कारण एक बैठक में ही समाप्त करने की आतुरता जगाता है, और वह इसमें सफल भी है।

व्यापारियों द्वारा साधारण जन का कुटिलतापूर्वक शोषण इस तरह होता है कि उन्हें आभास होना मुश्किल है। चाहे गेहूँ ख़रीद-बिक्री हो या गन्ना किसानों का क्रुशर / मिल मालिकों द्वारा शोषण। बड़े किसान किसी तरह अपना वजूद बचाए रखने में सफल होते है परंतु छोटी जोत के किसान के लिए बरबादी के सिवाय कुछ नहीं है। सिर्फ ज़िन्दा रहने के कशमकश में ही जीवन यापन कर रहे हैं।

यहाँ की अधिकांश आबादी हिन्दू, मुस्लिम और सिख के बीच गहरी असमानता के बावजूद कुछ समय के लिए पसरे तनाव को, किसी प्रकार की व्यापारिक गतिविधियों में व्यवधान उपस्थिति नहीं होने देता है। उसका सबसे महत्त्वपूर्ण कारक होता है यहाँ का वैश्य समाज। जो सदैव अपने व्यापार को ज़्यादा महत्त्व देता है, बजाय अन्य उत्तेजक अभियानों के। लोगों की दृष्टि में यहाँ की आर्थिक समृद्धि ज़्यादा जरूरी है और वह गर्व का विषय है। यहाँ के वैश्य रईस हैं। अमीरी इसी वर्ग के पास सिमट कर रह गई है। अंग्रेज़ों के समय में आम बोल-चाल की भाषा में ब्रिटेन को विलायत कहा जाता था। विलायत जहाँ सब सुख विद्यमान हैं, मतलब स्वर्ग। यह जगह वैश्यों का स्वर्ग है, इसलिए किथोरा से इतर गाँव के लोग या अन्य वैश्य इसे हँसी, व्यंग्य या चिढ़ कर मतलब आम बोलचाल की भाषा में 'बनियों की विलायत' कहते हैं।

000

नई पुस्तक

फटा हलफ़नामा

(डॉ. राम प्रकाश की प्रतिनिधि कहानियाँ)

संपादक : डॉ. श्याम बाबू शर्मा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

कवि डॉ. रामप्रकाश की प्रतिनिधि कविताओं का यह संग्रह डॉ. श्याम बाबू शर्मा के संपादन में शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर अभी हाल में ही आया है। इस संग्रह में डॉ. राम प्रकाश की प्रतिनिधि कविताएँ संकलित की गई हैं। इस किताब के अपने संपादकीय में डॉ. श्याम बाबू शर्मा लिखते हैं- इस संकलन में गत सात दशकों के काल-खंड को रेज़ा-रेज़ा करती कविताएँ वक्त की आँच पर अरमानों-ख़्वाबों का अदहन हैं। रचनाओं में धर्म निरपेक्ष वर्णमाला का उन्नत वैभव है, जाति-मजहब से इतर इंसानियत के विकल्प हैं और मानवीयता के अनुसंधान के पूर्ण पवित्र प्रयास। यहाँ छटपटाहट है और इसकी परिणति अभिधा, लक्षणा, व्यंजना की मिसालें बनकर हमारे सामने आती हैं। रामप्रकाश के प्रकाशित सभी काव्य संकलनों से गुजरना जीवन की पूर्वदीप्ति है। इन स्मृतियों में घाव हैं और विटप में विचरने की बिवाइयाँ भी पर बिना रुके-थके कवि उन्हीं स्मृतियों से रास्ते तय करता है।

000

केंद्र में पुस्तक

रमेश दवे

हरिराम मीणा

गोविंद सेन

जसविन्दर कौर बिन्द्रा

दृश्य से अदृश्य का सफ़र

(उपन्यास)

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

रमेश दवे
एस.एच. 19, ब्लॉक-8, सहयाद्रि परिसर, भदभदा रोड, भोपाल (म.प्र.)
मोबाइल- 9406523071
ईमेल- rameshdave12@rediffmail.com

हरिराम मीणा
31, शिवशक्तिनगर, किंग्स रोड, अजमेर हाई-वे, जयपुर-302019, राजस्थान
मोबाइल- 9799556622
ईमेल- hrmbms@yahoo.co.in

गोविंद सेन
राधारमण कॉलोनी, मनावर-454446, जिला-धार, (म.प्र.)
मोबाइल- 9893010439
ईमेल- govindsen2011@gmail.com

डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा
आर-142, प्रथम तल, ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली- 110048
मोबाइल- 9868182835

दृश्य से अदृश्य का सफर : मानसिक तनावों की कृति

रमेश दवे

सुधा ओम ढींगरा का इसी वर्ष प्रकाशित उपन्यास 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' एक प्रवासी कथाकार की ऐसी कृति है जिसकी आधार-भूमि दृश्य और अदृश्य की मानसिक उद्वेलित-भूमि है। कथाकार के पास उसका एक परिचित परिवार होता है, विस्तृत समाज होता है, कल्पित कथा-शिल्प होता है और इन सबके बीच यथार्थ के अनेक अनुभव-आकार होते हैं। कथा कितनी भी सपाट या भौतिक हो, उसके अंदर उसका अदृश्य होता है। अन्तर-द्वंद्व होता है और ऐसा उद्वेलन भी होता है जो अदृश्य की वीभत्सता को दृश्य में बदल कर समाज, परिवार, रिश्तों, मित्रों सबको उनके संवेदनहीन संसार से उठाकर अनावृत कर देता है। सुधा ओम ढींगरा ने कोरोना-काल की भयावह स्थितियों के बीच जिन सत्यों का उद्घाटन इस भौतिक-यथार्थ की कथा के माध्यम से किया है, यह समकालीन जीवन की स्वार्थ-मंडित, अहंग्रस्त और विचार-शून्य मनस्थितियों की भयंकरता को खोलकर रख देती है।

यह उपन्यास पढ़ते हुए लगा कि सुधा जी अपने समय की त्रासद संवेदना से जुड़ी हैं। उपन्यास की विशेषताओं पर गौर करें तो कुछ तथ्य प्रत्यक्ष होते हैं। जैसे -

(१) उपन्यास में कथा-चयन समसामयिक है,

(२) उपन्यास की भाषा मिक्स-कोड यानी हिन्दी-अंग्रेज़ी का मित्रता है। अनेक कट्टर हिन्दीवादी आलोचक इस पर आपत्ति कर सकते हैं लेकिन भाषा विज्ञान का एक तथ्य यह भी है कि जब कोई स्पीच-कम्यूनिटी (भारत-भाषी-समुदाय) विदेशी शब्दावली का अपनी भाषा की तरह प्रयोग स्वीकार लेती है, तो वह नेटिव स्वीकार की शब्दावली बनकर स्वाभाविक हो जाती

है अर्थात् वह फिर विदेशी शब्दावली होकर भी अपनी मूल्य भाषा में समाहित होकर यहाँ हिन्दी ही हो जाती है। ऐसे अनेक शब्द हिन्दी में हैं भी। अत: हिन्दी शब्दावली की कट्टरता से सुधाजी के प्रयोग को संगत तो नहीं कहा जा सकता दोनों ही उपयुक्त हैं। जब कोई प्रवासी भारतीय साहित्य-सृजन करती है/ करता है तो उस पर दो-दो प्रभाव रहते हैं - एक तो अपनी मूल-भाषा का और दूसरा जिस देश में वह बसी है, वहाँ की भाषा और परिवेश का। इसे सुधा ने एक प्रकार से सर्जनात्मक प्रयोग की तरह कथ्य में पिरोया है।

(३) सुधा जी ने प्रचलित मेडिकल रजिस्टर से जुड़े शब्दों का प्रयोग किया है, जैसे सेनिटाइज़र, मास्क, आइसोलेशन, क्वारेण्टीन, वेक्सीन एवं वेक्सीनाइज़ेशन, इंफेक्शन, इम्यूनिटी आदि। कोरोना-काल में ये शब्द इतने प्रचलित हो गए कि अशिक्षित व्यक्ति भी इनका समझ के साथ प्रयोग करने लगे। इसे फ्रीक्वेन्सी ऑफ वर्ड्स के आधार पर लिंग्विस्टिक फेसीलिटी अर्थात् भाषिक सुविधा कहा जाता है यदि इनके हिन्दी रूपांतर या समकक्ष दिए जाते तो संभव था हिन्दी के शब्द अंग्रेज़ी से भी अधिक कठिन या दुरूह हो जाते और कथा में बाधा पैदा करते।

(४) सुधाजी ने जो चरित्र रचे हैं, उनमें मुख्य तो हैं रवि और लता और उनके पुत्र, पुत्री रविश और लतिका साथ ही अंकिता भी है। यहाँ यदि भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इन नामों पर विचार किया जाए तो 'र', 'ल' इन्हें खेमी-वावेल अर्थात् अर्द्ध-स्तर और अर्द्ध-व्यंजन माना गया है। स्वर की ध्वनि कोमल होती है और यदि बारीकी से देखा जाए तो डॉ. रवि और मनो-चिकित्सक लता दोनों स्वभाव से कोमल हैं। आकार में ये वर्ण व्यंजन लगते हैं लेकिन उनकी अन्तरध्वनि तो स्वर ही है। इसलिए ये नाम संवेदन की कोमलता के स्वर हैं जो डॉक्टर समुदाय के लिए उपयुक्त हैं। यह व्याख्यान भले ही फार-फेचेड या अति-अर्थात्मक लगे, मगर नाम का भी प्रभाव तो होता है।

(५) उपन्यास में पारिवारिक हिंसा हर एपिसोड में है चाहे वह गुरदीप सिंह या उसका परिवार हो या सायरा और उसका परिवार, एक स्त्री पारिवारिक देह-शोषण और क्रूर-यंत्रणा की शिकार कैसे है, यह तो बताया गया है, लेकिन यह उस देश और परिवेश में भी जो दुनिया का एक सम्पन्न-समृद्ध और सभ्य कहलाने वाला देश माना जाता है। यद्यपि डायल वृत पर पुलिस बुलाने पर पुलिस का व्यवहार मानवीय है, फिर भी पारिवारिक हिंसा पर तो पुलिस का भी नियंत्रण है ही नहीं। इस दृष्टि से केवल भारत को ही नहीं कोसा जा सकता बल्कि अमेरिका और कैनेडा जैसे देश भी स्त्री की गति, दुर्गति अपराध, गृह-हिंसा आदि में वैसी है जैसी असभ्य समाज में हो सकती है। यौन अपराध तो हर जगह समान ही हैं।

उपन्यास का मुख्य चरित्र तो मनोचिकित्सक डॉक्टर लता ही है। पति भी डॉक्टर है तो अवश्य, दोनों में अगाध प्रेम और आपसी समझ है, दोनों अपने पेशे और अपने पेशेंट्स के प्रति संवेदनशील और कर्त्तव्य निष्ठ हैं, दोनों अमेरिका जैसे दूरी-दूरी क़रीब लगते हैं जैसे दिल की क़रीबी के लिए भौतिक दूरी का कोई मतलब ही नहीं। रवि फेफड़ों की बीमारी या पलम्यूनरी इंफेक्शन के विशेषज्ञ होने से कोरोना में उनका रिटायरमेण्ट के बाद भी अस्पताल और मरीजों से जुड़ना यह बताता है कि डॉक्टर का अन्तरबोध और उसकी आत्मा हमेशा मरीज़ को मौत से बचाने में लगी रहती है। वैसे तो एक डॉक्टर कभी रिटायर नहीं होता, ऐसा इसलिए के वह डॉक्टर तो रहता ही है।

जहाँ तक डॉ. लता का प्रश्न है, वह मनोचिकित्सक ही नहीं स्वयं स्त्री-संवेदना की प्रतिमूर्त्ति है। सुधा जी ने यहाँ डॉ. लता के जीवन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष उजागर करते हुए लता में केवल डॉक्टर ही नहीं, एक अच्छी पाठक, एक अच्छी डायरी-कार या डायरी विधा में कहानी-लेखक का अत्यंत मार्मिक चरित्र उभारा है। एक वातावरण, एक ऐसा दृश्य जो प्रत्यक्ष में जीवनगत है और अदृश्य या अप्रत्यक्ष और विचारगत। एक डॉक्टर केवल व्यवसाय से डॉक्टर नहीं होती, वह मन और आत्मा से भी डॉक्टर ही होता है।

उपन्यास में डॉली, सायरा ये दो स्त्री-चरित्र रचकर सुधा ने भारतीय-समाज के दुर्दान्त पुरुषवादी उत्पीड़क चरित्र को उजागर किया है। डॉली की, जिससे चयन के द्वारा शादी होती है वह है गुरदीप सिंह हुड्डा। शादी के बाद से गुरदीप के तीन भाई अनवरत डॉली पर यौन हिंसा करते हैं, इतनी बताकर करते हैं, जिसमें भाइयों की माँ का उकसाना भी शामिल है। डॉली इस यौन हिंसा से उत्पीड़ित है, लगभग पागलपन की कगार पर है और ऐसे में डॉक्टर लता के पास उसका जाना यह बताता है कि वह हिंसा का प्रत्युत्तर हिंसा से न देकर, अपनी करुणा से देना चाहती है, अपने को हिंसक परिवार की क्रूरता से मुक्त कर एक बेहतर विकल्प से देना चाहती है। वह स्त्रीत्व के साहस की प्रतीक है। सुधाजी ने एक महत्वपूर्ण पक्ष और रचा है। डॉली को अमेरिका की प्रसिद्ध लोक-गायिका डॉली-पार्टन के रूप में देखकर डॉ. लता की संवेदना अधिक मर्मस्पर्शी हो जाती है। डॉली स्वयं भी डॉली पार्टन की तरह हरियाणवी गीतों की लोकगायिका है। डॉली का सौन्दर्य भी अप्रतिम है, लेकिन डॉली नाम से डॉली पार्टन का स्मरण एक प्रकार से सुधा का लोक के प्रति आकर्षण का भी प्रमाण है। (यहाँ थोड़ा विषयांतर करके यह स्पष्ट करना भले ही क्षेपक लगे, मगर आवश्यक है। अमेरिका में रेड इंडियंस के लगभग छ: सौ क़बीले थे, जिनकी अपनी भाषा और लोक गायन भी था। उनमें से लगभग चार सौ से अधिक लुप्त हो जाने, मार दिये जाने के बाद, अमेरिकी सरकार को जब होश आया तो कुछ क़बीले अपने लोक गायन के साथ बच गए। उन बचे हुए क़बीलों में से लोक-गायिका डॉली-पार्टन का उभरना, यह बताता है कि उपन्यासकार के पास लोक-संवेदना की भी भावभूमि है।)

कथा का एक भाग डॉली के ठीक होने, गुरदीप के माफ़ीमुक्त प्रायश्चित के साथ पूर्ण होता है। वह फॉक्स के साथ शादी कर लेती है क्योंकि वह एक नर्स रही है। वह फॉक्स उसके सौन्दर्य पर रीझ कर एक तलाकशुदा मर्माहित स्त्री से विवाह कर उसे विदेश में अच्छा जीवन देता है। इसी प्रकार सायरा जो नाम स्वयं

उपन्यासकार का दिया हुआ है, वह भी यौन-हिंसा की शिकार रही है और उसके शरीर के अंग-अंग को देखकर लगता है, मनुष्य के अन्दर का दैत्य किस क़दर क्रूर और अपराध वृत्ति से ग्रस्त है। समाज कितना भी सभ्य हो, यदि वह हिंसा और विशेषकर स्त्री-हिंसा या गृह-हिंसा से ग्रस्त है तो यह उसके असभ्य और अमानवीय होने का प्रमाण है।

सुधा ने कहानी के शिल्प में नवाचार या प्रयोग किया है, कॉफी, डायरी और बालकनी ये तीन कथाकार के विशेष लेखकीय-गुण को भी प्रकट करते हैं। बालकनी में वह काफी पीती तो अवश्य है मगर पक्षियों, गिलहरियों आदि को दाना-पानी देकर वह अपने प्रकृति-प्रेम का परिचय भी देती है और डायरी पढ़ना, उसमें कहानी रचना यह एक लेखक की कल्पनाशील सर्जना है।

वैसे तो एक छोटे उपन्यास के कथानक के अन्दर यदि बड़ी संभावनाएँ हैं, बड़े विकराल तथ्य हैं, तो मानवीय मर्म और करूणा के तत्व भी हैं। दृश्य का अदृश्य और अदृश्य का दृश्य रचने में एक प्रकार का ऐसा दर्शन है, जो मनुष्य में निहित सत्य को भी प्रकट करता है। सुधा ने कोरोना के माध्यम से वर्षवार युद्धों और महामारियों की स्मृति का संदर्भ देकर यह भी सिद्ध किया है कि मनुष्य के संकल्प ने एवं विज्ञान और आविष्कार ने पराजित तो महामारी को ही किया है, और स्वयं मनुष्य के अस्तित्व की रक्षा की।

सुधा ओम की विशेषता यह है कि समय की हक़ीक़तों को स्वीकारने के बजाय, उनसे टकराने के साहस की भी रचना करती हैं। परिवारों में तरह-तरह से स्त्रियों पर हिंसा होती है और इस हिंसा में अक्सर पत्नियाँ ही शिकार होती हैं। यह तथ्य भी है और सत्य भी। सुधा वैसे तो कोरोना-कथा को आधार बनाती हैं, लेकिन जब वे स्त्री-हिंसा के संवेदन से जुड़ती हैं, तो कोरोना अदृश्य हो जाता है और दृश्य में हिंसा उभर आती है। महामारियाँ संक्रमण या आक्रमण बन कर आती हैं, जिनके पीछे मानवीय मस्तिष्क में पलती हिंसक वृत्ति ही होती है जो कभी हथियारों से युद्ध में बदल जाती है तो कभी कोरोना जैसे जीवाणु-युद्ध में। महत्त्वाकांक्षाएँ अक्सर ही तानाशाही से ग्रस्त होकर कभी साम्राज्यवादी लालच पैदा करती हैं तो कभी वर्ग-संघर्ष। यह तो नहीं कहा जा सकता कि सुधा वर्ग-संघर्ष का मार्क्सवादी संस्करण अपनाती हैं, मगर इतना अवश्य है कि कई बार वे इन विद्रूपताओं, विसंगतियों और विडम्बनाओं को जिस संवेदन से रचती हैं वे सार्वभौम वाक्य बन जाते हैं।

पूरे विश्व की हवाओं में अदृश्य-शक्ति लहरा रही है जो मानव जाति के तन, मन और मस्तिष्क को उत्तेजित कर रही है। ..... आदि काल से ही अदृश्य शक्तियाँ मानव जाति के लिए चुनौती रही हैं।

- सवालिया नज़रों की शिकार सिर्फ लड़की होती है, पुरुष नहीं।

- मेरे घर में झूठ ही परोसा गया था। (गुरदीप)

- इतिहास गवाह है समय-समय पर नकारात्मक ऊर्जाएँ अपना सिर उठाती रहती हैं..... और वे सकारात्मक ऊर्जाओं को नष्ट करने की कोशिश भी करती हैं।.... युद्ध कैसा भी हो नेगेटिव एनर्जी को जेनरेट करता है।

- शस्त्रों से लड़ी जाने वाली लड़ाई हो या बायोलॉजिकल युद्ध, मरते तो मनुष्य ही हैं।

- पूरा विश्व दो ही शक्तियों पर टिका है - सकारात्मक और नकारात्मक। दोनों ही मनुष्य के अंदर समाई हैं। सकारात्मक ऊर्जा ही उस अंतिम सत्य की ओर लेकर जाती है जिसे कुछ लोग बाहर से भीतर खोजते हैं कुछ उसे भीतर से बाहर तलाशते हैं।

ऐसे अनेक वाक्य उपन्यास में फैले हुए हैं जो मनुष्य के स्वभाव और मनोविज्ञान के परिचायक हैं। उपन्यास में प्राय: चरित्र-कथा तो रची ही जाती है और एक या दो चरित्रों के आसपास कथा की बुनावट की जाती है। इस उपन्यास में यदि दृश्य पात्र डॉली, डॉ. लता, डॉ. रवि, गुरदीप हुडडा, जेठ, देवर आदि रिश्ते के चरित्र भी हैं। संयुक्त परिवार है, तो संयुक्त बलात्कार और अपराध भी हैं; नकारात्मक मनोविज्ञान-ग्रस्त मरीज़ हैं तो सकारात्मक कांड विलर भी; पशु-पक्षी, पेड़ पौधे हैं तो प्रकृति और मनुष्य के संबंधों से जुड़ी संस्कृति भी; पंजाब के उत्तरी परिवार हैं तो दक्षिण का तेलुगू परिवार भी; लेकिन सुधा ने एक तथ्य बड़ी बारीकी से उकेरा है कि उत्तर हो या दक्षिण, मनुष्य की प्रकृति या प्रवृत्ति में जो स्त्री-विरोधी तत्व हैं वे समान हैं, अत्याचार समान हैं, अपराध समान हैं। सरकारें भारत की हों या सरकारें किसी दूसरे देश की, वो नकली संवेदन तो प्रकट करती हैं मगर वास्तव में उदासीन हो जाती हैं। नागरिक की मौत नौकरशाहों और सत्ता-स्वामियों के लिए आँकड़े तो होते हैं; लेकिन आत्मा के सत्य नहीं।

सुधा जी ने इस उपन्यास को शुरू तो किया कोरोना-कथा से और अंत भी कोरोना-कथा से किया लेकिन बीच-बीच में जो पारिवारिक, तरह-तरह की यंत्रणा, मनुष्य की अपराध वृत्ति, स्त्री-उत्पीड़न आदि के तत्व डाले गए वे कोरोना कथा को भटका कर कोरोना के मर्म को भी भटका देते हैं। अदृश्य शब्दों का इस्तेमाल प्रारंभ में कुछ अधिक ही है जबकि 'अदृश्य' एक शक्ति तो है लेकिन अदृश्य का दृश्य अस्तित्व भी कम शक्ति नहीं होता। गुरदीप हुड्डा का डाली की सेवा शैया के पास प्रायश्चित और क्षोभ ठीक तो है मगर यदि सुधा जी गुरदीप का विद्रोह जेठ, देवर, सास आदि के प्रति बताकर कथा में एक पति की सार्थक और साहसी भूमिका चित्रित कर देतीं, तो प्रायश्चित भी सार्थक हो सकता था। मगर यह सुधाजी के मन की कोमलता ही है कि वे विद्रोह अगर बतातीं, तो हिंसा की संभावना बढ़ सकती थी। इसलिए क्षमा के साथ शाप प्रायश्चित लेखक का अपना मानसिक व्यवहार है। डॉली का माइकल फॉक्स से विवाह कर विदेश जाकर सुखद जीवन जीना, कहानी में एक प्रकार का कामिक रिलीफ़ तो पैदा करता है, लेकिन कभी-कभी आक्रोश, विद्रोह, विरोध भी कामिक न सही ट्रेजिक रिलीफ़ तो बन ही जाते हैं। उपन्यास में क्षमता और प्रायश्चित एक प्रकार से ट्रेजी-कामिक का मिश्रित रिलीफ़ है।

उपन्यास अनेक प्रकार से पढ़ा जा सकता है। तत्काल के परिवेश के साथ, प्रकृति के साथ, परिवारों के जीवन के साथ, रोग और रोगों के वर्षवार इतिहास और मानवीय जीवन

की क्षति के साथ, अपराधों के मनोविज्ञान के साथ, डॉक्टर्ज़ के कर्त्तव्यनिष्ठ संवेदन के साथ, मनोविज्ञान के व्यवहार के साथ और महामारी में मानवीय स्वभाव के प्रसार के साथ।

सुधाजी ने एक कथा को तथ्यात्मक विवरणों से रचा तो है मगर उनके भाषा ज्ञान ने अंग्रेज़ी शब्दों को अधिक ही कथा में पिरो दिया है जो संभवतया उनके विदेशी परिवेश का परिणाम हो। सकारात्मक-नकारात्मक, दृश्य-अदृश्य इनकी बार-बार आवृत्ति भी लेखक की चेतना का ही परिणाम है। बावजूद इसके अनके एपिसोड्स या कथा-संक्षेपों में रचा गया यह उपन्यास मानवीय-संवेदन का तथ्य और पीड़ा के साथ अच्छा प्रस्तुतीकरण है।

उपन्यास हो या कहानी जब मर्म केन्द्र में होता है, तो कथा का संवेदन-तत्व गहन हो जाता है। इस उपन्यास में लेखक की संवेदना तो है, लेकिन वह केवल डॉक्टर एवं मनोचिकित्सक तक सिमट कर रह जाती है। उपन्यास में भाषा का मिक्स्ड-कोड है, मगर अंग्रेज़ी शब्दों का उपयोग प्रारंभ में कुछ ज़्यादा हो गया है। एक दो वाक्यों में पंजाबी भाषा का भी हस्तक्षेप है। जिसे भाषा-विज्ञान में मदर टंग पुल कहा जाता है। एक तथ्य और भी उजागर किया जा सकता था कि डॉली हो या सायरा, उन पर जो यौनिक अत्याचार हुए वे बताते हैं, ऐसा होना कोई नई बात नहीं क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि हरियाणा के किसी क्षेत्र में बहु-पति प्रथा की बात भी प्रचलित है। ख़ैर इस तत्व को अपराध या बलात्कार के ज़रिए बताकर सुधा ने एक अदृश्य तथ्य को प्रकाटांतर से दृश्य भी किया है। लेखिका ने शिल्प के स्तर पर थोड़ा सामान्य से विचलन कर कथा का एक डायरी-संस्करण रचा है जिसे वह डायरी-कथा के रूप में पढ़ती है। बालकनी डॉ. लता की स्वाभाविक वृत्ति या पैशन है क्योंकि खुली हवा धूप में अपने मित्र पक्षियों, गिलहरियों का दाना देना, उन्हें निहारना उसके आनंद का मनोविज्ञान है।

कहने, लिखने को तो बहुत कुछ हो सकता है लेकिन कथा में जो तथ्यात्मक प्रवाह है, सूचनाएँ या जानकारियाँ है, मानवीय और चिकित्सा से जुड़े मानवीय आचरण हैं, इन सबको देखते हुए सुधा ओम का यह उपन्यास हमारी समय-कथा है जिसकी अनुगूँज भारत से अमेरिका या अमेरिका से भारत तक व्याप्त है।

000

सकारात्मक शक्तियों की प्रतीति

हरिराम मीणा

कोरोना की वैश्विक महामारी के इस दौर में कोई भी अच्छी किताब आपके तनाव को कम करने में सहायक हो सकती है। ऐसे ही इन दिनों एक उपन्यास को पढ़ने का अवसर मुझे मिला। इसका शीर्षक 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' है। उपन्यास के केंद्र में वैश्विक महामारी कोरोना के साथ तीन स्त्रियों की त्रासद कथाएँ गुँथी हुई हैं। महामारी और नारी उत्पीड़न से उत्पन्न मानव मनोदशा के साथ प्रकृति एवं मानवेतर जीव-जंतुओं के व्यवहार की गहराई इस उपन्यास में पढ़ने को मिलती है।

अंतिम अध्याय के एक वाक्य से पुस्तक पर चर्चा आरंभ की जा सकती है-'पूरा विश्व दो ही शक्तियों पर टिका है, सकारात्मक और नकारात्मक।' (पृष्ठ-१५०) मुझे श्री अरबिंदो का यह कथन याद आ रहा है। 'हमारा वास्तविक शत्रु कोई बाहरी शक्ति नहीं है।' जिस वास्तविक शत्रु की बात यहाँ की गई है, वह मनुष्य की नकारात्मक सोच है। वह 'अदृश्य ताक़त' जो अजेय बनकर उभर रही है, मानव की पहुँच से बाहर है, जिसे न खोजा जा पा रहा है, न वह पकड़ में आ रही है और न ही उसे मिटाने कोई तरकीब सूझ रही है।' (पृष्ठ-१३) इस अदृश्य नकारात्मक शक्ति को नियंत्रित करने के लिए 'जिस 'अदृश्य' को पाने के लिए मानव भटकता है, वह पॉज़िटिव एनर्जी है।' (पृष्ठ-वही) डॉ.रवि भार्गव और उसकी पत्नी डॉ.लता के बीच चलने वाले वार्तालाप से उभरने वाला यह सिद्धांत बार-बार इस कृति में आता है। अदृश्य नकारात्मक ताक़त के रूप में कोविड-१९ महामारी ने दशों दिशाओं में हड़कंप मचा रखा है। जो आदमी इसकी चपेट में आया, उसका परेशान होना समझ में आता है। जो इससे बचा हुआ है, वह भी मानसिक तनाव से ग्रसित है। घर की चारदीवारी में बंद रहने की पीड़ा सबसे अधिक दुखदायी है।

मनुष्य होमो सेपियन से होमो डेयस (मानव-देव) बनने अर्थात् अमरता के लिए प्रयासरत है। वैज्ञानिक बुद्धिवादियों का कहना है कि 'सन् २०५० तक कुछ मनुष्य अ-नश्वर (imortal) अवश्य बन जाएँगे। अमरता (immortality) की राह में तो किसी जानलेवा आघात का अड़ंगा लगा रहेगा। वैसे भी अमरता की अवधारणा सृष्टि के नियमों के विपरीत है। पृथ्वी के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो सृष्टि के प्रमुख तीन तत्वों में मनुष्य सहित प्रकृति तत्व और मानवेतर प्राणी आते हैं, इनका सह-अस्तित्व व सामंजस्य ही परिस्थितिकीय संतुलन को बनाए रखता है। अपने भौतिक उत्थान के लिए मनुष्य ने इसके साथ छेड़खानी की है। डॉ. लता का यह कथन इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है-'रवि, चिंता स्वाभाविक है। मेरे देखते-देखते चाँद और तारों भरे आकाश को कैसे अँधेरा निगल गया। अमावस्या की रात हो गई।' (पृष्ठ-२४) इस बात का समर्थन एक अन्य प्रसंग में डॉ.रवि करता है-'डॉ.साहिबा, प्रकृति का शोषण भी जी भर कर किया गया है। अब वह भी तो अपना रूप दिखाएगी। जनसँख्या बढ़ी, लोग फैलने लगे। अपने घर बनाने के लिए पंछियों और जानवरों से उनके घर छीन लिए। विकास के नाम पर वृक्ष, जंगल काट डाले। पृथ्वी का संतुलन बिगड़ गया है। पर्यावरण की ओर ध्यान देने का किसी के पास समय नहीं।' (पृष्ठ-३३) प्रकृति को भले ही सृष्टि का निर्जीव तत्व कह दिया जाए, किंतु वह चैतन्य है। इंसान की ग़लत करतूतों के खिलाफ़ वह भी लामबंद होती है। तभी 'क़ुदरत अकस्मात् वार करती है।' (वही) मनुष्य के द्वारा अपनी 'भागमभाग में प्रकृति को बेइंतिहा कष्ट पहुँचाया गया है।' (पृष्ठ-१०१)

यह दंपति संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिणी भाग में निवास करता है। कोरोना काल में भार्गव दंपति ने युद्ध स्तर पर मानवता के

लिए अपनी भूमिका निभाई। दोनों ने रिटायर हो जाने के बाद भी अपने आप को महामारी के खिलाफ़ मोर्चे पर खड़ा कर दिया था। न्यूयार्क व कैलिफ़ोर्निया सर्वाधिक प्रभावित हुए। डॉ. रवि को न्यूयार्क जाना पड़ा। कथा के अंतिम सोपान तक वह वहीं रह कर तब तक अपनी सेवा देता है, जब तक कि स्वयं कोविड पॉज़िटिव नहीं हो जाता। बेटा रविश और बेटी लतिका कैलिफ़ोर्निया में है। रविश एवं उसकी पत्नी अंकिता भी चिकित्सक हैं। वे भी कोरोना योद्धा की हैसियत से लड़ रहे हैं। उन्हें लेकर लतिका बेहद परेशान है। डॉ. लता फ़ोन पर उसे समझाती है-'बेटी, चिंता तो मुझे भी है, पर जैसे बॉर्डर पर लड़ने वाले सैनिकों की पत्नियाँ और माएँ उनकी सलामती की दुआएँ माँगती रहती हैं वैसे ही मैं कारोना वॉरियर्स के लिए माँगती रहती हूँ। सैनिक सीमाओं पर लड़ते हैं और डॉक्टर, नर्सें, और दूसरे कर्मचारी अस्पतालों में। सैनिक देश के दुश्मनों से और डॉक्टर शरीर के दुश्मनों से। हैं दोनों ही योद्धा।' (पृष्ठ-१०१)

इस पुस्तक में कोरोना काल में मानव समाज के भीतर फैलती जा रही असामान्य मनोदशा, घरेलू हिंसा और दाम्पत्य जीवन में होने वाली टूटन को भी पर्याप्त स्थान दिया गया है, जिसके बिना कोरोना महामारी की विभीषिका सामने नहीं आ सकती। पति-पत्नी के मध्य फ़ोन के माध्यम से चले वार्तालाप के दौरान डॉ. लता कहती है-'हम सोचते हैं लॉक डाउन में परिवार क़रीब आ गए हैं। जीवन की भागदौड़ और सोशल मीडिया की बदौलत परिवारों में संवाद कम हो गया था, एक घर में ही सब अलग-अलग जीवन जी रहे थे। साथ रहने से वह बढ़ गया है।' (पृष्ठ-११२-११३) मनो-विचलन से निबटने के लिए वह लोगों की काउंसलिंग करती है। उसने अपना अनुभव बाँटते हुए कहा-'दो महीने की नई काउंसलिंग ने एक और पक्ष भी उजागर किया है। विवाहोपरांत प्रेम का नशा उतर जाने पर कई जोड़ों को एहसास हुआ कि वे एक दूसरे के लिए कम्पेटिबल (अनुकूल) नहीं। पर तब तक बच्चे उनके जीवन में आ चुके थे। बच्चों की ख़ातिर वे जुड़े रहे...जीवन के संघर्ष में उनके संबंध बस बच्चों तक ही सिमट कर रह गए। आपसी संवाद तो बहुत कम हो गया था। ऐसे जोड़ों की प्रथम प्राथमिकता बच्चे हो गए थे। अब जब कई महीने इकट्ठा रहना पड़ा, तो एक दूसरे को सहना दुश्वार हो गया। कई घरों में लड़ाई-झगड़े हो रहे हैं, कइयों में मारपीट तक की नौबत आ गई। बहुत से परिवारों में तलाक़ हो रहे हैं। यह सिर्फ़ अमरीका की बात नहीं, मैंने पूरे विश्व के आँकड़े देखे हैं।' (पृष्ठ-११३)

कोरोना से भिन्न दशा में भी जीवन में तनाव है। इस तनाव के केंद्र में स्त्री रही है। इस कृति में कथाकार ने नारी की त्रासदी को अपनी डायरी में दर्ज विवरण के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

'जब तक तुम अपनी तरफ़ की कहानी नहीं बताओगी, वह ऐसा करता रहेगा। तुम कटघरे में खड़ी रहोगी। सदियों से आदमी यही करता आया है। औरत उसके पाप ढकती और वह सच्चा, साफ़, सुथरा होकर निकल जाता है। कटघरे में औरत खुद ही आ जाती है। तुम भी वही कर रही हो।' (पृष्ठ-५१) डॉली के ऊपर ससुराल में असहनीय अत्याचार किये गए। यहाँ तक कि उसके जेठ व दो देवरों ने उसके साथ दुष्कर्म किया। उसके शरीर पर गंभीर चोटें आईं। इस सब के बावजूद उसी लड़की के ऊपर चरित्र पर लांछन लगाते हुए उसे हर तरह से बदनाम करने का षड्यंत्र रचा जाता रहा।

'एक लड़की के स्वाभिमान को तोड़ने और पुरुष सत्ता की ताक़त दिखाने वाले अहम् द्वारा रची गई साज़िश है, जिसमें डॉली के पति मिस्टर हुड्डा का भी योगदान है।' (पृष्ठ-६३) डॉली के पति का पूरा नाम गुरदीप हुड्डा है। डॉली पार्टन अमरीका की प्रसिद्ध लोकगायिका रही है। इस कृति में इसी नाम की यह पात्र हरियाणा की लोक गायिका है। कायिक सौंदर्य और गायन कौशल दोनों की समानता है। इस समानता को लेखिका ने रेखांकित किया है।

डॉली प्रतिभा की धनी थी। उसने लगातार संघर्ष किया। कॅरियर बनाया। अमेरिका के रैक्स हॉस्पिटल में नर्स बन गई। वहीं उसकी दोस्ती हार्ट स्पेशलिस्ट डॉ. माइकल फॉक्स से हो गई। दोनों ने शादी कर ली। डॉ. लता के शब्दों में-'सच में डॉली अनोखी युवती है। दृश्य में अप्रतिम सौंदर्य की मलिका और भीतर अदृश्य सकारात्मक शक्तियों से भरपूर रूपसी। उन्हीं शक्तियों के बल पर वह फिर से खड़ी हुई।' (पृष्ठ-६९) अध्याय ५, ६ एवं ७ में कथा के इस पात्र के जीवन की त्रासदी का प्रभावशाली चित्रण किया गया है।

सायरा दिल्ली यूनिवर्सिटी की पढ़ी हुई युवती है। उसके माँ व पिता भी वहाँ प्रोफ़ेसर थे। माँ-बाप की लाडली वह होनहार व सुंदर छात्रा अपनी ही सहेली और एक लड़के के षड्यंत्र की शिकार होती है। संयोग से उसका चेहरा सुरक्षित बच जाता है। सायरा इन दोनों की दोस्ती के झाँसे में आ जाती है। तेज़ाब छिड़क कर उसकी काया को विकृत कर दिया जाता है। लड़के का पिता दिल्ली का असरदार राजनेता है। अपने प्रभाव एवं चालाकी का इस्तेमाल करते हुए लड़की को उसके माँ-बाप के साथ इलाज के लिए अमेरिका भिजवा देता है। लड़की के भीतर सकारात्मक ऊर्जा थी। उसके चलते इलाज के दौरान वह अपनी पीएॅच.डी. पूरी कर लेती है। तन की दुर्दशा तो थोड़ा बहुत ठीक हो जाती है, लेकिन मन का संतुलन बिगड़ जाता है। सायरा का इलाज डॉ. लता करती है। सायरा की इच्छा शक्ति से प्रभावित होकर वह कहती है-'यह तो बहुत गर्व की बात है कि तुमने अपना इलाज कराते हुए अपनी पीएॅच.डी. पूरी की। तुम सचमुच में एक बहादुर लड़की हो। इतनी नकारात्मकता के बीच भी तुमने अपने आप को सकारात्मक रखा और अपनी पढ़ाई पूरी की।' (पृष्ठ-९०) बेहतर जीवन की खोज करती हुई सायरा को एक दवा कंपनी में रिसर्च स्पेशलिस्ट की नौकरी मिल गई।' सायरा सचमुच ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा वाली लड़की है, उसने बहुत जल्द ही यथार्थ को स्वीकार कर अपनी सकारात्मक ऊर्जा को जाग्रत कर लिया।' (पृष्ठ-९२) सायरा की बोलती बेनूर ख़ाली आँखें आख़िर में ख़ूबसूरती से भर जाती हैं। वक्त भी कई दफ़ा इंसान की क़िस्मत को बनाता व बिगाड़ता है। सायरा के संग सकारात्मक

शक्ति का साथ था। उसे बर्बाद करने वाले लोगों के भीतर बुराई थी। उसकी काया को कुरूप करने वाला लड़का और उसकी सहयोगी की शादी हो जाती है। राजनेता मंत्री बन जाता है। यह परिवार किसी शादी समारोह से लौट रहा था। उनकी कार दुर्घटनाग्रस्त हो जाती है। मंत्री की पत्नी व पोते की मौत हो जाती है। शेष सदस्य शारीरिक दृष्टि से बुरी तरह विकलांग हो जाते हैं। सायरा के शब्दों में-'ईश्वर की लाठी बेज़ुबान होती है, पर पड़ती बड़ी ज़ोर से है।' (पृष्ठ-९४)

तीसरा त्रासद पात्र रानी या दासी का है। तथाकथित 'बड़े' परिवारों के पुरुषों द्वारा स्त्री को नुमायशी जीव बनाकर रखते हुए उसकी असल पहचान मिटा दी जाती है, इस व्यथा का चित्रण इस खंड में हुआ है। इस चरित्र की कहानी इसी की ज़बानी कुछ यूँ है-'जिस पुरुष को पसंद नहीं करती थी, उसी से तीन बेटियाँ पैदा कीं। मेरे भीतर की औरत तक मर चुकी थी। सोचती हूँ, भारत में कितने जोड़े हमारी तरह जीवन बिताते होंगे! कितनी लड़कियों की इच्छाएँ समाज में अपने माँ-बाप की आन, बान और शान की रक्षा में मिट जाती होंगी। क्रूर पतियों के हाथों कितनों के जीवन बलि चढ़ जाते होंगे। मैं पढ़ी-लिखी कुछ नहीं कर पाई तो अनपढ़ों की हालत क्या होती होगी, मैं अच्छी तरह दिल की गहराइयों से समझती हूँ।' (पृष्ठ-१३७) इस दुखियारी के विरुद्ध उसकी संतान को भी बहका दिया गया था। डॉ. लता द्वारा की गई काउंसलिंग और अपने भीतर की सकारात्मक दृष्टि, श्रम व संघर्ष के आधार पर उसने अपना महाभारत अंततः जीत लिया। वह स्टैटिक इंडस्ट्रीज़ और स्ट्रैटिक सॉफ़्टवेयर कंपनी की मालिक बन गई।

दो अन्य स्त्रियाँ हैं, जिनकी मनोदशा की पृष्ठभूमि कथा में अभिव्यक्त इसलिए नहीं हो सकी कि उनकी कहानी डॉ. लता की डायरी में स्थान नहीं पा सकी। इनमें एक है एमरली, जिससे डॉ. लता व उसके पति की मुठभेड़ शॉपिंग सेंटर में होती है। प्रतिभा सिंह नाम की एक और महिला है, जिसका कभी डॉ. लता ने इलाज किया था। जब तक ये दोनों मनोरोगी डॉ. लता से काउंसलिंग के लिए संपर्क करती हैं, तब तक लता रिटायर हो चुकी होती है। इसलिए उन दोनों को वह सुजाता ज़रीवाला नामक दूसरी मनोविज्ञानी के यहाँ रिकमेंड कर देती है। 'एमरली और प्रतिभा सिंह के चेहरे डॉ. लता ने बहुत याद करने की कोशिश की, पर याद नहीं आए। शायद एमरली और प्रतिभा सिंह के केस इन डायरियों में बंद नहीं, तभी याद नहीं आ रहे।' (पृष्ठ-४०) फिर ये दोनों महिलाएँ डॉ.लता के ज़ेहन में आती रहती हैं, लेकिन नाम के अलावा उनकी कहानी ग़ायब! लता के ही शब्दों में-'...और फिर अपनी दूसरी डायरियाँ देखने बैठ गई। शायद किसी और डायरी में एमरली और प्रतिभा सिंह मिल जाएँ।' (पृष्ठ-१५१)

कृति की नायिका डॉ. लता के चिंतन में एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष उभरता है-'पूरी उम्र दृश्य और अदृश्य शत्रुओं से लड़ने के लिए स्वयं को मज़बूत करना पड़ता है।' (पृष्ठ-१०८) 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' उपन्यास की कथा भार्गव दंपत्ति डॉ. रवि व डॉ.लता के इर्द-गिर्द घूमती है। निसंदेह इसकी नायिका लता है। रवि सहायक नायक के रूप में उपस्थित है। कथा के केंद्र में कोविड-१९ महामारी से मानव जीवन में पैदा होने वाली उथल-पुथल है। मनुष्य द्वारा प्रकृति के संग की जाने वाली छेड़खानी एक महत्त्वपूर्ण पक्ष बनकर उभरती है, जिसकी प्रखर अभिव्यक्ति यहाँ वहाँ दिखाई देती है।

कोरोना वस्तुतः एक निर्जीव वायरस है। यह महज़ चर्बी का लघुतम अणु है जो मानव जैसे सजीव ऑर्गन के संपर्क में आकर सक्रिय होता है। उसके फेफड़ों पर आक्रमण करता हुआ विकराल रूप धारण कर असमय मृत्यु का कारण बन जाता है। इस क्षुद्र वायरस ने अस्सी लाख योनियों में श्रेष्ठता का दंभ भरने वाले मनुष्य को उसकी औक़ात दिखा दी। इसके आगे शक्तिशाली मनुष्य असहाय सिद्ध होता चला गया।

लेखिका ने कथा का सुखांत किया है। नायिका के परिजन कोविड की चपेट में आने के बाद आख़िर में सही सलामत हो जाते हैं। नायिका डॉ. लता कोरोना की त्रासदी से जूझते हुए ज़रूरतमंद लोगों के लिए मास्क व खाना आदि मुहैया करवाने का भागीरथ प्रयास करती रही है। कथा नायिका के विचार से 'जहाँ मृत्यु का तांडव हो रहा हो, वहाँ खुद को स्वस्थ और सकारात्मक रखना भी एक चुनौती है।' (पृष्ठ-७३) पृथ्वी पर मृत्यु का यह तांडव कोरोना महामारी द्वारा किया गया। यहाँ से लेकर आसमान तक इसका प्रभाव दिखाई दिया। ऐसे आकाश को निहारते हुए डॉ. लता यकायक बोल पड़ती है-'जानती हूँ, तुम्हारा धरती के प्रति आकर्षण। वह पीड़ित है तो दर्द तुम्हें भी हो रहा है।' (पृष्ठ-वही) अम्बर के बिना पृथ्वी का अस्तित्व असंभव है। यह आसमान ही है, जिसमें पृथ्वी का सम्पूर्ण वातावरण आश्रय प्राप्त करता है, जो पृथ्वी का सुरक्षा कवच है। सूरज की रोशनी, चाँद की चाँदनी, शेष नक्षत्रों का मुक्तामय दृश्य, शून्य की महाशांति सब कुछ इसी में तो है। नभ के बगैर नारी अधूरी है। तभी तो भारतीय वैचारिकी ने स्वीकार किया है कि क्षिति नारी का रूप है और नभ नर का। कोरोना से भिन्न स्तर पर डॉ. लता नारी के उत्पीड़न की भयावहता की भी प्रत्यक्षदर्शी रही है। उसने मनोविज्ञानी की हैसियत से तीन स्त्रियों का सफल उपचार किया है। कथा-वस्तु अमेरिका की धरती पर टिकी रहने के बावजूद भार्गव दंपति एवं नायिका की मनोरोगी महिलाओं के परिवारों की पृष्ठभूमि भारत रही है। इसीलिए इसमें भारतीय पुरुषवादी मानसिकता भी अभिव्यक्त हुई है।

पूरे उपन्यास में सतही तौर पर कोरोना महामारी और नारी की त्रासदी दो सर्वथा भिन्न विषय साथ-साथ चलते हैं। नारी त्रासदी की भी तीन स्वतंत्र नायिकाएँ हैं; डॉली पार्टन, सायरा एवं रानी उर्फ़ दासी। कोविड-१९ और उसके विरुद्ध लड़ाई में डॉ. भार्गव परिवार की भूमिका इस कृति का प्रमुख भाग है। दोनों समस्याओं से जूझने में समान कारक सकारात्मक सोच एवं तज्जन्य ऊर्जा है। कोरोना महामारी का असर बीमार व मर रहे मनुष्यों के रूप में दृश्यमान है, किंतु उसका जो कारण है, वह वायरस अदृश्य है। स्त्री का उत्पीड़न उसके तन की दशा व मन के व्यवहार के रूप में परिलक्षित होता है। वह

दृश्यमान है। उसका कारण स्त्री की सहनशीलता है, जो अदृश्य है। यही सहनशीलता अपनी सीमाओं को लाँघकर यदि सकारात्मक प्रतिरोध व संघर्ष में परिवर्तित हो जाए तो उत्पीड़न का समाधान बन सकती है। यही स्त्री की अदृश्य शक्ति है। इस परिदृश्य के साथ ही उपन्यास में प्रकृति की भावभंगिमाओं का वर्णन चलता है। पेड़-पौधे, पक्षी और आसमान कभी मायूस दिखाई देते हैं तो कभी ख़ुश। यहाँ भी नकारात्मक एवं सकारात्मक शक्तियों की प्रतीति अप्रत्यक्ष रूप में है। कृति की नायिका मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषक, मनोरोग चिकित्सक और मनोविकार परामर्शी की मिश्रित भूमिका में निरंतर उपस्थित रहती है। उसी के इर्द-गिर्द और आद्यांत 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' चलता है।

साहित्य की दुनिया में बहुमुखी प्रतिभा का नाम है सुधा ओम ढींगरा। अब तक इनकी दर्जनों पुस्तकों में कविता, कहानी, निबंध, साक्षात्कार, अनुवाद, संपादन जैसी अनेक विधाएँ सम्मिलित हो चुकी हैं। इनका पहला उपन्यास 'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' प्रकाशित हुआ। 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' शीर्षक से उनका यह दूसरा उपन्यास है, जो इसी साल (२०२१) प्रकाशित हुआ है। समसामयिक विषयवस्तु पर केंद्रित इस रोचक कृति के लिए कथाकार सुधा जी को बधाई!

000

सकारात्मक ऊर्जा का संकेत

गोविंद सेन

सुधा ओम ढींगरा सिद्धहस्त प्रवासी कथा लेखिका हैं। 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' निरंतर सृजनरत सुधा जी का यह दूसरा उपन्यास है। उनकी कृतियों की एक लंबी सूची है। इसके अतिरिक्त सुधा जी विभोम-स्वर की प्रमुख संपादक हैं। सुधा जी कई किताबों का संपादन कर चुकी हैं।

कोरोना काल की नकारात्मकता में रचनात्मकता को ज़िन्दा रखना एक चुनौतीपूर्ण कार्य था पर सुधा जी ने इस चुनौती को बख़ूबी स्वीकार किया। हमारे विचार और भावनाएँ हमेशा दोलन करते रहते हैं। कभी वे सकारात्मकता की ओर झुकते हैं तो कभी नकारात्मकता की ओर। उपन्यास में मानव-मन की कई परतों को खोला गया है। मन के अँधेरे कोनों को टटोला गया है। स्त्रियों की मनोवैज्ञानिक समस्याओं की पड़ताल की गई है। पृष्ठभूमि में कोरोना महामारी की त्रासदी के बीच मानवीय जिजीविषा चित्रित हुई है। भारतीय स्त्री के अंतहीन शोषण का अंकन भी यहाँ बख़ूबी हुआ है। अमेरिका की बेहतर न्याय व्यवस्था की झलक भी यहाँ देखी जा सकती है।

अमेरिका के एक शहर के ग्रोसरी स्टोर से उपन्यास का प्रारम्भ होता है। स्टोर के दरवाज़े पर लोग दूरी बनाकर खड़े हैं। स्टोर में एक बार में सिर्फ पाँच लोगों को अंदर जाने दिया जाता है। लंबी लाइन लगी है। देरी की वजह से एक महिला अपना संतुलन खो बैठती है। वह दरवाज़े पर तैनात कर्मचारी की पीठ पर दो-चार हाथ जड़ देती है। मास्क उतार फेंकती है। वह लाइन में आगे खड़े स्त्री-पुरुषों को अपने हैंडबैग से मारने लगी। ज़ोर-ज़ोर से गालियाँ देने लगी। पुलिस बुला ली जाती है। पुलिस महिला को पकड़ लेती है।

चालीस साल तक रैक्स हास्पिटल, रॉले को अपनी सेवा देने के बाद सद्य रिटायरमेंट ले लेने वाले दम्पती लोक सेवा भाव से भरे इंफ़ेक्शियस डिज़ीजिस के स्पेशलिस्ट डॉ. रवि भार्गव और साइकॉलॉजिस्ट डॉ. लता इस दृश्य के साक्षी बनते हैं। दरअसल यह कोरोना काल की अवसादग्रस्त मानसिकता की अभिव्यक्ति थी। यह नकारात्मकता केवल उस महिला तक ही सीमित नहीं थी। विश्व में सभी अदृश्य दुश्मन कोविड-१९ से जूझ रहे थे। यहीं से सुधा जी उपन्यास को उठाती हैं। उपन्यास में डॉ. लता नेरेटर हैं। उन्हीं की ज़ुबानी पुरुष-सत्ता द्वारा कुचली गई शोषित-पीड़ित तीन नारी पात्रों की कहानियों को गूँथा गया है।

डॉ. लता साइकॉलॉजिस्ट हैं। उन्हें डायरी लिखने का शौक है। दो डायरियाँ कुछ विशेष मानसिक मनोरोगियों की हैं। उनकी नोट्सनुमा कहानियाँ काल्पनिक नामों से डायरियों में दर्ज हैं। उनकी डायरी में पहली कहानी डॉली पार्टन की है। ख़ूबसूरत डॉली पार्टन उर्फ मिसेज़ हुड्डा भारत से अमेरिका में आती है। वहाँ उसके जेठ और दो देवरों ने उसके साथ सामूहिक बलात्कार किया था। यह घृणित कृत्य उसके सास-ससुर की देख-रेख में हुआ था। जब वह अमेरिका अपनी पति के पास आई तो उसने भी उसकी बात का यक़ीन नहीं किया। उल्टे उस पर यह इल्ज़ाम लगाया कि यह तो उसके प्रेमियों का काम है जिसे वह उसके भाइयों के सिर पर मढ़ रही है। पति उसके साथ मारपीट करता है। डॉली पार्टन भी शरीर से मज़बूत होने के कारण उसका मुक़ाबला करती है। पड़ोसियों ने उसके पति को उसे साइकैट्रिक को दिखाने की सलाह दी। इस तरह मिस्टर हुड्डा उसे डॉ. लता के पास लाता है। डॉ. लता मामले की जड़ तक पहुँचती है। उसे मिस्टर हुड्डा के चंगुल से मुक्त करवाने में मदद करती है। बाद में डॉली रैक्स हॉस्पिटल में नर्स बन जाती है। हार्ट स्पेशलिस्ट माइकल से शादी रचाकर नई ज़िंदगी शुरू करती है।

डायरी में दूसरी कहानी है सायरा की। वह एक मनोरोगी के रूप में डॉ.लता के पास आती है। जंगली फिल्म की नायिका सायरा बानो जैसी दिखने के कारण उसे यह नाम दिया गया था। उसकी समस्या है कि वह बेवजह तर्क-वितर्क में चली जाती है। बिना बात के ग़ुस्सा हो जाती है जो भी हाथ में पकड़ा होता है, उसे ज़मीन पर पटक देती है। उसमें बदले की उग्र भावना है। सायरा दिल्ली से अमेरिका आई है। उसकी समस्या की जड़ दिल्ली से जुड़ी है। वहाँ एक मिनिस्टर के बेटे ने उस पर एसिड डाल दिया था। इस एसिड-अटैक में उसकी 'बेस्ट फ्रेंड' ने मंत्री के बेटे की मदद की थी। एसिड-अटैक के कारण उसके शरीर का अग्र भाग वक्ष, पेट और जाँघें बुरी तरह से झुलस गए थे। मामले को रफा-दफा करने के लिए मिनिस्टर उसके माता-पिता को तीन करोड़ और दस साल का वीज़ा दिलवा कर अमेरिका भिजवा देता है। डॉ. लता ने उसे सामान्य स्थिति में लाने में मदद की। उसके आत्मसम्मान और आत्मविश्वास

को बढ़ाया। सायरा अपनी प्रतिभा और मेहनत के बूते पर पल्मोनरी डॉक्टर बन कर कोविड पेशेंट्स को देखने लगी।

डॉ. लता की डायरी में तीसरी कहानी है- दक्षिण भारतीय सुंदरी की जिसे इंडिया की क्वीन या रानी के नाम से डायरी में दर्ज किया गया था। वह एक हिन्दी भाषी लड़के से प्रेम करती थी पर उसके माता-पिता ने पार्टी, बिरादरी और क्षेत्र (नॉर्थ-साउथ) के अलग होने की दुहाई देकर उनकी शादी नहीं होने दी। बाद में उसकी शादी उसकी मर्ज़ी के खिलाफ़ उन्हीं के समान एक राजसी, परंपरावादी और दोगली मानसिकता वाले परिवार से कर दी जाती है। उसके पति को उसके पूर्व प्रेम का पता था पर उसने कोई ऐतराज़ नहीं किया। रानी के पिता ने सत्ता में रहते हुए बेइंतिहा दौलत बटोरी थी। दरअसल उसकी नज़र उसके पिता की उस दौलत पर थी। शादी के बाद वह अपने पति और सास के साथ अमेरिका आ गई। सास पहले ही दिन से उसे दक्षिण भारतीय पहनावे में बाँध देती है। सुबह शाम उससे नौकरानी की तरह काम लिया जाने लगा। विरोध करने पर थप्पड़ रसीद किए जाते। कुल मिलाकर उसकी स्थिति दासी के समान थी। एक अधेड़ तेलुगू महिला की मदद से अपने साथ होने की शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना के बारे में पुलिस को बता देती है। पुलिस ने उसकी बहुत मदद की। शारीरिक प्रताड़ना तो बंद हुई पर पति ने अब उसे बच्चियों की निगाह में गिराना चाहा। वह बच्चियों के सामने उसे अनपढ़ और पागल साबित करना चाहता था। उस झूठ का असर बच्चियों पर होने भी लगा था पर डॉ. लता की सलाह और मार्गदर्शन में क्वीन ने पति से मुक्ति पा ली। बच्चियों को भी सच का पता लग गया। वह सॉफ्टवेयर कंपनी की मालकिन बन गई और आधुनिक ढंग से रहने लगी।

उपन्यास में अमेरिकन न्याय-व्यवस्था को भारतीय न्याय-व्यवस्था से बेहतर बताया गया है। यह सच भी है। भारत में अक्सर रेपिस्ट, एसिड अटैकर और लड़कियों के साथ मारपीट करने वाले छूट जाते हैं, उन्हें सज़ा नहीं मिलती। प्रताड़ित तीनों महिलाओं को अमेरिका में पुलिस का सहयोग और समय पर न्याय मिलता है। डॉ. तीनों ही महिलाओं के जीवन में सकारात्मक ऊर्जा का संचार कर उनकी ज़िंदगी को खुशहाल बना देती है। वह केवल उनकी मनोवैज्ञानिक समस्या का हल ही नहीं करती बल्कि उनके जीवन-पथ को प्रशस्त भी करती हैं ताकि वे एक सफल और सुखद जीवन जी सकें।

कथा के प्रवाह में अनेक प्रभावी वाक्य आते हैं। ये वाक्य कभी संवाद में तो कभी स्वतंत्र रूप से आकर किसी न किसी सच को प्रकट करते हैं। मसलन :

"चेहरा सबसे अच्छा पासवर्ड है, वह फ़ाइल को एकदम खोलकर रख देता है।" पृ.३१

"नकारात्मक ताक़तें दृष्टि से ओझल रहती हैं और इनके अस्तित्व का पता इनके अटैक करने बाद लगता है।" पृ. ४०

"जड़ को निकालने के लिए उसे खोदना पड़ता है।" पृ.४१

"सवालिया नज़रों की शिकार सिर्फ लड़की होती है, पुरुष नहीं।" पृ.५९

"नीले और सफ़ेद बादलों का रंग भी फीका-फीका दिखाई दे रहा है। धरती की उदासी, परेशानी आकाश के चेहरे पर भी नज़र आ रही है।" पृ.७२-७३

"मानव के भीतर और बाहर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह की ऊर्जाएँ विद्यमान हैं।" पृ.८०

"कई आँखें बेहद भावपूर्ण होती हैं, सुख-दुख सब बता देती हैं।"पृ.९२

"कई बार छिपाई गई बातें ही उनकी बीमारी की जड़ होती हैं और वही कारण होते हैं।" पृ.११९

"...भारतीय माँ-बाप अपनी लड़कियों को ख़ुद न मारकर मरने के लिए शादी के नाम पर खूंखार जानवरों के हवाले कर देते हैं।" पृ.१२५

लॉकडाऊन के दौरान प्रकृति में प्रकृति का सौंदर्य निखर आता है। हवा साफ होने लगी। पेड़-पौधों पर रहने वाले पक्षियों से मानव का नाता जुड़ने लगा। छोटे-मोटे पशु-पक्षी अपने नैसर्गिक सौन्दर्य और क्रियाकलापों से मानव का दिल जीतने लगे थे। डॉ. लता इनको देख कर सुकून पाती हैं। गिलहरी हाथ जोड़कर जब दो पैरों पर खड़ी होती हैं, तो उन्हें लगता है कि गिलहरी उन्हें नमस्ते कर रही हो।

सुधा जी की भाषा सहज, सरल, चित्रात्मक है जो परिवेश और पात्रानुकूल है। शोध करके विगत महामारियों का ज़िक्र करते हुए कोविड-१९ की विभीषिका से पैदा होने वाली विषम परिस्थितियों का सटीक विवेचन किया गया है। इसके बावजूद रोचकता भंग नहीं होती। उपन्यास अंत तक बाँध कर रखता है।

उपन्यास का आवरण दर्शनीय ही सार्थक है। विचलन और अँधेरे की कई परतों के भेदता हुआ नया अंकुर फूटता हुआ चित्रित है जो सकारात्मक ऊर्जा का संकेत देता है। कोरोना काल की विषम स्थितियों और स्त्री-मन की उथल-पुथल को दर्शाता यह एक नए तरह का उपन्यास है। छपाई-सफाई उत्तम है। हर युग के अशांत समय में सकारात्मक ऊर्जाओं ने मानवता को बचाए रखा है। यह उपन्यास उन्हीं ऊर्जाओं को समर्पित है। मुझे आशा है कि पाठक इस 'दृश्य से अदृश्य का सफर' अवश्य पसंद करेंगे।

000

सकारात्मक ऊर्जा की ओर

डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा

इक्कीसवीं सदी के बीसवें दशक का आरंभ पूरे विश्व में एक ऐसी महामारी से हुआ, जिसका अभी तक कोई समाधान नहीं निकल पाया। कोरोना या कोविड-१९ नामक इस वायरस ने एक साथ पूरे विश्व को अपनी चपेट में ले लिया। अत्यन्त तीव्र गति से घूमता विश्व का चक्र अचानक से रुक गया। विकसित-अविकसित देश, अमीर-ग़रीब श्रेणी व व्यक्ति, आयु आदि किसी भी अंतर की परवाह न करते हुए, कोरोना-काल ने सभी को डस लिया। अपने जीवन में सभी ने पहली बार तेज़ रफ्तार ज़िंदगी को यूँ थमते हुए और ज़बरदस्ती घर में बंद होते देखा। हालाँकि

इतिहास गवाह है कि इससे पूर्व भी अनेक महामारियों ने संसार को त्रास किया परन्तु वे सभी सुनी-सुनाई बातें रही जबकि कोविड-१९ हमारे अपने समय का सच साबित हुआ, देखा-भोगा यथार्थ, जो इतिहास में बंद उदाहरणों से कहीं अधिक भयावह साबित हुआ।

ऐसे ताज़ातरीन और सामयिक विषय पर उपन्यास-रचना करने का साहस सुधा ओम ढींगरा ने किया। संभव है इस विषय से संबंधित हिन्दी में यह पहला उपन्यास हो, जबकि सोशल मीडिया की बदौलत कोरोना से संबंधी अनेक कविताएँ और छोटी-छोटी रचनाएँ व्हाट्सएप ग्रुपों में इधर से उधर डोलती दिखाई दीं। इस सामयिक विषय पर पंजाबी में पहला उपन्यास गुरमीत कडियालवीं द्वारा रचित "उह इक्कीं दिन" सामने आया। एक ही विषय से संबंधित दोनों ही उपन्यासों में बहुत अंतर है। अभी हम सुधा ओम ढींगरा रचित उपन्यास "दृश्य से अदृश्य का सफ़र" संबंधी चर्चा करेंगे।

हिन्दी साहित्य की नामचीन लेखिका सुधा ओम ढींगरा किसी परिचय की मोहताज नहीं। अनेक कहानी-संग्रहों और संपादित पुस्तकों के साथ 'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' नामक उपन्यास के बाद प्रस्तुत रचना उसकी दूसरी औपन्यासिक रचना है। इस उपन्यास की कई परतें हैं। भले इसे कोरोना-काल से प्रेरित कहा जा सकता है परन्तु लेखिका ने इस महामारी और वायरस के माध्यम से प्रकृति और मनुष्य के भीतर समाई नकारात्मकता को सकारात्मक ऊर्जा में साधने की ओर संकेत किया है।

उपन्यास के केन्द्र में संयुक्त अमेरिका में बसा डॉक्टर परिवार है, जिसमें भार्गव दंपति रवि और लता की संतान पुत्र-पुत्री के हमसफ़र भी मेडिकल से ही जुड़े हैं। लॉकडाउन लगने के एक दिन पहले ही भार्गव दंपति ने अपनी इच्छा से अपने हस्पताल से सेवानिवृत्ति ली थी। चालीस वर्षों तक अपनी सेवाएँ देने के बाद उन्होंने निश्चय किया था कि अब वे दोनों आराम और सुकून से अपनी बाकी ज़िंदगी बिताएँगे। मन में रह गए कई अधूरे सपनों को पूरा करने की चाह रख रहे थे। परन्तु उन्हें इस बात का आभास नहीं था कि उनकी सेवानिवृत्ति के साथ ही लॉकडाउन लग जाएगा और उन्हें अगले कई दिनों तक घर में ही बंद रहना पड़ेगा। मार्किट से ग्रोसरी लेने के लिए लगी लंबी लाइन और प्रतीक्षा करते लोगों में से एक स्त्री द्वारा संयम खोते हुए, बेचैनी से मारपीट पर उतर जाने का मंज़र देख, भार्गव दंपति बिना सामान लिए ही लौट आया। लेखिका ने केवल एक ही घटना द्वारा इस समय की भयावह होती स्थिति की ओर संकेत कर दिया। सुख-सुविधाओं से संपन्न और अपनी मनमर्ज़ी का जीवन व्यतीत करते लोगों के लिए लॉकडाउन जैसी स्थिति में घरों में बंद रहने से मानसिक संतुलन बिगड़ने तक की नौबत आने लगी। वे अपना संयम खोने लगे। वायरस के भुक्तभोगी रोगियों के शारीरिक स्वास्थ्य पर जो प्रतिकूल प्रभाव पड़े, वे प्रत्यक्ष आते गए परन्तु जिन्हें इस वायरस ने भले शारीरिक स्तर पर ना जकड़ा परन्तु मानसिक स्तर पर स्वस्थ व अस्वस्थ सभी मनुष्यों पर इसका भारी प्रभाव पड़ा।

भार्गव दंपति में रवि क्योंकि इंफेक्शियस डिज़ीज़िस के स्पेशलिस्ट डॉक्टर रहे, इसलिए उन्हें रिटायरमेंट के बावजूद जल्दी ही हस्पताल से डॉक्टरों की एक टीम के साथ न्यूयार्क पहुँचने का बुलावा आ गया, क्योंकि स्थिति दिनों-दिन बदतर होने लगी थी। इस दौरान उपन्यास की केन्द्रीय पात्र डॉ. लता घर में अकेली रह गई। बाकी उपन्यास लता, उसकी सोच और उसके उन रोगियों से संबंधित रहा, जिनकी समय-समय पर डॉ. लता ने काउंसलिंग कर, उन्हें मानसिक स्तर पर संबल दिया और अपनी लड़ाई स्वयं लड़ने के लिए मज़बूत किया। यह इस उपन्यास की एक और ही परत है, जो पाठकों के सामने आती है।

लेखिका ने मार्च २०२० से कुछेक महीनों की वैश्विक स्तर की तस्वीर प्रस्तुत की। अमेरिका और अन्य यूरोपिन देशों के साथ भारत में इस महामारी का कैसा विकराल रूप सामने आता गया, आवागमन के सभी साधनों का प्रचालन बंद हो जाने पर प्रवासी मज़दूरों का दूर-दराज अपने गाँवों में पैदल ही, नंगे पाँव, बच्चों और सामान को उठाए जाने के दृश्यों ने सारे विश्व को हिला कर रख दिया। सोशल मीडिया और टी वी चैनलों में दिन-रात इस महामारी के कारण बड़े होते आँकड़ों ने घर पर सुरक्षित बैठे लोगों को भी असुरक्षित कर दिया। परन्तु इस के साथ ही वैश्विक स्तर पर बेघर और बेरोज़गार लोगों को खाना और दवाएँ पहुँचाने का कार्य अनेक समाजसेवी संस्थाओं और निजी स्तर पर किया गया। जिससे यह बात भी सामने आई कि विश्व में और प्रत्येक समाज और कौम में अभी भी दयाभावना और मानवता कायम है, जिसके बलबूते पर ही यह ब्रह्मांड टिका है। लता ने भी अनेक समाजसेवी और भारतीय संस्थाओं की सहायता से अनेक स्थानों पर खाना और दवाएँ भिजवाई। बहुत से बूढ़े लोगों को मास्क इत्यादि सिलने और तैयार करने के काम पर लगाया, जिससे उनकी घर बैठने की बोरियत कम हुई और उन्हें इस बात की अनुभूति हुई कि वे भी संकट की इस स्थिति में कोई न कोई दयानतदारी भरा कार्य कर, मानवता की सेवा में अपना हाथ बँटा रहे है।

घर में अकेले रहते हुए लता ने खुद को निराशा या उदासी के गर्त में डूबने नहीं दिया। पति, अपने पुत्र-पुत्रवधू और बेटी-दामाद की समय-समय पर कुशलक्षेम जानने के अलावा उसने उन्हें बार-बार फ़ोन कर तंग नहीं किया। डॉक्टर होने के नाते वह इस संकटमय स्थिति में डॉक्टरों के कर्त्तव्य से भली-भाँति परिचित थी। उसने अपना समय बेघर, भूखे और असहाय लोगों को खाने पहुँचाने में व्यतीत किया। हस्पताल की ओर से काउंसलिंग किए जाने के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया और ऑनलाइन या टेलीफ़ोन पर उन परिवारों और लोगों को काउंसलिंग द्वारा हिम्मत दी, जो ग़रीब थे और अब बेरोज़गार भी हो चुके थे। उनके भीतर हताशा और घर करती हीन भावना को अपने शब्दों के मरहम और सांत्वना के स्वर से दूर करने का प्रयास किया। हालाँकि उसे मालूम था, शब्दों या बातों से केवल उन्हें बहलाया जा सकता है। मनोचिकित्सक होने के नाते उसका कार्य

काउंसलिंग द्वारा ही रोगियों का ध्यान परिवर्तित करने और उन्हें अपनी समस्या का समाधान ठोस तरीक़े से करने के लिए प्रेरित करना था, जिसके लिए आत्म-विश्वास खो चुके उन लोगों और रोगियों को प्रेम व स्नेह के शब्दों से ढाँढस देना ही संभव था। यही उसका इलाज था, मन को मज़बूत करना। जैसे कि कहा जाता है, मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

ऐसी स्थिति में लता का स्वयं मज़बूत बने रहने में उसकी सहायता उसके प्रकृति प्रेम ने की, जो सुख व आनंद उसे अपने घर की खुली बालकनी में बैठ कर प्राप्त होता था। वहाँ वह अनेक पक्षियों और जीवों से मिलती, उसकी उनसे मित्रता थी, भले वे गिलहरियाँ हो, तोते, कबूतर या अन्य पक्षी हो। वह उन्हें दाना देती, अखरोट खिलाती, उनके लिए पानी इत्यादि का बंदोबस्त रखती। सुबह व संध्या समय, वह वहीं सोफे पर बैठ कर, आसमान के बदलते रंगों, चाँद-तारों की बदलती गति और हवा की आवाजाही को महसूस करती। उनसे बातें करती। प्रकृति के विभिन्न रंगों को महसूस करती, उन्हें अपने भीतर समोती या उनमें समा जाने का प्रयास करती। जब-जब समय मिलने पर उसने प्रकृति के संग-साथ का आनंद लिया, उसके मन की उदासी और शरीर की शिथिलता दूर भाग कर, उसे नई अनुभूति के साथ भीतर तक भिगो गई। यह लता की सकारात्मक सोच का ही नतीजा था कि उस पर अकेलेपन या महामारी की निराशा की नकारात्मक का प्रभाव न पड़ा। उसने अपनी सकारात्मक ऊर्जा को सँजोने और उसे अच्छे कामों में लगाने का ही प्रयास किया। जिससे सकारात्मक ऊर्जा सोच और विचारों के साथ जुड़ कर कई गुना बढ़ती गई। और पति और संतान के कोरोना युद्ध में व्यस्त होने पर भी उन्हें हिम्मत बँधाती रही। पति या संतान के कोरोना पॉज़िटिव होने पर, चिंतित होने के बावजूद, उसने स्वयं को हमेशा मज़बूत बनाए रखा।

उपन्यास की एक परत ... मन में दबी गाँठों से संबंधित है, जो उसके रोगियों की केस-हिस्ट्री से मालूम होती है। लता को अपने डॉक्टरी पेशे में हज़ारों रोगियों से मिलने का मौका मिला। परन्तु जिस रोगी का केस सामान्य से अलग स्तर का रहा और उसने लता को मानवीय जीवन के स्वभाव के विभिन्न पक्षों से रू-ब-रू करवाया। लता ने उन रोगियों की असल पहचान छिपा कर, उनकी केस-हिस्ट्री को कहानी के नोट्स के रूप में अपनी डायरियों में लिख रखा था। अकेलेपन के इन दिनों में उसने इस महामारी से हताश हुई एमिरली और प्रतिभा सिंह द्वारा उससे सलाह लेने के लिए किए फ़ोन पर उन्हें अपनी डायरियों द्वारा तलाश करने की कोशिश की परन्तु वह उन्हें किसी भी प्रकार याद ना कर पाई जबकि तीन-चार अन्य केसों से उसने पाठकों का परिचय करवाया। डॉली पार्टन, रानी या दासी और बेनूर खाली आँखें.... जैसे शीर्षक देकर लता ने ऐसी स्त्रियों से परिचित करवाया। इन्हें पढ़े-लिखे होने, समाज के प्रतिष्ठित घरों में पली-बढ़ी होने पर भी कैसी क्रूरता और अभद्रता का सामना करना पड़ा क्योंकि वे स्त्रियाँ थी। इसमें सबसे अहम् भूमिका उनके तथाकथित पति और ससुरालवालों ने निभाई। कहीं परिवार ने साथ दिया और कई बार नकारा भी।

ये तीनों कहानियाँ भारतीय समाज के दोगलेपन और विद्रूपता की मिसाल हैं, जहाँ स्त्री इक्कीसवीं सदी में भी पिता और पति के लिए संपत्ति से अधिक मान्यता नहीं रखती। कई बार ईर्ष्या,डाह भी किसी-किसी के लिए इंतहाई मुसीबत बन कर सामने आती है। बेनूर आँखों वाली सायरा की ज़िंदगी को उसकी तथकथित 'बेस्ट फ्रैंड' ने ही तबाह करने में अहम भूमिका निभाई। पुरुष द्वारा स्त्री की ओर से किए गए इंकार, किसी अन्य से प्रेम करने का दंड भोगने और पुरुष की बराबरी करने की सोच रखने जैसी बातों का ख़ामियाज़ा भुगतने के लिए स्त्री को किसी भी सदी में तैयार रहना चाहिए। ऐसी जुर्रत करने पर उसे इतना तोड़ा-मरोड़ा और शरीरिक स्तर पर कोंचा जाए कि वह अपना आत्म-बल खो दे और सारी उम्र के लिए उनके इशारों पर चलने वाली कठपुतली बन कर रह जाए। अनेक कष्ट और पीड़ा सहते हुए भी, लता ने अपनी इन रोगियों को ऐसा संबल दिया कि उन्होंने केवल अपना जीवन सँवारा, भविष्य में ऊँचा मुकाम हासिल किया बल्कि अन्य स्त्रियों के लिए प्रेरणास्रोत भी बनी। ऐसा संभव हुआ, उनके आत्मविश्वास को पुर्नजीवित करके। उनकी नकारात्मक सोच को सकारात्मक ऊर्जा में बदल कर, जिसके आधार पर उन्होंने जीवन की हारी बाज़ी को जीत कर दिखा दिया।

सुधा ओम ढींगरा का यह उपन्यास स्थूल से सूक्ष्म की ओर, प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की ओर, बाह्य से भीतर की ओर का भी सफ़र तय करता है। जैसे लिखे से अनलिखे और कहे से अधिक महत्त्व अनकहे का होता है, उसी प्रकार दृश्य से अदृश्य तक की ओर इशारा किया गया है। जो अज्ञात और अन्जाना होने के बावजूद मनुष्य के जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करता है। जहाँ बहुत सारे घरों में लॉकडाउन के दौरान आपसी सहयोग, संवाद और सौहार्द्र बढ़ा, वहीं इस नितांत अकेलेपन ने कइयों को अपने भीतर छुपी अनेक संभावनाओं से भी परिचित करवाया, जैसे लता को केस के नोट्स पढ़ कर मालूम हुआ कि वह बहुत अच्छी कहानी लिख सकती है। समाज को देने के लिए उसके पास कई कहानियाँ हैं, जिन से समाज का छिपा घिनौना रूप सामने आ सकता है। यह भी टैलीपेथी का उदाहरण कहा जा सकता है कि जब वह बेनूर आँखों वाली सायरा की कहानी पढ़ रही थी, न्यूयॉर्क में डॉ. रवि की भेंट सायरा से हुई।

यदि इन कहानियों में एकाध कहानी किसी अमेरिकी स्त्री या पुरुष की शामिल होती तो उसका प्रभाव अधिक पड़ता क्योंकि वैश्विक स्तर पर मनुष्य का स्वभाव एक समान रहता है। उससे मानव जीवन की अन्य जटिलताओं का भी आभास होता और उपन्यास महामारी के वैश्विकीकरण की तरह मानवीय स्वभाव के वैश्विकीकरण तक का सफ़र भी तय कर लेता, क्योंकि सकारात्मक सोच से दुनिया के किसी भी कोने में कुछ भी बदला और पाया जा सकता है।

000

केंद्र में पुस्तक

यही तो इश्क़ है

(ग़ज़ल संग्रह)

समीक्षक : ओम निश्चल, शैलेन्द्र शरण

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

ओम निश्चल
द्वारा डॉ. गायत्री शुक्ला
जी-1/506 ए, उत्तम नगर
नई दिल्ली 110059
मोबाइल- 8447289976
ईमेल- dromnishchal@gmail.com

शैलेन्द्र शरण
79, रेलवे कॉलोनी, इंदिरा पार्क के पास
आनंद नगर, खण्डवा (म.प्र.)
मोबाइल-8989423676
ईमेल- ss180258@gmail.com

ओम निश्चल

शैलेन्द्र शरण

ज़िंदगी मासूम बच्ची है अभी तक गाँव में

ओम निश्चल

''आने वाले कल की ये तैयारी है
शहर जले हैं अब कुछ की बारी है
कल इसकी लपटों में झुलसेंगे हम सब
मत सोचो ये छोटी सी चिंगारी है''

मैं जानता था यह शख़्स सिर्फ क़िस्से कहानियों का नहीं है, यह गीतों और ग़जलों में भी उतनी ही आमदरफ्त रखता है। गद्य के किसी भी साँचे में इसका हाथ रवाँ है। कल तक यह शख़्स अपनी पुस्तकों के लिए दूसरे प्रकाशकों पर निर्भर रहा करता था पर देखते ही देखते इसने मध्यप्रदेश के सीहोर क़स्बे को प्रकाशन का एक केंद्र बना दिया। ईस्ट इंडिया कंपनी, गाँधी एट यरवदा और महुआ घटवारिन और अन्य कहानियों से चर्चा में आए सुबीर ने अकाल में उत्सव जैसा उपन्यास लिखा तो संजीव जैसे कथाकार की याद हो आई।

कहानियों और अपने औपन्यासिक लेखन के लिए कितने ही ईनाम इकराम बटोरने वाला यह शख़्स इतना सरल भी नहीं, बल्कि इसकी पेचीदा सरसता के भीतर अनेक घातों प्रतिघातों के निशानात भी हैं। लेकिन पंकज सुबीर ने कभी अपने दुख को परचम की तरह नहीं लहराया। उन पर तंज़ भी किए गए पर उन्होंने अपनी भलमनसाहत नहीं छोड़ी। बड़े प्रकाशकों की चिरौरी मिन्नत करने के बदले अपनी ही जोख़िम पर प्रकाशन खोल कर न केवल अपनी कृतियों का बल्कि दूसरे तमाम बड़े लेखकों की कृतियों का पथ प्रशस्त किया तथा सीहोर में बैठे-बैठे शानदार पुस्तकों के प्रोडक्शन का रास्ता तैयार किया।

वे क़िस्सागो हैं, अपने ढंग की कहानियों के उस्ताद। औरों की तरह उनकी भी प्रतिभा को कथाकार रवींद्र कालिया और राजेंद्र यादव ने सँवारा, सहेजा और कहानियों की दुनिया में एक नामचीन पहचान दिलाई। जब उन्होंने ख्यात व्यंग्यकार सुशील सिद्धार्थ का ग़ज़ल संग्रह छापा

था तभी मुझे लगा था कि यह शख़्स सिर्फ एक विधा के तौर पर अपने प्रकाशन से ग़ज़लें नहीं छाप रहा बल्कि इसकी अपनी दिलचस्पी कहीं न कहीं भीतर एक शायर की मौजूदगी के कारण भी है। लगभग हर बेहतरीन कृति भेजने वाले पंकज की ओर से मैं सुशील जी के संग्रह की बाट ही जोहता रहा पर वह हाथ न लग सका। कल की डाक से जब उनका ग़ज़ल संग्रह सुधा ओम ढींगरा के एक बेहतरीन उपन्यास के साथ आया तो उसे देखते ही मेरा शक यक़ीन में बदल गया। पंकज अब सिर्फ क़िस्सागो नहीं एक शायर भी है। वह भी दुरुस्त काफ़िये रदीफ़ की बंदिशों को कामयाबी से साध लेने का हुनर रखने वाला।

यही तो इश्क़ है---यही वह संग्रह है जिसे कोरोना के भय से मुक्त होकर तुरंत लिफ़ाफ़ा खोल कर देर तक उसे देखता- निहारता रहा। इतना सुंदर प्रोडक्शन जैसे किसी ने नोक पलक सँवार कर उसे उपहार सदृश भेंट किया हो। ऐसा नहीं कि एक बार देखने के बाद मन भर गया हो। उसे बार-बार हाथ में लेकर उसके पन्ने पलट कर देखता रहा कि शायरों की इस वक्त आई बाढ़ में सुबीर ने ग़ज़लों से कैसा सुलूक किया है। लगा कि इसे जितनी बार देखो इसका नया पन बरकरार रहने वाला है। बतर्ज विज्ञान व्रत- तुमसे जितनी बार मिला हूँ। पहली पहली बार मिला हूँ। पहले लगा कि संग्रह का नाम 'यही तो इश्क़ है' कुछ इश्क़परस्त लगता है पर भीतर झाँकने पर पाया कि इश्क़ है यहाँ धूप दीप नैवेद्य की तरह किन्तु ये ग़ज़लें ज़दीद शायरी का एक नमूना भी हैं। इनमें भीतर आज के समय का चेहरा दिखता है। यहाँ तंज़ है, तल्ख़ी है, व्यंग्य है, विट है, मलाल है, क्षोभ है, दुख है, संत्रास है, जीवन जीने का अहसास है और इश्क़ का भीगा-भीगा पर्यावरण भी जिसके बिना शायरी कुछ फीकी-फीकी सी लगती है।

लिहाज़ा पंकज सुबीर की शायरी एक सिद्ध शायर के पैग़ाम जैसी लगती है। इश्क़ की पारिभाषिकी के लिए ही कभी ग़ज़ल जैसी सिन्फ सामने आई थी। क्या है इश्क़। यह एक शाश्वत सवाल है। हर आने वाली पीढ़ी अपने आईने में इसका हल ढूँढ़ती हैं। वे लिखते हैं --

नहीं सोया है तू कल से, यही तो इश्क़ है
ज़माना सोए तू जागे, यही तो इश्क़ है
तू उसको भूलना चाहे मगर हर बार बस
अलावा उसके सब भूले यही तो इश्क है

ग़ज़ल अपने सुंदर मतले से पहचानी जाती है। देखता हूँ कि पंकज के यहाँ एक से एक बेहतरीन उन्वान हैं ग़ज़लों के। मैंने विट की बात की थी। पंकज की एक ग़ज़ल में यह विट देखें --

जवानी को यूँ ही ख़ाली बिताना भी समस्या है
लगा लो दिल अगर तो दिल लगाना भी समस्या है
हैं क़िस्से बन गए कितने ज़रा से मुस्कराने पर
तुम्हारे शहर में तो मुस्कुराना भी समस्या है

पंकज की ग़ज़लें सलाहियत का सलीक़ा भी रखती है। यों तो हर शायर कवि पग-पग पर अपने अनुभवों के बीज बिखेरता चलता है। पंकज ने यह सलीक़ा अपनी ग़ज़लों में बरक़रार रखा है। किसी सुभाषित, किसी सूक्त, किसी मंत्र की तरह। तभी तो कवि सदियों से एक बेहतर दुनिया रचने को अपना लक्ष्य मानता रहा है। देखें पंकज सुबीर क्या कहते हैं-

कोई रिश्ता बनाओ तो निभाना भी ज़रा सीखो
कभी तो दूसरों के काम आना भी ज़रा सीखो
तुम्हारे सर पे ही इल्ज़ाम आएगा अँधेरों का
बुझाए दीप हैं तो अब जलाना भी ज़रा सीखो

इश्क़ जब शीर्षक में ही झिलमिला रहा है तो इश्क़ पर बात न हो तो अचरज सा लगेगा। इश्क़ के छींटे यों तो तमाम ग़ज़लों पर पड़े हैं। पर कुछ उदाहरण देखिए --

उसके चेहरे पर जब इक हँसी खिल उठी
हमको ऐसा लगा ज़िंदगी खिल उठी
थी उदासी में डूबी हुई कल तलक
बादलों ने छुआ तो नदी खिल उठी (पृष्ठ ४२)
बड़ी गहरी उदासी छा रही है
न जाने याद किसकी आ रही है
है राहत हिज्र की इस दोपहर में
कोई कोयल कहीं जो गा रही है

कैसे वे एक बड़ी बात एक ग़ज़ल के कुछ ही शेर में सहेज लेते हैं, यह उनकी ग़ज़लें बताती हैं।

है मगर तुम पर मुझे इतना भरोसा भी नहीं
तुम अगर क़ातिल नहीं हो तो मसीहा भी नहीं
ख़ैर मैं जैसा भी हूँ हँस के गले मिलता तो हूँ
माफ़ करना आपको इतना सलीक़ा भी नहीं
(पृष्ठ ५६)

इस दौर के तल्ख़ अहसासात भी उनकी ग़ज़लों में दिखते हैं। कैसा यह लोकतंत्र है। कैसी जनता है। कैसी सरकार। कैसी व्यवस्था। कैसे लोग। कैसा भेड़ियाधसान, पंकज इसे अपनी ग़ज़लों में लाने की पूरी चेष्टा करते हैं।

गूँगी बहरी अंधी जनता
कायर और निकम्मी जनता
लोकतंत्र का मतलब है ये
जिसकी लाठी उसकी जनता

सियासत के इस दौर पर भी उन्होंने क़लम चलाई है --

कुछ का महँगा कुछ का सस्ता बिकता है
आख़िर में तो ईमाँ सबका बिकता है
बाजे बैंड बराती शहनाई घोड़ी
कितने तामझाम से बेटा बिकता है
ये सुबीर संसद है अपने भारत की
इस मंडी में आकर नेता बिकता है (पृष्ठ ७८)
आपके भाषण सुनेंगे कब तलक हम कब तलक
अब ये जनता थक चुकी है कीजिए कुछ कीजिए
आपने बादल समंदर ताल नदियाँ बेच दीं
आग अब घर में लगी है कीजिए कुछ कीजिए

शहर आबाद होते गए तो गाँवों की दुर्दशा होती गई। वहाँ लहलहाती हुई फ़सलें तो हैं पर गाँव के गाँव ख़ाली हो रहे हैं। कोई ज़मीनें जोतने बोने वाला नही है। अक्सर घरों में बूढ़ी माएँ अपने बच्चों की बाट जोहती दरवाज़े पर बैठी रहती हैं। इस गाँव को भी पंकज सुबीर ने समझा है। एक ऐसी ही ग़ज़ल के चंद अशआर देखें --

इक पुराना पेड़ बाकी है अभी तक गाँव में
इसलिए पुरवाई चलती है अभी तक गाँव में
शहर में रहते हैं बेटे कोठियों में और यहाँ
बूढ़ी माँ छप्पर में बैठी है अभी तक गाँव में
उसकी खुशियाँ भी हैं छोटी और छोटे ही हैं ग़म
ज़िंदगी मासूम बच्ची है अभी तक गाँव में
अब न घर अपना वहाँ और अब ज़मीनें भी

नहीं
हाँ मगर पुरखों की मिट्टी है अभी तक गाँव में

ग़ज़ल में पंकज का चेहरा बहुत ही पाक साफ दिखता है। यह जैसे उनकी मासूमियत का दर्पण हो। आज ग़ज़ल का हर तरफ़ बोलबाला है। हिन्दी ग़ज़ल के पाठ्यक्रम बन रहे हैं। उसने यथार्थ की बारीकियों के साथ समय की पीठ पर निशान दर्ज किए हैं। पंकज ने छोटी बड़ी दोनों तरह की बहर ग़ज़लों में आज़माई है और उन्हें कहने में कामयाबी पाई है। एक संयम और सामर्थ्य यह भी कि उनकी हर ग़ज़ल यहाँ लगभग सात-सात अशआर की हैं। यानी काफिये, रदीफ पर मास्टरी इस क़दर कि कोई भी शे'र एक दूसरे से उन्नीस न हो। अब तक कहानी, उपन्यास, यात्रा संस्मरण और संपादन में बेहतरीन मुकाम हासिल करने वाले पंकज शायरी में उतरे हैं तो भी जैसे पूरी तरह डूब कर। बोलचाल की ज़बान में रवाँ पंकज की ये ग़ज़लें अपने कथ्य में नहीं, अंदाज़ेबयाँ में भी उम्दा हैं तथा एक ग़ज़ल पढ़ते हुए दूसरी पढ़ने की ललक पैदा करती हैं।

000

कथ्य का मीठापन

शैलेन्द्र शरण

शब्द जो सार्वजानिक रूप से नहीं कहा जा सके। लिखने की बात तो सोची भी न जा सके ? और बात होगी, कोई यह शब्द दोस्ती में कह दे.. "हट बे"। अगर लिखे तो ? यदि आप साहित्यकार हैं और शीर्ष साहित्यकारों में गिने जाते तो ऐसा लिखने का सोच भी नहीं सकते। किन्तु पंकज सुबीर जी अपने संग्रह की पहली ही ग़ज़ल 'यही तो इश्क है' में ऐसा बेखटके लिखते हैं-

"तू अपने दिल को बोले जब के उसको भूल जा
तेरा दिल ये कहे 'हट बे' यही तो इश्क़ है।"

ग़ज़ल कहने का एक सलीक़ा होता है। ग़ज़ल गुरु माने जाने वाले पंकज जी की ग़ज़लों में सलीक़ा और गुरुवत्व के अतिरिक्त ग़ज़ल पर उनका अधिकार साफ नज़र आता है जबकि वे ग़ज़लगो न होकर शीर्ष के उपन्यासकार और कहानीकार हैं।

इसी ग़ज़ल से एक और शे'र-

"हवा, बरसात, ख़ुशबू, फूल, तितली, चाँदनी / तुझे लगने लगे अच्छे, यही तो इश्क़ है।"

शब्दों के समूह को ग़ज़ल की 'बह्र' में बाँधता, यह एक उल्लेखनीय शे'र है। ऐसे कई अशआर उनकी ग़ज़लों में ख़ूब मिलते हैं। पूरा जोख़िम उठाते हुए, अपनी दूसरी ग़ज़ल का आरंभ ही, वे इस तरह के शे'र से कर देते हैं। जबकि मत्ला अमूमन ऐसा नहीं मिलता :

"दर्द, तन्हाई, ख़मोशी, सर्दियों की शाम ये / एक मुसलसल सी है चुप्पी, सर्दियों की शाम ये।"

ग़ज़ल में यदि दो या तीन शे'र अच्छे हों तो उसे कामयाब ग़ज़ल मान लिया जाता है किंतु पंकज जी की ग़ज़लों में से कमज़ोर शे'र खोजना मुश्किल काम की तरह है।

देखा गया है सामान्यत: मत्ला के बाद दूसरा शेर या अंतिम शे'र या मक़ता वज़नदार पढ़ने को या सुनने को मिलता है। किन्तु यहाँ ऐसा नहीं है। ग़ज़ल का मतला ही कुछ यूँ होता है कि पाठक लुटने के बाद शेष ग़ज़ल पढ़कर खुद को पूरी तरह भरापूरा महसूस करने लगता है। एक ही ग़ज़ल में पत्थर या किसी अन्य संज्ञा को लेकर कोई भी शायर कहेगा तो शायद एक ही शे'र कहेगा। यदि दो कहेगा तो संभवत: एक या दो शे'र के बाद। किन्तु पंकज जी लगातार दो शे'र एक ही शब्द "पत्थर" को लेकर लगातार कह देते हैं वो भी अलग-अलग मिज़ाज में। वैसे इस लाजवाब ग़ज़ल को पूरा ही उद्धरत किए बिना लेखक के साथ न्याय नहीं किया जा सकता।

घर के अंदर, घर के बाहर लगता है
तानाशाह को हरदम बस डर लगता है।
हँसते-हँसते रो देता, रो कर हँसता
पागल है या कोई शायर लगता है।
कितने दरिया होते हैं उसके अंदर
जो बाहर से फूटी गागर लगता है।
इश्क़ है ये उसको भी लगता है ऐसा
हमको भी तो ये ही अक्सर लगता है।
हमको ही आकर लगता है जो पत्थर
उसका भी इल्ज़ाम हमीं पर लगता है।
अपने हैं सब मान ये लेते हैं जब हम
तब ही आकर कोई पत्थर लगता है।
हम 'सुबीर' कैसे अब आग लगाएँ भला
हमको हर घर अपना ही घर लगता है।

पंकज सुबीर जी की एक और ख़ासियत है वे किसी भी विधा में सीधा-सीधा कहने में विश्वास रखते हैं। घुमा-फिराकर या ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं करते जिसे समझने में मुश्किल पेश आए। उर्दू के भी ऐसे शब्द इस्तेमाल करते हैं जो चलन में हैं और जिनके अर्थ खोजने हमें शब्द-कोष में नहीं झाँकना पड़ता।

ग़ज़ल लिखना सीखने में ही उम्र का एक हिस्सा चला जाता है। लेखन और व्यावसायिक व्यस्ताओं के बावजूद वे कैसे और कब ग़ज़ल लिख लेते हैं और ग़ज़ल की दो किताबें भी लाकर रख देते हैं, यह शोध का विषय हो सकता है। उनकी ग़ज़लों में ग़ज़ब का सौंदर्य बिखरा पड़ा है। एक उदाहरण देखें-

सजा कर जुल्फ़ में तारे, पहनकर चाँदनी निकलो
अँधेरे को मिटाने ऐ उजाले की परी निकलो।
यहाँ सोया है कोई जो तुम्हारा, बस तुम्हारा था
यहाँ इक पल ठहर जाना, यहाँ से जब कभी निकलो।
'सुबीर' इस शहर की फ़ितरत है तिल का ताड़ कर देना
गली से जब मेरी निकलो तो बन कर अजनबी निकलो।

ऐसा नहीं है कि कठिन अल्फ़ाज़ और माने वाली शायरी पसंद नहीं की जाती, किन्तु शायरी में वो शे'र ज़्यादा पसंद किए जाते हैं जिनके शब्द सहज और भाषा सरल होती है किन्तु अर्थ गहरे हों। क्योंकि शायर की बात सीधे-सीधे पाठक तक पहुँचनी चाहिए। पंकज सुबीर जी की ग़ज़लों की यही सहजता पाठक को मोह लेती है। उनकी ग़ज़लें जीवन के अच्छे-बुरे अनुभवों और प्रेम की अनुभूतियों को बड़ी ख़ूबसूरती से बयाँ करती हैं।

पूरा-पूरा सब हो जाए ऐसा कब हो पाता है / कोई अधूरापन-सा अक्सर सबमें छूट ही जाता है
शायद है उस पार भी कोई मेरे जैसा दीवाना /

सारी रात वहाँ भी कोई दर्द के नग़मे गाता है।

सियासत पर उँगली उठानी हो तो भी पंकज सुबीर का कोमल मन, अपनी बात उसी भाषा में बोलता है। वे अपनी भाषा में आक्रामक होते दिखाई नहीं पड़ते। अपनी एक ग़ज़ल में जहाँ सीधे-सीधे कहते हैं कि "तानाशाह को हरदम बस डर लगता है" वहीं एक ग़ज़ल में अपनी बात कुछ इस तरह रखते हैं-

ज़रा बादल के पीछे छिप गया कुछ देर क्या सूरज
उठा कर फ़ायदा मौक़े का जुगनू बन गया सूरज।
अँधेरे को अँधेरे में समर्थन दे रहा है वो
जिसे सब लोग कहते थे के ये है शर्तिया सूरज।

या यह कि-

पोस्टर चिपके हैं ये दीवार पर / कर यकीं तू मुल्क की सरकार पर।
पाँव चादर से बढ़ाये आपने / और तोहमत ठोंक दी बाज़ार पर।
है सियासत ने ख़रीदा हर क़लम / अब करें कैसे यकीं अख़बार पर।

या फिर यह कि- आपसे पहले है मरना सैनिकों को / यूँ नहीं इतना डरें जिल्ल-ए-इलाही।

एक ग़ज़ल में वे कहते हैं-

हो गया फ़रमान जारी राजधानी से नया
बेइजाज़त ख़्वाब को देखना है अब मना।

पंकज सुबीर ने भले ही इस किताब का नाम "यही तो इश्क़ है" दिया हो किन्तु उनकी ग़ज़लों की यह किताब विविध रंगों से सजी है। प्रेम जैसे विषय पर तो उनका पूरा-पूरा हक़ बनता है। पिछले दिनों वागर्थ में प्रकाशित उनकी एक अद्भुत प्रेम कहानी "डायरी में नीलकुसुम" पढ़ी और यह कहानी मन में ऐसी रची-बसी कि गाहे-बगाहे याद आ ही जाती है। प्रेम पर कुछ ऐसी ही ग़ज़लें इस संग्रह में हैं जो मन पर गहरी छाप छोड़ने में सक्षम हैं। पंकज सुबीर का एक गज़ल संग्रह "अभी तुम इश्क में हो" के बाद यह दूसरा संग्रह है। कहन के अंदाज़ कथ्य के मीठेपन के कारण ये ग़ज़लें बार-बार पढ़ी जा सकतीं हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

कबूतर का कैटवॉक

(संस्मरण)

समीक्षक : ब्रजेश कानूनगो

लेखक : समीक्षा तैलंग

प्रकाशक : भावना प्रकाशन,दिल्ली

भावना प्रकाशन,दिल्ली से प्रकाशित सुश्री समीक्षा तैलंग की नई किताब कबूतर का कैटवॉक को क़िस्सागोई और संस्मरण का संग्रह कहा गया है। इसमें उनके दुबई प्रवास के दौरान वहाँ की गई यात्राओं, सप्ताहांत (वहाँ शुक्रवार) को घर से निकल कर प्रकृति के बीच समय व्यतीत करने के कुछ सुंदर शब्द चित्र हैं। कुछ आलेखों में वे बाहर के दृश्यों के साथ-साथ अपने मन के भीतर की यात्रा भी करती चलती हैं। कुछ कुछ दार्शनिकता की टॉर्च लिए अपने ही भीतर के समुंदर में उतरती जाती हैं।

संग्रह का पहला ही आलेख इस दृष्टि से प्रभावित करता है और आगे पढ़ने को लालायित भी। अंतर में उतरकर भी वस्तुत: वे आँखों से नज़र आने वाले उन्हीं ख़ूबसूरत नजारों की सैर करवाती हैं जो कोई गोताखोर मास्क,ऑक्सीजन लगाकर प्रत्यक्ष निहारता है।

इसी तरह की हवाखोरी और सैर सपाटों के रोचक विवरण पढ़ना रुचिकर लगता है। लेखिका ने अपने निरीक्षण को मौज मस्ती की तरह न लेकर एक रचनाकार की दृष्टि से अभिव्यक्त किया है, कई जगह किसी संवेदनशील कवि की तरह तो कहीं व्यंग्यकार की चुटकी की तरह भी वे टिप्पणी करती दिखाई देती हैं। भाषा और उसकी बुनावट बढ़िया है और पाठक को बाँधे रखती है। दुबई के अलावा दुबई से भारत यात्रा एवं हाल फिलहाल पुणे निवास के घर और अपने एकाकीपन से उपजे कुछ संवेदनाओं से भरे दृश्य भी इस संग्रह का हिस्सा बने हैं।

समीक्षा जी का पक्षी मन अपनी किताब के ज़रिये एक कबूतर बनकर दृश्यों को निहारता है, ख़ूबसूरत दृश्यों के साथ पाठक के भीतर उतरता है, कैट वाक करता है। परिजनों के साथ आनन्दित होता है कुछ दृश्यों में उदास भी हो जाता है। दृश्य को व्यक्त करने वाले एक,एक कथन की छाया में लेखिका अनेक रोचक कथन बुनकर उसे विस्तार देने में बहुत समर्थ हैं। मेरा मानना है इस कौशल के पीछे निश्चित ही उनका नारी मन ही नहीं उनकी एक व्यंग्यकार, पत्रकार की व विशिष्ट आध्यात्मिक दृष्टि भी निहित है।

एक बात जो मुझे ज़्यादा न सुहाई वह आलेखों के साथ श्वेत श्याम सामान्य फ़ोटोग्राफ्स दिया जाना है। फ़ोटोग्राफ्स के साथ पुस्तक का प्रोडक्शन बहुत अलग तरीक़े से उन्नत तकनीक से होता है, एक एलबम की तरह। यहाँ लेखिका खुद समर्थ हैं और अपने शब्द चित्रों से पाठक के सामने साक्षात् दृश्य उपस्थित कर देती हैं।

000

ब्रजेश कानूनगो, 503,गोयल रिजेंसी, इंदौर 452018
मोबाइल- 9893944294

पुस्तक समीक्षा

दुनिया लौट आएगी

(कविता संग्रह)

समीक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश

लेखक : शिव कुशवाहा

प्रकाशक : प्रलेक प्रकाशन, मुंबई

डॉ.नीलोत्पल रमेश
पुराना शिव मंदिर, बुध बाज़ार
गिद्दी -ए, जिला - हजारीबाग
झारखंड - 829108
मोबाइल- 09931117537,08709791120
ईमेल- neelotpalramesh@gmail.com

शिव कुशवाहा समकालीन हिन्दी कविता के महत्त्वपूर्ण युवा कवि हैं। इनके अब तक दो कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी कविताएँ समसामयिक परिवेश, वातावरण, समय, समाज, आसपास - सबका वर्णन करने में सक्षम हैं। एक ओर कवि दुनिया भर में फैले महामारी कोरोना से चिंतित है तो दूसरी ओर कवि को अब भी गाँव संभावनाओं से ओतप्रोत दिखाई पड़ता है। मानवीय संवेदना की तलाश करती इनकी कविताएँ जिजीविषा बचाए रखने में पूरी तरह सफल हुई हैं।

काव्य संग्रह की बीज रचना 'दुनिया लौट आएगी' से ही मैं अपनी बात प्रारंभ करना चाहूँगा। कोरोना ने पूरी दुनिया को घरों में सिमटकर रहने को विवश कर दिया था। मानव जाति इस वायरस से सुरक्षित नहीं है, लेकिन कवि भावी पीढ़ी को सुरक्षित देखना चाहता है। उसके अंदर आशान्विति बरकरार है। वह देखना चाहता है, पूरी दुनिया को लौट आने की, अपने मूल स्वरूप में। जैसा कि यह दुनिया पूर्व में थी। कवि लिखता है - 'संक्रमण के ख़तरनाक दौर में / जहाँ सुरक्षित नहीं है हम / लेकिन भविष्य की पीढ़ी को / सुरक्षित देखना चाहती हैं / हमारी आशान्वित आँखें / कि दुनिया लौट आएगी / जल्द अपने रास्ते पर / अभी हवाओं में ज़हर ज़्यादा है।'

'नदियाँ लौट रही हैं' कविता के माध्यम से कवि ने नदियों की निर्मलता की ओर पाठकों का ध्यान दिलाया है। नदियाँ पूरी तरह प्रदूषित हो गई थीं। उसका पानी किसी काम के लिए उपयोगी नहीं रह गया था। लेकिन कोरोना ने लोगों को घर में क़ैद कर दिया तो नदियाँ भी लौट आईं अपने वास्तविक स्वरूप में। वातावरण में चारों और ज़हर घुल गया था। आसमान धुँधला-धुँधला-सा हो गया था। वह एकदम साफ हो गया है। चाँद भी साफ-साफ दिखने लगा है। फूलों की ख़ुशबू चारों ओर फैल रही है। पक्षियों की चंचलता बढ़ गई है। अब वे बेखौफ़ होकर दाना चुग रहे हैं। यही कारण है कि प्रकृति भी अतीत को भूल कर वर्तमान को सँभालने में लग गई है। कवि ने लिखा है - "दशकों बाद स्रोत के मुहाने रिस रहे हैं / नदियाँ लौट रही हैं अपनी धारा के साथ / लहरें कुछ अधिक नर्तन कर रही हैं। / प्रकृति अतीत के झरोखे से उतर कर / सँवार रही है अपना वर्तमान / जिससे कि वह बचा सके / अपने भविष्य की पीढ़ी का शुक्ल पक्ष।"

'गाँव अब भी संभावना है' कविता के माध्यम से कवि ने गाँव की विराटता का वर्णन किया है। गाँव में बहुत कुछ अभी ज्यों-का-त्यों बरक़रार है। कवि गाँव की संभावनाओं की ओर पाठकों का ध्यान दिलाना चाहता है। लॉक डाउन की वजह से बेरोज़गार हुए लोग गाँव लौट आए थे। गाँव ने उन्हें अपनी जड़ों में रोप लिया है। उनके निवाले के लिए गाँव में अनेक संभावनाएँ बरकरार हैं। अब ये मज़दूर भी गाँव की सभ्यता, संस्कृति के अंग बन जाना चाहते हैं। जिसे छोड़ कर यह वर्षों पहले चले गए थे, रोज़ी-रोज़गार के लिए बाहर। ये मज़दूर मीलों पैदल चलकर लौट आए हैं, अपनी जड़ों की ओर। जब ये लौट ही आए हैं तो गाँव ने भी इन्हें सब साधन देकर अपना लिया है, जिसकी आस में ये आए थे। कवि ने लिखा है - "जैसे अपनी जगह से उखड़े हुए पेड़ / फिर दूसरी जगह मिट्टी और पानी पाकर / हो जाते हैं लंबवत / ठीक उसी तरह गाँव लौटे हुए लोग / खड़े होना सीख रहे हैं अपनी ज़मीन पर / अभी सब कुछ ख़त्म नहीं हुआ है उनके लिए / वे चल दिए हैं खेतों की ओर / हाथ में खुरपी फावड़ा और कुदाल लेकर / अब क़तई इंकार नहीं किया जा सकता / कि वे तलाश ही लेंगे अपनी भूख के लिए ईंधन / शहरों से बेदख़ल हुए लोगों के लिए / गाँव अब भी संभावना है।"

'अँधेरे के खिलाफ़' कविता के माध्यम से कवि ने कवि-कर्म की सार्थकता की ओर पाठकों का ध्यान दिलाया है। कवि की कविता हमेशा अँधेरे के खिलाफ़ होती है। उसकी कविता प्रकाश के साथ होती है। आम लोगों के मन में जीवन की कला को व्यक्त करती हुई कवि की कविता अभिमन्यु की तरह लड़ती रहती है, न्याय के लिए। भले ही इसके लिए जीवन का मोल ही चुकाना क्यों न पड़ जाए। वह हमेशा अन्याय के विरुद्ध लड़ता रहता है, अपनी अंतिम साँस

तक। कवि लिखता है- "कवि अपनी अंतिम साँस-प्रश्वास तक / डटा रहता है अँधेरे के खिलाफ़ / समय की इबारतों को बख़ूबी पढ़ते हुए / बुझती राख की चिंगारी में / सुलगता रहता है अंदर ही अंदर।"

'जाति श्रेष्ठता का ब्लैकहोल' कविता के माध्यम से कवि ने जातिगत श्रेष्ठता की भावना के कारण मारे जा रहे प्रतिभाओं की ओर पाठकों का ध्यान केंद्रित किया है। समाज में व्याप्त जातिवाद की भावना के कारण असमय ही प्रतिभा से लैस युवा काल के गाल में समाते जा रहे हैं। कॉलेजों, विश्वविद्यालयों और समाज में भेदभाव की भावना इस तरह घर कर चुकी है कि मानव जाति के लिए घातक सिद्ध हो रही है। जातिगत भावना ने प्रतिभाओं को ब्लैक होल में डाल दिया है। कवि कहता है कि- "जाति श्रेष्ठता का ब्लैक होल / निगल चुका है देश की प्रतिभाएँ / रोहित वेमुला या कि पायल तड़वी / तक ही सीमित नहीं है / बल्कि अतीत के झरोखों में / लिपिबद्ध है इसका काला इतिहास।"

'बलात्कारी भेड़िए' और 'चिड़ियाँ डर रही हैं' कविता के माध्यम से कवि ने लड़कियों के साथ किए जा रहे अनैतिक कार्यों की निंदा की है। सभ्य समाज में ऐसे चरित्र के पुरुषों की आवश्यकता नहीं है जो इन अबोध बच्चियों के साथ बलात्कार करके क्षत-विक्षत कर उन्हें नोंच डालते हैं। बच्चियाँ डरी हुई हैं और बलात्कारी भेड़िए लार टपका रहे हैं, शिकार करने के लिए। यही कारण है कि कवि बच्चियों से हथियार उठाने का अनुरोध करता है ताकि वे बलात्कारी भेड़ियों का शिकार कर सकें। कवि ने स्पष्ट कहा है- "क्रूरता की पराकाष्ठा अब पार कर गई है / बच्चियों की अस्मिता के रक्षार्थ / उठाने होंगे अब हमें हथियार / करना होगा शिकार / बर्बर हो चुके बलात्कारी भेड़ियों का।"

'प्रेम में डूबना जान पाया हूँ' कविता के माध्यम से कवि ने प्रेम की अनुभूतियों को महसूसा है और उसी का वर्णन किया है। प्रेम की अनुभूति एक रोमांच से कम नहीं है। यह एक अव्यक्त एहसास है जिसे महसूस किया जा सकता है। कवि को प्रेम के बारे में पता नहीं था लेकिन जब वह प्रेम में पड़ गया तो उसने प्रेम में डूबना सीख लिया। यही कारण है कि प्रेम बेरंग हो रही दुनिया में खुशियाँ भर देता है। कवि ने लिखा है - "प्रिये! / मैं प्रेम लिखना नहीं जानता था / और न प्रेम की कविता करना ही / किंतु प्रेम में डूबना जान पाया हूँ / कि तुम्हारे प्रेम में मुझे / कविता करना सिखा दिया है और प्रेम करना भी।"

'स्त्री संवेदना की महानदी है' कविता के माध्यम से कवि ने स्त्री की विराटता का वर्णन किया है। स्त्री के माध्यम से ही संवेदना का विकास हुआ है। अगर स्त्री स्त्रियोचित व्यवहार न करे तो मानव जीवन का बहुत कुछ अलिखित ही रह जाएगा। वह अपने दुखों को भुलाकर दूसरों के लिए खुशियाँ ही लुटाती रहती है। स्त्री की इस अनुभूति को कवि ने इस तरह लिखा है- "अपने जीवन के अलिखित दस्तावेज़ / सहेज लेती है अंतस के किसी कोने में / और वेदना का महाकाव्य रचते हुए / समेट लेती है दुनिया को अपने आँचल में।"

'बुद्ध होना कठिन है' कविता के माध्यम से कवि ने बुद्ध के व्यक्तित्व का वर्णन किया है। अब बुद्ध जैसा महामानव का होना एकदम कठिन हो गया है। उनके द्वारा मानव कल्याण के लिए किए गए कार्य कभी मिटाए नहीं जा सकते। संस्कृतियों के टकराने से सभ्यताएँ कभी ख़त्म नहीं होती हैं, वह बची रहती हैं। कवि ने लिखा है -

"संस्कृतियों के टकराने से सभ्यताएँ ख़त्म नहीं होतीं / बची रहती हैं उनकी कलगियाँ / उर्वर धरातल पर / जमी रहती है मज़बूती से अपनी जड़ के साथ / अब इस दुनिया में बुद्ध होना उतना ही कठिन है जितना कि सागर की लहरों को गिनना।"

'संवेदना के सूखते दरख़्त' कविता के माध्यम से कवि ने मानवीय संवेदना के ख़त्म होने की बात की है। आज की दुनिया विश्व की होड़ में शामिल हो गई है। लेकिन रिश्ते नाते के बंधन एकदम ख़त्म हो गए हैं। हम अपने को सभ्य और शिक्षित कहते हैं लेकिन हम इतने असंवेदनशील हो गए हैं कि हमें अपने सिवाय और कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता है। यही कारण है कि हमारा समाज विखंडन की ओर बढ़ रहा है। हम संवेदना से सिक्त बात सुनने के लिए लालायित रहते हैं। कवि ने इसे इस प्रकार व्यक्त किया है - "ग्लोबल होती हुई दुनिया के / महानगरीय बोध की चकाचौंध में / आँखों पर बँधी हुई पट्टी / जो नहीं देखती / टूटे हुए घरौंदे का दर्द / वह नहीं देखती / मानवीय संवेदना के सूखते हुए दरख़्त /और खो रहे विश्वास के बीच / टूट रहा है आज अपना परिवेश।"

'तुम बन सको तो' कविता के माध्यम से कवि ने मनुष्यों से पहाड़, पेड़, चिड़िया, नदी और कवि बनकर पीड़ा को महसूसने का अनुरोध किया है। वह कहता है कि किसी के दर्द को महसूसना हो तो तुम वह चीज़ बन कर उसके दर्द को महसूसो, उसकी भावना से अपने को समाहित करके देखो तो तुम्हें सब कुछ दिखाई पड़ने लगेगा। वह कवियों से अनुरोध करता है कि तुम कवि बनकर कवियों पर छाए भय को व्यक्त करो क्योंकि कवि की लेखनी बहुत-सी बातें लिख नहीं पाती है। कवि ने लिखा है - "तुम बन सको तो एक कवि बनना / और लिखना अपनी लेखनी से / शब्दों पर उगी हुई सघन पीड़ा /और कविता में बिखरे हुए अनकहे भाव।"

'दुनिया लौट आएगी' कविता-संग्रह में शिव कुशवाहा की पचपन कविताएँ संकलित हैं। ये कविताएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर प्रशंसित हो चुकी हैं। इनकी कविताएँ हमारे समय और समाज को अभिव्यक्त करने में पूरी तरह सक्षम हैं। इस कविता संग्रह की कविताओं के साथ पाठक इस तरह से जुड़ते चले जाते हैं जैसे उन्हें उनका ही अनुभूत सत्य हो जो उनकी आँखों के सामने साक्षात दिखाई पड़ रहा हो। ये कविताएँ इतनी सहज और सरल हैं कि पाठकों को अनायास ही अपना बना लेती हैं। पाठक कवि की भाव-भूमि को अनायास ही महसूसने लगता है और वह अपने को उसका भोक्ता समझने लगता है,यही इन कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता है। इस कवि में अपार संभावनाएँ हैं। स्वागत है शिव कुशवाहा की कविताओं का हिन्दी साहित्य जगत् में!

000

पुस्तक समीक्षा

पीठ पर रोशनी

(कविता संग्रह)

समीक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश

लेखक : नीरज नीर

प्रकाशक : प्रलेक प्रकाशन, मुंबई

डॉ.नीलोत्पल रमेश
पुराना शिव मंदिर, बुध बाज़ार
गिद्दी -ए, जिला - हजारीबाग
झारखंड - 829108
मोबाइल- 09931117537,08709791120
ईमेल- neelotpalramesh@gmail.com

'पीठ पर रोशनी' नीरज नीर का दूसरा कविता-संग्रह है जो हाल ही में प्रकाशित होकर आया है। कवि-कथाकार नीरज नीर की कविताएँ अपनी अनूठी काव्य शैली, नवीन बिम्ब योजना और भाषा की सहजता के कारण पाठकों के बीच ज़्यादा लोकप्रिय हैं। ये वैसे कवि हैं जो अपनी स्पष्टवादिता के लिए जाने जाते हैं। यानी इन्हें झूठ को झूठ और सच को सच कहने में तनिक भी देर नहीं लगती है। यही कारण है कि इनकी कविताओं में वर्तमान समय की हनक महसूस की जा सकती है। इनकी कविताओं का मुख्य स्वर एक तरफ जनपक्षधरता है तो दूसरी तरफ प्रेम की गहन अनुभूति भी है।

'पीठ पर रोशनी' में नीरज नीर की ६६ कविताएँ संकलित हैं। ये कविताएँ साहित्य की विभिन्न उत्कृष्ट पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर प्रशंसित हो चुकी हैं। इन कविताओं के माध्यम से कवि नीरज नीर ने समसामयिक परिवेश को अभिव्यक्त करने की धारदार कोशिश की है। यह परिवेश कवि के आसपास का भी है और देश की वर्तमान परिस्थितियों का भी है, जो कवि को लिखने के लिए बाध्य करते हैं। कवि नीरज नीर ने अपनी कविताओं के बारे में अपनी बात में लिखा है - "मेरी कविताएँ मेरे नितांत निजी अनुभवों, संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है, जो व्यष्टि से समष्टि की ओर उन्मुख होने का प्रयत्न करती है, कुछ सफल होती हैं, कुछ असफल ...सिर्फ अपने लिखे से पढ़ने वाले को चमत्कृत करना, बिम्बों का ऐसा जाल बुनना, जिसमें कविता का अभिप्राय ही गुम जाए, ऐसी मेरी कोई मंशा नहीं है मेरे लिए मेरी कविताएँ उदासियों के अँधेरे घेरे से बाहर, उजाले में निकलने की जीवंत कोशिश है।" बात स्पष्ट है कि कवि पाठकों को कविताओं से चमत्कृत करने की कोशिश करने के बजाय अपनी भाषा की सहजता से मोहित करता है। कवि की भाषा सहज, सरल और हृदयग्राह्य है, जो पाठकों को कविताओं के साथ जुडने में थोड़ी भी रुकावट नहीं डालती यानी पाठक कविताओं के अर्थ को समझने में परेशानी अनुभव नहीं करता है।

'पीठ पर रोशनी' शीर्षक नामित कविता से ही अपनी बात प्रारम्भ करना चाहूँगा। इस कविता के माध्यम से कवि नीरज नीर ने देश की असंतुलित प्रगति की ओर इशारा किया है। पूरबिया लोगों की पीड़ा, खासकर झारखंड के लोगों का दु:ख एवं विकास की दौड़ में उनके पीछे रहे जाने का दर्द बड़े ही मर्मांतक तरीक़े से इस कविता में व्यक्त होता है। कवि कहता है कि - "हमारे ही कंधे पर धरा है / विकास का जुआ / हम ढो रहे हैं, इसका भार / सलीब की तरह / और चल रहे हैं सामने की ओर मुँह करके / नज़रें झुकाए / और पीछे छूटता जा रहा है / हमारे अपने विकास का सपना / मिट्टी में ग़ायब होते / लीक की तरह..."

जिस प्रकार पूँजीवादी व्यवस्था में अथक एवं सतत श्रम करने के बाद भी एक मज़दूर बदहाली एवं ग़रीबी को झेलने के लिए अभिशप्त होता है, ठीक उसी तरह भारत में जिस तरह से विकास हुआ है, उसमें पूरबिया लोग अपने परिश्रम एवं हुनर के बाद भी छोटे स्टेशनों पर खड़े तेज़ी से भागते विकास की राजधानी एक्सप्रेस को बस देखते रहने के लिए विवश हैं। 'विकास का भार सलीब की तरह ढोना' अपने आप में गहरे भाव को अभिव्यंजित करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जितना गहरे कविता को ठहरकर पढ़ा जाए कविता उतने ही गहरे एवं अर्थपूर्ण भाव प्रकट करती है।

'सभ्यता का अंत' कविता के माध्यम से कवि नीरज नीर ने स्त्रियों की दुर्दशा से ही किसी सभ्यता के प्रगति का आकलन करने की कोशिश की है। स्त्रियों के प्रति किए गए दुर्व्यवहार की भयानकता को इस कविता में कवि ने बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। देश में स्त्रियों के साथ बलात्कार के बाद उनकी लाशों को जला देने की एक नई प्रवृत्ति विकसित हुई है। उसकी परत-दर–परत को खोलकर रख देती है यह कविता। कवि ने लिखा है कि - "जहाँ पड़ी हुई है / एक स्त्री की जली हुई लाश / वहीं देखना / वहीं से मिल जाएँगे तुम्हें / एक सभ्यता के पतन के निशान ... /समय की यात्रा करते हुए / हरेक विलुप्त सभ्यता के द्वार पर / तुम्हें पड़ी मिलेगी /

स्त्री की एक जली हुई लाश ..."

'विस्थापन' कविता के माध्यम से कवि ने प्रगति के नाम पर लोगों को विस्थापित करने की भयावहता को वर्णित किया है। कहा जाता है कि तुम्हें विस्थापित करके यहाँ बिजली घर बनाया जाएगा, जिसमें तुम्हें नौकरी दी जाएगी लेकिन इसके बाद की भयावह स्थिति की ओर कवि ने ध्यान दिलाया है कि खेत फ़सल के लायक़ नहीं रह गए हैं, उनकी उर्वरा शक्ति क्षीण हो गई है। यानी जिसके माध्यम से उजाला फैलाने का दावा किया जा रहा था, वह अँधेरा फैला रहा है, वहाँ के लोगों के जीवन में। कवि नीरज नीर ने उस ओर इशारा करते हुये लिखा है कि - "धान के खेतों में / पसरी हुई है / कोयले की छाई / दावा है चारों तरफ / बिजली की चमकदार रोशनी / फैलाने का / बनाया जा रहा है बिजलीघर / पर उसके जीवन में फैल रहा है अँधेरा ..."

'मुक्ति की चाह' कविता के माध्यम से कवि ने कविता की मुक्ति की बात की है। विभिन्न प्रकार के वादों एवं वैचारिक पूर्वाग्रहों से ग्रसित हिन्दी साहित्य की दुनिया में, जहाँ हर किसी के अपने मठ है, अपने–अपने क़िले हैं, जहाँ हिन्दी पुस्तकें आम जनों से दूर पुस्तकालयों की शोभा बनने को मजबूर हैं, कविताएँ पाठकों के लिए नहीं बल्कि आलोचकों के लिए लिखी जा रही हैं, कवि कहता है कि - "मुक्त होना चाहती है / कविता / विश्वविद्यालयों, पुस्तकालयों की / चारदीवारियों से, / वादों, विवादों की घेराबंदी से / लेखों और आलोचना की विषय-वस्तु से ..."

'बाज़ार' कविता के माध्यम से कवि ने समाज पर बाज़ारवाद के बढ़ते दुष्प्रभाव की ओर पाठकों का ध्यान दिलाया है। बाज़ार जिनके कंधों पर चढ़कर हमारे घरों में अपनी पहुँच बना रहा है, वे ही मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति से वंचित है। बज़ारवाद की पहुँच हमारे घरों तक हो गई है। इस बात को कवि ने बहुत ही सहजता से इस कविता में प्रस्तुत किया है। इसे इस प्रकार देखा जाए - "बाज़ार ने पैदा की है / नई नस्ल / जो स्वयं बाज़ार से दूर रहकर / बाज़ार को पहुँचा रहा है / हमारे घरों के अंदर / पसीने से लथपथ।"

'प्रवास से वापसी' कविता के माध्यम से कवि नीरज नीर ने कोरोना महामारी के दौरान प्रवासी मज़दूरों के पलायन की ओर पाठकों का ध्यान दिलाया है। ये मज़दूर अपने गाँव, घर को छोड़कर रोज़ी-रोज़गार के लिए प्रवास में गए थे लेकिन वैश्विक महामारी कोरोना ने इनका रोज़ी-रोज़गार छिन लिया। विवश होकर लौटना पड़ रहा है फिर वहीं, जहाँ से वे गए थे। इन्हें भरोसा है अपने लोगों पर कि गाहे-बेगाहे ये उनका साथ ज़रूर देंगे। कवि ने लिखा है कि - "वे वापस आना चाहते हैं, / उसी घर में / जहाँ घर जैसा घर नहीं है / विवशता है, लाचारी है / वही भूख, वही बेरोज़गारी है / जहाँ बूढ़े बाप के लिए दवाई नहीं है / जहाँ खेतों से कमाई नहीं है / वे जानते हैं, उनका स्वागत नहीं है / गाँव की गलियाँ क्लांत हैं / फिर भी साग-घास खोंट कर खाने के दृष्टांत हैं, / चार काँधों का भरोसा है ..."

'प्रेम का रिहर्सल' कविता में कवि जीवन की क्षणिकता के बरक्स प्रेम की विराटता एवं प्रेम के बिना जीवन की निरर्थकता को रेखांकित करते हुए कहता है - "अगर जीवन में मिलते मौके / रिहर्सल के / होते रिटेक, / मैं फिर से दुहराता / वही ग़लती / तुमसे प्रेम की। / कुछ ग़लतियाँ होती हैं / की जाने के लिए / बार-बार।"

'कौआ और कान' कविता के माध्यम से कवि ने 'कौआ कान लेकर भागा' लोकोक्ति को वर्तमान समय में चरितार्थ होते दिखाया है। आज एक नई रीति विकसित होती जा रही है कि लोग सोशल मीडिया पर किसी के द्वारा फैलाए गए झूठ को ही सच मान लेते हैं एवं उसके पीछे लग जाते हैं। वे उस ख़बर की सत्यता को परखना नहीं चाहते हैं। कवि कहता है कि - "तर्क, बुद्धि, विवेक को अँगूठा दिखाते हुए / दौड़ने में कोई पीछे नहीं छूटना चाहता है, / जो नहीं दौड़ रहे / वे कम-से-कम दौड़ते हुए दिखना चाहते हैं।"

"पीठ पर रोशनी" की कविताओं को नीरज नीर ने पाँच खंडों में विभाजित करके प्रस्तुत किया है, जिनमें पाँच विभिन्न तरह के विषयों/विमर्शों की कविताओं को संकलित किया गया है। आग की कविताएँ, जनपक्षधरता की कविताएँ हैं, इसमें आम आदमी के जीवन की पीड़ा, उनके संघर्ष एवं प्रतिरोध की अभिव्यक्ति हुई है। पानी की कविताओं में प्रेम विषयक कविताएँ हैं। जिस तरह पानी निर्मल होता है एवं जिधर ढलान मिले उधर ही बह चलता है लेकिन पहाड़ों, चट्टानों से टकराने से भी पीछे नहीं हटता उसी तरह का स्वभाव प्रेम का भी तो होता है। इस तरह से देखें तो प्रेम कविताओं को पानी की कविता शीर्षक में रखना अत्यंत अर्थपूर्ण है। संग्रह में स्त्री विमर्श की भी अनेक महत्त्वपूर्ण कविताएँ हैं, जिन्हें वायु की कविताएँ शीर्षक में रखा गया है। सच में स्त्री वायु की तरह ही तो होती है, जिनके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। स्त्री नेपथ्य में रहकर भी जीवन के लिए उसी तरह आवश्यक होती हैं, जैसे कि हवा। कुछ कविताएँ अध्यातम विषयक भी हैं, जिन्हें "आकाश की कविताएँ" खंड में रखा गया है। अध्यात्म के लिए आकाश से बेहतर निरूपण भला और क्या हो सकता था? इसी तरह क्षितिज खंड की कविताओं में वैसी कविताएँ हैं जो उपरोक्त किसी विषय से जुड़ी नहीं है, पर सत्य का बेलाग बयान करती है। जैसे 'हत्यारे' शीर्षक वाली इस कविता को देखें - "कुशल हत्यारे / नहीं छोड़ते हैं / हत्या की कोई शिनाख्त .. / पीढ़ियों के अभ्यास से / उपजती है / ऐसी लयबद्ध सिद्धहस्तता / कि लोग हत्या को भूलकर / करने लगें / चर्चा / हत्यारे की चतुराई और कला की ..."

इस तरह से विभिन्न विषयों को संग्रह में अलग -अलग खंडों में प्रस्तुत करना पाठक के लिए अत्यंत रुचिकर है।

संग्रह की कविताएँ इतनी, सहज, सरल व प्रवाहमयी हैं कि पाठक इनके साथ भावात्मक रूप से तुरंत ही जुड़ जाते हैं और कविता के साथ हो जाते हैं। ये कविताएँ अत्यंत पठनीय हैं। वर्तमान समय की कविताओं का कोई भी मूल्यांकन इनकी कविताओं के बिना अधूरा है।

000

पुस्तक समीक्षा

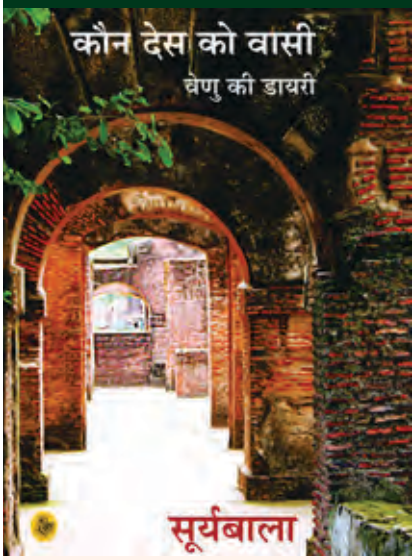

कौन देस को वासी

(उपन्यास)

समीक्षक : रंजना अरगड़े

लेखक : सूर्यबाला

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

रंजना अरगड़े
402, बिल्डिंग नंबर-2,
विंडसर अरालिया, होली क्रॉस स्कूल के सामने, कोलार रोड़,
भोपाल , मध्यप्रदेश 462042
मोबाइल- 9426700943
ईमेल- argade_51@yahoo.co.in

अगर हिन्दी महिला लेखन को एक यूनिट की तरह लिया जाए तो अभिव्यक्तियों, संबंधों, परिवार, राजनीति संबंधी विचारों, सामाजिक और दार्शनिक चिंतन, विद्रोह और समर्पण, भाषा वैभव, संस्कृति और शिल्प सजगता के ऐसे अद्‌भुत उदाहरण देखने को मिलते हैं कि हमें इस बात पर गर्व होता है कि हिन्दी महिला लेखन का वितान बहुत समृद्ध, गझिन और वैविध्य पूर्ण है। इसी वितान में सूर्यबाला का कथारंग अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। लेखन का एक समृद्ध लंबा अनुभव उनके पास है। लेखन का अर्थ ज़ाहिर है केवल भाषा नहीं होता। लेकिन अगर कथा साहित्य की बात की जाए तो उसके कहन में सिवा भाषा के और क्या होता है भला! मनुष्य के अन्तर्मन को उसके संघर्षों को भारतीय समाज के ताने-बाने को जितनी सूक्ष्मता से सूर्यबाला ने अपने उपन्यासों और कहानियों में इतनी सरल संरचनाओं में बुना है कि जवाब नहीं। एक बड़ी अजीब बात है अगर हम सोचते हैं कि सूर्यबाला के कथा- लेखन का वन लाईनर क्या हो सकता है- तो स्नेह अपनेपन और वात्सल्य का एक पारिवारिक भाव हमारी आँखों के सामने तैरने लगता है।

लेकिन क्या सरल लगने वाली संरचनाएँ और भाव भंगिमाएँ इतनी जटिल होती हैं? यह मेरा पहला प्रश्न है। यह प्रश्न मैं अपने आप से भी कर सकती हूँ पर कर आपसे रही हूँ क्योंकि यह सारा जो रचा है वह मैंने नहीं रचा। यह आपने रचा है और इसीलिए इसकी जवाबदेह आप ही तो होंगी न? क्या हम उन सारे अनबूझे सवालों के लिए जब-तब ईश्वर को तलब नहीं करते कि यह तेरा संसार है तू ही जवाब दे कि आख़िर ऐसा क्यों! पर चूँकि वह होता है भी या नहीं इसके विषय में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता और अगर होता है तो दिखता नहीं। वह संदेह के दायरे में है अत: उससे केवल जवाब-तलब किया जा सकता है, उसे कटघरे में खड़ा नहीं किया जा सकता। बहुत हुआ तो उसे फ्रेम से बाहर कर दिया, कभी न देखे जाने वाले उस आले में रख

दिया जहाँ हम कबाड़ रखते हैं। पर यह नौ खंडों में जो रचा गया है, आपका रचा है- आप- श्रीमती सूर्यबाला लाल। हिन्दी की महत्त्वपूर्ण कथा लेखिका। व्यंग्य में महारत है जिन्हें ऐसी। जिन्होंने मुझे आज तक अपने सरल रचनाविधान से और सरल सहज भावभंगिमा से, उपस्थिति से इस भुलावे में डाला कि सूर्यबाला जी पर तो कभी भी लिखा जा सकता है। कैसी तो लुभावनी सरल सी कहानियाँ, इतनी सच्ची कि दिल को छू जाएँ, बहुत मशक्कत नहीं करनी पड़ती कथा सूत्र के जोड़ बैठाने की। बस वैसी ही सीधी सादी बातें जो हमें अच्छी लगती हैं और अब धीरे-धीरे हमारे परिवेश से ओझल होने की तैयारी में हों या फिर विमर्श और रचना विधान की अति बौद्धिकता में कहीं दूर जा छिटकी हों। हमारा ध्यान ज़िंदगी की उन ज़रूरी बातों की तक ले जाती है, हमें बताती है कि भाई, लोग इस्तेमाल करने के लिए नहीं होते और यह भी कि तमाम विपरीतताओं में जीवन जीने का माद्दा रखते हैं वे लोग जिनके पास बहुत कुछ नहीं होता। जीवन जीने की कला उन में भी, और शायद उनमें ही है जिनके हाथों से जीवन अब छूटा तब छूटा होता दिख रहा है। सूर्यबाला जी आपका कथा साहित्य पढ़ते हुए मुझे हमेशा यही तो लगा है।

आपकी 'यामिनी कथा' मैंने सबसे पहले पढ़ी थी। मुझे चकित किया था उस छोटे उपन्यास ने- फिर कहीं पढ़ा किसी ने उसे लंबी कहानी की श्रेणी में रखा है। वह जो भी था लंबी कहानी या छोटा उपन्यास- उसमें यामिनी के जीवन के अंदर बाहर के चित्र मुझे हमेशा याद रहते हैं। अपने दूसरे जीवन में अपने देहभावों और अपने प्रथम जीवन से प्राप्त पुत्र के मनोभावों के साथ नए साथी की अपेक्षाओं का संतुलन रचती यामिनी मुझसे भूलती नहीं है। एक ग़ज़ब बात आपमें यह है कि आपकी कहानियाँ हमारी पाठकीय स्मृति के कोनों दरारों में फँसी पड़ी रहती हैं। और गाहे-बगाहे हमें याद आती रहती हैं। कई बार पता लगाना मुश्किल हो जाता है कि यह जो स्मृति-पटल पर कौंध रहा है वह आपकी कहानी है या हमारा ही कोई अनुभव- चाहे भोगा हुआ न हो पर हम पर से हो कर गुज़रा हो, वह है। इसीलिए चाहे कहानी के नाम शीर्षक याद न हों पर कहानियाँ अपने दृश्यों और प्रभाव में हमारी स्मृति का हिस्सा बन जाती है।

२

आपने कहा है कि यह वेणु की डायरी है। अर्थात् डायरी शैली का प्रयोग किया है। रोज़नामचे का नहीं। फिर मन में जो दर्ज़ होता है वह कहाँ सिलसिलेवार होता है। आगे-पीछे होता रहता है। मानसिक समय और भौतिक समय में यही तो अंतर है। स्वाभाविक है कथा का एक वृहत् हिस्सा अमरीका में घटित होता है तो डायरी वेणु की ही होगी। पर न जाने क्यों पढ़ते हुए ऐसा लगता रहता है कि यह माँ की भी डायरी है। और इस उलझन का जवाब आपने उपन्यास में दे दिया है जब मेधा वेणु से कहती है- 'तुममें तुम हो ही कहाँ वेणु। तुममें पिचहत्तर प्रतिशत तो तुम्हारी माँ ही वास करती है न' (पृ- २७५) लेकिन एक हद के बाद यह गौण हो जाता है। पढ़ने के प्रवाह में पाठक खिंचा चला जाता है।

वेणु की डायरी को पढ़ती हूँ तो मुझे सहसा लगता है कि इसकी बुनावट एक बहुत लंबे सपने जैसी है। सपनों की बुनावट बड़ी गझिन होती है। एक दृश्य कब समाप्त हुआ कब दूसरा शुरू हुआ पता नहीं चलता। ऐसी ही गझिन बुनावट वाला है यह नौ खंडी साम्राज्य। फ्रेमवर्क बड़ा परफेक्ट है। जैसे नींद का होता है। आप सोने जाते हैं, सोने की कोशिश करते हैं, पूर्व निद्रा, आरंभिक निद्रा गहन निद्रा पछीत निद्रा... इसी के बीच तो सपने आते हैं। सपने कभी नींद के फ्रेमवर्क से बाहर थोड़े ही आते हैं। कैसे भी क्यों न हों, दुख, भय, अकेलेपन, उदासी, चिंता, प्रेम आनंद भरे, पर नींद के फ्रेमवर्क से बाहर नहीं होते। ऐसा ही लगा 'कौन देस के वासी' पढ़ते हुए। कितने भाव संसार रचे हैं आपने। जैसे एक रात में हम यों एक सपना देखते हैं पर उसी में कई सपने होते हैं वैसे ही यह एक पूरा उपन्यास होते हुए कितने सारे उपन्यास यानी कथाबीज अपने में समेटे हुए है। अंतरकथाएँ अथवा उपकथाएँ। उपकथाएँ कम अंतर्कथाएँ ही अधिक। माँ वेणु और मेधा की कथा में वसु का एक अलग छोटा उपन्यास, लोकेन्द्र का अलग और कात्यायनी का- उसको तो छूआ भर है आपने पर एक उसका भी बनता है। चंद्रा साहब के परिवार का अलग। बेटू-सैंड्रा का अलग क़िस्सा जो अपने आप में एक लघु उपन्यास है। आपने रेखाएँ ही तो खींची हैं। उनमें रंग भी भरे जा सकते हैं। जहाँ हल्के रंग है उन्हें गहराया भी जा सकता है कहीं-कहीं। जैसे एक विशाल नदी में मिलती अनेक छोटी जल धाराएँ। लेकिन ग़ज़ब किया है आपने। कथासरितसागर की तरह कथा में से कथा निकले और मूल कथा तो चलती रहे। हाँ भई, ठीक वैसे नहीं है, माना मैंने, पर एक छाप ऐसी ही पड़ी। आप कह लें इंटर-टेक्सच्युलिटी। उपन्यास की संरचना बड़ी विशिष्ट है। नौ खंडों में कथा विभक्त है। पहले भूमिका है अंत में उपसंहार।

भाई, बड़ी जादूगरनी निकलीं आप तो। टोपी से रंगबिरंगी चिड़ियाँ, रूमाल और खरगोश निकालते-निकालते कब पूरा जंगल खड़ा कर दिया पता ही न चला। अब भुगतिए फिर- बहुत अच्छा लगता है न आपको सूर्यबाला का कथा साहित्य ! आप ऐसी भी जादूगरनी नहीं हैं जो झूठ के साम्राज्य पर खड़ी हैं। जो रचती हैं कितना सही और हमारे आस-पास का रचती हैं। जिसको हमने या तो नज़रअंदाज़ कर दिया है या हमारी नज़र से ओझल हो गया है या हमारे बोध के बाहर हो। तो यह जो जंगल खड़ा किया है आपने अब आपकी जादू की टोपी में सिमटेगा नहीं! अब तो वह हम सरीखे पाठकों के मन-ज़ेहन में उतर गया है। किस-किस के ज़ेहन में जा-जा कर उसे समेटने का उपक्रम करेंगी, सूर्यबाला जी। छोड़िए भी यह कोशिश। यह जो नौ खंडों में फैलाया हुआ संसार रचा है आपने, बहुत अद्भुत है।

३

कुछ तो आपने इसमें ग़ज़ब के जक्सटापोज़ दिए हैं। जाने या अनजाने यह तो आपका रचनाकार जाने। गुप्तानी के चरित्र को मेधा के बराबर ला कर खड़ा कर दिया जहाँ तक अमरीका के प्रति प्रेम का प्रश्न है। एक

तरह कहा जाए कि गुप्तानी मेधा का ग्राम्य रूप है। पर यह इतना भी सरल और सपाट नहीं है। गुप्तानी करती तो क्या करती। नाकारे बेटे को स्वामीजी ने रास्ते पर ला दिया, यही क्या कम है। पर मेधा तो ब्राह्मण कुलोद्भव, सुसंस्कारी शुक्ला परिवार की पुत्रवधू है। आपने एक बहुत अच्छी बात यहाँ रखी है। जीवन में प्राथमिकताएँ किसकी क्या हैं यही प्रकट करता है कि किसके संस्कार कैसे हैं। यह अनुभव हमें आज लगभग सभी को अपने परिवारों में होता ही है। बच्चे माँ-बाप की तरह नहीं सोचते इसीलिए भी परिवार आगे बढ़ते हैं। वरना तो स्थिर जल की तरह मृत हो जाए। यूँ तो यह पूरा उपन्यास जिस फलागम को प्राप्त करता है वह भी एक जक्सटापोज़ ही रचता है। आरंभ में अमरीका जाता वेणु और उपन्यास के अंत में भारत जाता बेटू – बेटू के लिए तो भारत विदेश ही हुआ न! पुत्र विरह जैसा माँ को हुआ था वैसा मेधा को भी होता है। और मज़े की बात यह है कि दोनों वेणु और बेटू- अपने बेहतर करीयर के लिए ही तो विदेश गए।

मेधा और वसु का जक्सटापोज़। पाँचवें खंड में चत्रित है। यूँ तो पूरा उपन्यास अच्छा है पर मुझे व्यक्तिगत रूप से पाँचवाँ खंड बहुत अच्छा लगा। शादी के बाद पहली बार भारत आए वेणु मेधा और फिर जो कुछ घटित हुआ वह पहाड़ी ढलान से उतरने जैसा है। पहले खंड से चौथे खंड तक उपन्यास कथा का, भावनाओं का और प्रसंगों के आरोह में है। पाँचवें खंड से आख़िर तक संबंधों का उतरना। आपने विशाखा वृंदा और वसु तीनों का वेणु के प्रति मोहभंग बताया है। इसी में भारत में बदलते हुए सामजिक जीवन को भी रेखांकित किया है। मेधा के अपने अनुभव कितने भिन्न थे। यानी उसके व्यवहार में कोई भेद नहीं है। जैसी ननद वैसी भाभी। यही वह संस्कारों का भेद है जिसकी बात माँ करती है। असल में वेणु के साथ बदलते हुए रिश्ते का कितना दर्द भरा पर यथार्थ आकलन किया है इसमें। मेधा का परिवार से अलग होना यहाँ दिखता है। दी सागा ऑफ़ वसु का यहाँ आरंभ होता है। आपने मेधा को काऊंटर करने के लिए तो ऐसा नहीं किया होगा। पर एक स्नेहिल मध्यवर्गीय परिवार के सपनों का दरकना और टूटना यहाँ दिखाई पड़ता है। शादी के बाद पहली बार अपनी पत्नी के साथ घर आए वेणु से जुड़े सपनों का चूरचूर होना। संबंध यहाँ से अलग होते हैं। सचमुच इस उपन्यास का यह खंड बड़ा मार्मिक है। यहाँ लगता है कि हाँ यह सूर्यबाला का उपन्यास है। पारिवारिक स्नेह किस तरह नई पीढ़ी में अपना अर्थ बदल देता है। शादी के बाद पहली बार मेधा भारत आई थी। ससुराल से अपने मायके जाने की जल्दी भी है। पर भाई के पास समय नहीं है और भाभी के पास भी नहीं है। वे निर्धारित समय अवधि से जल्दी चले जाते हैं। पर मेधा को वैसा नहीं लगता जैसा वसु को वेणु के लिए लगता है। उसे अपने भाई से कोई ख़ास शिकायत भी नहीं होती। उसका दिल नहीं टूटता यही भेद है दो परिवारों के भावजगत् में जो रेखांकित होता है।

४

जीने की जो दो पद्धतियाँ हैं- दूसरे के लिए स्पेस बनाना और अपनी स्पेस में किसी को भी न आने देना या किसी की आवश्यक्ता महसूस ही न करना- वह समानांतर रूप से मौजूद है इस उपन्यास में; और ऐसा नहीं है कि कोई इन्हें जानता न था। या तो आप माँ की तरह जीवन जीएँ, जिसमें दूसरे के लिए जगह हो, या आप मेधा की तरह हों जिसके लिए दूसरों की कोई अहमियत हो ही क्यों ? एक मेधा का परिवार और एक वेणु का परिवार। मेधा और वेणु में यह संघर्ष अंत तक बना रहता है। वेणु मेधा की भिन्नता को भी एकोमोडेट करने की कोशिश करता है, जो मेधा के बस में नहीं है। इसका बीज तब पड़ता है जब अपना स्टेटस ऊँचा करने की ललक में धनवान कुटुंब में वेणु की शादी होती है। इसमें वेणु और उसके पिता दोनों की रज़ामंदी है। या आप पिता की तरह हों जो अपनी सारी उम्मीदें और अपना तारणहार अपने बेटे में देखें या आप वसु की तरह हों कि हाथ न फैलाएँ और स्वयं अपने बूते पर जो करना है करे- उसमें चाहे किसी की सहमति हो या न हो। जो उसे सही लगता है वह उसने किया। इन सब मुद्दों को आपने उपन्यास में निर्मित बहसों से साफ़ किया है। मेधा-और वसु की बहस, वसु और माँ की बहस, मेधा और वेणु की छुटपुट बात-बहस, बेटू और वेणु के बीच वाद- यह भी तो आपके शिल्प का हिस्सा है।

५

अपनी परंपराओं और परिस्थितियों में ये देश इतने अलग हैं, इतने विपरीत हैं कि एक देश के संस्कारों से दूसरे देश में जीना बहुत कठिन है। वेणु न पूरी तरह भारतीय रह पाता है न ही अमरीकी। लेकिन जब उसका बेटा बड़ा हो जाता है और अपने जीवन को अपनी तरह जीना चाहता है तो एक द्वंद्व वह अपने भीतर पाता है। उस पर और एक हद तक मेधा पर भी वही भारतीय संस्कार हावी होने लगते हैं जिन्हें वह दूर ठेलते रहते हैं। क्या ग़ज़ब विडंबना आपने रखी है- बेटू अपने को अमरीकी समझता है और उसका बॉस उसे भारतीय- तो किस देश का वासी है वह- यह सवाल तो उठता ही है और यही इस उपन्यास का सबसे बड़ा सवाल है, मेरी दृष्टि में कि हम आख़िर कौन हैं- हम जो अपने आप को मानते हैं या हमें जो दूसरे मानते हैं?

इस बात को अमरीका में रहते भारतीय परिवारों के जीवन के माध्यम से भी आपने बताया है। वे सभी इस जद्दोजहद में जीवन बिता रहे हैं कि वे इस नए देश के बाशिंदे बन कर जीएँ। पर उनका मिलना-जुलना तो भारतीय परिवारों से ही होता है- अलग-अलग प्रदेश से आए भारतीय परिवार। उनके सुख-दुख साझा हैं- जहाँ तक कोई शादी-ब्याह या बेबी शॉवर जैसा प्रसंग हो; कोई तीज-त्यौहार हो या फिर नौकरी से निकाले जाने का भीषण आर्थिक संकट वाला प्रसंग हो। सभी भारतीय साथ हो जाते हैं। यानी भारतीय अमरीकी। यही तो विडंबना है। प्रशांत और अमीलिया के संबंध या लोकेन्द्र और उसकी पत्नी के संबंध इतने दृढ़ नहीं हो पाते और अंत में आपने बेटू और सैंड्रा के संबंधों की बात इस बिंदु पर आ कर छोड़ी है कि बॉस बेटू से कहता है कि तुमसे अधिक सैंड्रा हिंदुस्तान जाने के लिए उतावली दिख रही है। पर आपने कितनी सहानुभूति के साथ इनके संघर्ष को बताया है।

अगर मेधा- और वेणु के परिवार विभिन्न संस्कार वाले थे तो बेटू उनसे एक क़दम आगे है। अमरीका में तो बच्चों की या तो माँ सगी होती है या बाप। दोनों नहीं। एक तो सौतेला होता ही है। और सौतेला बदलता भी रहता है। जैसे सैंड्रा के सौतेले पिता के साथ उसकी सगी माँ का रहना दूभर हो गया था और वह कहीं और जुड़ने की भूमिका तक पहुँच गई थी। यही वहाँ का जीवन क्रम है।

६

वॉट गोज़ अराऊंड कम्स अराऊंड.. या कर्म का सिद्धांत। स्पेस की बात वेणु और बेटू के बीच हुए संवादों में बहुत मार्मिक झंग से आपने रखा है। यह उपन्यास का परिषिष्ट है। आख़िरी हिस्सा। इसी में सारी चीज़ें आपने समेटी हैं। वेणु और बेटू के बीच जो संवाद होता है वह संभवत:कर्म के सिद्धांत का ही निदर्शन है। बेटू अपने आप को अमरीकी मानता है और वेणु उसे भारतीय परंपरा से अलग नहीं देखना चाहता है जिसमें वह असफल होता है। सारा सवाल स्पेस का है। बेटू अपनी स्पेस नहीं छोड़ना चाहता और अपने स्पेस पर वेणु के अधिग्रहण पर उसे घोर आपत्ति है। वह उसे दर्ज भी करता है। यह वह यथार्थ है जिसे आप अपने उपन्यास में रेखांकित करना चाहती हैं संभवत:। अपना घर छोड़ने के बाद जब पहली बार बेटू कहता है कि वह घर आ रहा है तो मेधा और वेणु खुश होते हैं। तब वेणु को अहसास होता है कि उसकी माँ पिता बहनों को कैसा अनुभव हुआ होगा। बेटु की खुशी में अपनी खुशी ढूँढ़ते वेणु को अपने माँ पिता और बहनों की ही याद आती है। जिसका अनुभव उसने बरसों पहले नहीं किया था वह अब उसे होता है जब वह स्वयं इस परिस्थिति में अपने को पाता है। जो खुशी उस समय माँ को हुई थी वह आज मेधा को हो रही है।

७

यह इतना बड़ा रचना संसार ऐसे ही तो नहीं रचा आपने। संसार है तो साकार है- निराकार ही है। पर सोचती हूँ कि नौ खंड की कल्पना क्यों? पुराणों में इसका उल्लेख आता है। पुराणों में यह माना गया है यह संसार सात द्वीपों और नौ खंडों में विभक्त है। इसी में पृथ्वीलोक और देवलोक सभी कुछ आ जाता है। असल में उपन्यास का अर्थबीज इसी में समाहित है। कौन देस को वासी-तो तमाम खंडों की यात्रा करने के बाद तो अपने ही देस लौटना है। पर यह लेखिका का देस है, बेटू का नहीं। और संभवत: अब वेणु का भी नहीं। अत: यह सवाल जो वेणु के साथ जुड़ा है कि आख़िर वह किस देस का वासी है वही सवाल तो बेटू के साथ जुड़ा है। कि वह किस देस का वासी है। यानी किसी देस का वासी बनने के लिए क्या वहाँ की नागरिकता अथवा वहाँ पर जन्म लेना ही काफी है। वेणु ने नागरिकता ली है पर वह भीतर से तो अमरीका का नहीं है। बेटू ने भीतर से अमरीका को ग्रहण कर लिया है पर उसका बॉस उसे अमरीकी नहीं मानता, भारतीय ही मानता है। हालाँकि वह वैसा भारतीय नहीं है जैसा कि उसके बॉस उसे मान रहे होते हैं।

असल में इस पूरे उपन्यास में दो मुख्य सवाल है- अस्मिता और अस्ति का प्रश्न। आइडेंटिटि और बिलॉगिंगनैस का प्रश्न। कौन हम तो भारतीय मनीषा का ही प्रश्न है। लेकिन यह पूछा इस तरह गया है कि 'तुम कौन हो'। यह 'तुम कौन हो' की पथ-प्रक्रिया से 'मैं कौन हूँ तक आता है। यानि 'तुम हो तो भारतीय' से 'मैं अमरीकी हूँ' तक और 'आख़िर हम सब वहीं के हैं' से 'नहीं आप होंगे मैं तो यहीं का हूँ' 'इंडिया आपका देश हो सकता है, मेरा नहीं'– इस रूप में हमारे सामने आता है।

तो यह तो दार्शनिक चिंता हुई- यानी साकार से निराकार तक जाने वाली चिंता हुई। और इसीलिए शायद यह उपन्यास बहुत महत्त्वपूर्ण भी है। इसीलिए नौखंड वाली भारतीय संकल्पना का रचना शिल्प इस उपन्यास को अर्थ देता है। आज की शब्दावली में कहें तो पैकेज और कंटेंट दोनों एक दूसरे को पूरक हैं। यह जो कहीं का भी न होना या हो पाना या रह पाना जो आपने इसमें उकेरा है, वह हमें सोचने को बाध्य करता है। यह साकार तो है ही पर निराकार भी है। इसी भावभूमि पर यह हमारे भीतर विलय पाता है।

000

नई पुस्तक

वायरस से वैक्सीन तक

(रिपोर्ताज)

लेखक : आदित्य श्रीवास्तव

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

युवा टीवी पत्रकार तथा लेखक आदित्य श्रीवास्तव की नई पुस्तक कोरोना काल के दौरान की रिपोर्ताज पर आधारित है। चर्चित टीवी न्यूज़ एंकर सईद अंसारी पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं- ये पुस्तक न सिर्फ़ कोरोनाकाल को देखने वाले बल्कि आने वाली पीढ़ी को उस दौर को जानने और समझने का सबसे सशक्त दस्तावेज़ है। ये पुस्तक महत्त्वपूर्ण इसलिए भी है क्योंकि ये सालों बाद भी कोरोनाकाल को देखने वालों को फ्लैशबैक में लेकर जाएगी, तो कोरोनाकाल के हर पहलू को जानने और इस महामारी का प्रत्येक भारतीय ने किस प्रकार डटकर सामना किया उसको समझने के लिए सालों साल बाद भी मददगार सिद्ध होगी। कोरोना की भयावहता अन्दर तक हिला जाती है। पुस्तक में जिस संवेदना के साथ पत्रकार और लेखक आदित्य श्रीवास्तव ने घटनाओं का वर्णन किया है वो पाठकों को उद्वेलित करेगा, हमें स्वार्थी होने से रोकेगा।

000

पुस्तक समीक्षा

सरहदों के पार, दरख़्तों के साये में

(कविता संग्रह)

समीक्षक : सुधा ओम ढींगरा

लेखक : रेखा भाटिया

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नार्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल: +1-(919)801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

रेखा भाटिया का नया काव्य संग्रह 'सरहदों के पार दरख़्तों के साये में' मिला। एक ही बैठक में उसे पढ़ लिया। सबसे पहले तो मैं उसके शीर्षक से बहुत प्रभावित हुई। कहीं वैश्विक या प्रवासी शब्द नहीं, लेकिन फिर भी पाठकों को पता चल जाता है कि यह किसी दूर देश का कविता संग्रह हैं। 'सरहदों के पार दरख़्तों के साये में'यानी प्रकृति के सान्निध्य में। रेखा भाटिया अमेरिका की उभरती युवा कवयित्री है और शार्लेट शहर में रहती हैं। दरख्तों से घिरी ख़ूबसूरत वादी जैसे शहर में, कथक नृत्य करती हैं और चित्रकला से बहुत प्यार है। स्कूल में प्राध्यापिका हैं और साथ ही सामाजिक कार्य भी करती हैं। उनके व्यक्तित्व के सभी पहलुओं का उनकी कविताओं में गहरा प्रभाव महसूस किया जा सकता है। प्रकृति प्रेम भी रेखा जी की कविताओं में झलकता है।

'ज़िंदगी मेरी जीवन सखी' कविता में रेखा जी ने ज़िंदगी को सखी के रूप में देखा है और उससे पूछती हैं- मैं भी बूझूँ, मैं भी जानूँ / व्यक्तित्व कैसा है तुम्हारा! / कहानियाँ कई कह गई / रिश्ते कई बना गई / कुछ कहानियों के पात्र हम / कुछ रिश्ते निभाना सिखा गई।

ज़िंदगी भर हम कितने पात्र निभाते है। कितनी कहानियों को जन्म देते हैं। इसी कविता में लेखिका अपनी सखी ज़िंदगी से गिला भी करती है- कभी चलने दो मेरी भी तुम सखी / आगे - आगे तो तुम्हीं चलती रही....

ज़िंदगी का एक अलग पहलू वह 'मूल कारण' कविता में अभिव्यक्त करती हैं।

'सरहदों के पार दरख़्तों के साये में' पढ़ते हुए महसूस किया, रेखा भाटिया बहुत संवेदनशील हैं। जन्मभूमि और कर्मभूमि के अंतर्द्वंद्व में उलझकर नए रास्ते तलाश रही हैं। जन्मभूमि की विसंगतियों, विद्रूपताओं, सरोकारों के लिए चिंतित हो उठती हैं। कहीं समाज, मानवजात,

पुरुषसत्ता से शिकवे- शिकायतें हैं तो कहीं रूढ़ियों, झूठी मान्यताओं को बदलना चाहती हैं।

कर्मभूमि में मानवीय भेदभाव और नस्लवाद उन्हें दुखी करता है। वर्षों से अमेरिका में रह रही हैं, अमेरिका की जहाँ प्रकृति का वह आनन्द लेती हैं, वहीं अन्याय के ख़िलाफ़ भी उनकी आवाज़ बुलंद होती है।

'स्वागत को आतुर' कविता में वे वसंत ऋतु का स्वागत करती हैं- सजने दो बसुंधरा को स्वर्ण- वसंत से / दमकने दो घरती को सूर्य-रश्मियों से / खिल आएँगे पुष्प, महक जाएगी बगिया / बज उठेगा संगीत भौरों की गुनगुनाहट से।

तो कहीं 'प्रकृति से छिपा लूँ वसंत बहार' कविता लिखती हैं। 'बहारों बैठो आसपास', 'बावरा मन मौसम', 'पंछी सिखलाते' कविताएँ भी प्रकृति को समर्पित हैं।

'क्या रोक पाओगे यह खेल' कविता में रेखा जी युद्ध से पीड़ित हो कहती हैं- हथियारों के पहाड़ों नीचे खोदों

कहीं घायल पड़ी मिलेगी मानवता

00

किसी झंडे में छिपा छलनी शरीर / कई दिन रातें बिलबिलाते / नेताओं से सवाल पूछ -पूछ चिल्लाते / नया क्या है यह सदियों का खेल / राजे रजवाड़े गए प्रजा की वही लड़ाई

अपनी जात से तो रेखा भाटिया बेहद खफा हैं, क्यों न पूछा अपना हाल...कविता में लिखती हैं- क्या महज़ साँस लेता जिस्म... / क्या यही मायने हैं स्त्री के

00

आत्मा मरने लगी अब मेरी! / छत - दीवारें, गली चौबारे / हृदय का चौराहा, / सब हुए हैं अब लहूलुहान / किन्तु कब तक चुप बैठूँगी!

00

शर्मिंदा तुम नहीं पुरुष, मैं हूँ / क्यों न पूछा अब तक अपना हाल / देवी, शक्ति, मूर्ति से निकल बाहर, / तीन सौ पैंसठ नारी दिवस मना।

'मुखौटा' कविता में रेखा जी भगवान् से कहती हैं कि मुझे दुनियादारी का नकली मुखौटा क्यों नहीं दिया? मैं क्यों बाज़ारवाद और समाज में व्याप्त सौदेबाज़ी से पिछड़ जाती हूँ। बेटी और स्त्री को लेकर रेखा जी ने कई कविताएँ लिखी हैं। अपनी ही जात की प्रतिष्ठा का सम्मान करते हुए स्त्री की अस्मिता, अस्तित्व पर बड़े धड़ल्ले से लिखा है।

कई विषय और बातें ऐसी होती हैं, जिन पर कहानी लिख कर भी अभिव्यक्ति की संतुष्टि नहीं होती पर कविता में बड़ी सहजता और सरलता से स्वाभाविक ही उन भावों का संचार हो जाता है। रचनाकार की दृष्टि समाज के उन कोनों तक भी पहुँच जाती है, जिनकी अवहेलना कर वर्जित कर दिए जाते हैं। कवि अपनी कल्पना से नई राहें तलाशता है, हृदय को छूकर जीवन को सतरंगी कर देता है।

'सरहदों के पार दरख़्तों के साये में' कविता संग्रह में रेखा भाटिया ने तकरीबन जीवन के सभी रसों और रंगों में भीगी कविताएँ लिखी हैं। कहीं मन की पीड़ा 'रिश्ते झरे पत्ते', 'वह गम कभी छिपा नहीं', 'खुरदरी सी हो गई ज़िंदगी', 'मन क्यों उदास होता है,' 'रिश्ते छूट जाते घाटों पर', 'आस में मिटती', कविताओं में झलकती है तो कहीं समाज में हो रहे अन्याय के प्रति आक्रोश 'मैं स्त्री बन पैदा हुई' में टपकता है। नारी को दोयम दर्जे का समझे जाने से वह तड़पी है 'संसार बदलने चली है बेटी' कविता में। कहीं कवयित्री 'भविष्य में आने वाले कल की नींव' का ज़िक्र करती है और कहीं रेखा जी पाठक को 'चलिए अतीत में चला जाए' कविता में अपने इतिहास को खंगालने के लिए बाधित करती है। प्रेम, बेवफ़ाई, राष्ट्रप्रेम, अंतिम सत्य खोजती 'देह यात्रा', हर दिन त्योहार, पिता, माँ, बेटी, रिश्ते, अलौकिक प्रेम, हर विषय पर इस संग्रह में कविताएँ हैं। कुछ कविताएँ दिल को छूती निकलती हैं, कुछ विवेक को झंझोड़ती हैं। कई कविताएँ सोचने पर बाध्य करती हैं। 143 पृष्ठों और 72 कविताओं का संग्रह 'सरहदों के पार दरख़्तों के साये में' पठनीय है और कवयित्री रेखा भाटिया का यह पहला प्रयास है, जो सराहनीय है।

000

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

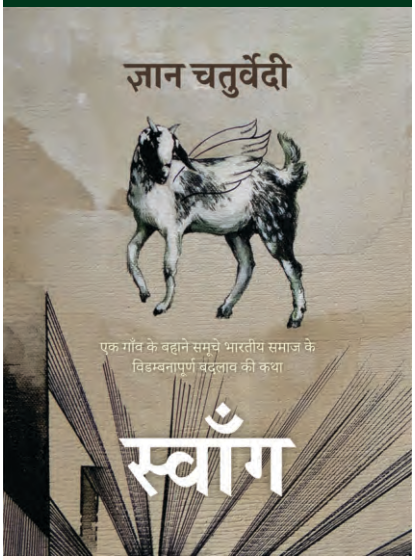

स्वाँग

(उपन्यास)

समीक्षक : ब्रजेश राजपूत

लेखक : डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

ब्रजेश राजपूत
ई-109/30
शिवाजी नगर, भोपाल, 462016, मप्र
मोबाइल- 9425016025
ईमेल- brajeshrajputbhopal@gmail.com

स्वाँग को ज्ञान चतुर्वेदी ने बारामासी और हम ना मरब सरीखी बुंदेलखंडी आन बान शान की उपन्यास त्रयी की अंतिम कड़ी कहा है। और सच है यहाँ पर ज्ञान जी अपनी पूरी रंगत में दिखे हैं। झांसी और मऊरानीपुर के पास कहीं बसे कोटरा गाँव के बहाने कही गयी इस चार सौ पन्नों की कथा में संवादों में बेहद चुटीलापन है तो पात्रों में ग़ज़ब का काइयाँपन पहले से लेकर आख़िरी पन्ने तक बरसता रहता है। बस दिक्कत इन पन्नों की है जो ज़रूरत से ज्यादा हो गये हैं। कुछ दृश्य ज़रूरत से ज़्यादा लंबे हो गये हैं और पाठक मुख्य कथानक तलाशने में उनको छोड़कर आगे बढ़ता रहता है।

कहानी कोटरा गाँव की है जो राग दरबारी के शिवपालगंज जैसा ही है। यहाँ भी इंटर कॉलेज है जिसके मालिक पंडित जी शिक्षा दान और समाज सेवा के नाम पर नकल से पास कराने का बेईमानी का धंधा पूरी ईमानदारी से करते हैं। अब वो ये धंधा कर रहे हैं तो फिर पॉलिटिक्स से कैसे बच सकते हैं तो इलाके की पॉलिटिक्स को भी अपने छल कपट से साधे रहते हैं। हर दूसरे दिन जज्जी यानी कि कोर्ट कचहरी करने कालपी जाते हैं और क़ानून के नियमों को पैसों के दम पर अपने मुताबिक चलाते हैं, पूरे कोटरा में उनकी धाक बस इसी बात पर है कि उनके कितने केस है कि उनको कोर्ट में जाकर ही पता चलता है कि किस केस की बारी है। उनके बेटे अलोपी भी हैं जो कोर्ट कचहरी पर विश्वास नहीं कर अपने तमंचेबाज़ी पर इतराते हैं सारे झगड़ों को वो मारपीट और ना माने तो इलाके के युवाओं में आम हो गये तमंचे के दम पर सुलटाते हैं। गाँव में थाना भी है तो उसके थानेदार भी जो तमाम मक्कारी और रिश्वतखोरी को थानेदार का सबसे बडा औज़ार मानते हैं। इसी क्रम में एक पत्रकार बिस्मिल जी भी हैं जो पत्रकार कम दलाल ज्यादा हैं और वक्त आने पर किसी को नहीं छोड़ते पैसा वसूलने। अफसरों से लेकर थाने तक अपने संपर्कों के बल पर रिश्वत इनके हाथों से ही जाती है। और इन तमाम किरदारों के बीच में पटवारी एसडीएम जिला शिक्षा अधिकारी के दर्शन भी होते हैं जो छोटे क़स्बों में स्वर्ग से उतरे देवदूत से कम नहीं होते। सरकारी नौकरी में है तो पैसा तो खाएँगे ही नौकरी में इसी काम के लिये तो आये थे। स्वांग में ढेर सारे खल किरदारों के बीच दो अबोध कैरेक्टर भी ज्ञान जी ने बेहद खूबसूरती से उतारे है गजानन बाबू और नत्थू। गजानन बाबू स्वतंत्रता सेनानी है जिनका आज़ादी के बाद हुये मोह भंग ने उनको पागल कर दिया है। हर पुराने शहर में ऐसे पगलेट बाबा मिलते हैं जो खादी पहन कर जयहिंद करते रहते हैं। स्वांग के गजानन बाबू दिल्ली जाकर राष्ट्रपति चुनाव लड़ना चाहते हैं उनकी बेइज़्ज़ती को मार्मिक वर्णन है तो दूसरा नत्थू है जिसे पढ़कर राग दरबारी का लंगड़ याद आता रहता है, जो ग़रीबी को ही किस्मत मानकर ईमानदारी से जीने की कोशिश करता रहता है। इन ढेर सारे खल किरदारों के मार्फत लेखक ने तस्वीर रची है कि कल तो जो ग़लत या बुरा माना जाता था वो अब सारे पैमाने बदल गये हैं। बदमाशी, मक्कारी, नकलखोरी, रिश्वत लेना देना, हत्या और मारपीट अब गरीब बुंदेलखंड की आबोहवा में रच बस गये हैं। ये सच है ग़लत कोई कुछ नहीं सोच रहा। जनता यही स्वाँग कर रही है और देख रही है वो इसी को आनंद ले रही है। ज्ञान जी इस इस उपन्यास में हम ना मरब के बाद अपने पूरे रंग में हैं। छोटे-छोटे लंबे संवाद और उन संवादों में चुटीलापन मक्कारी भोलापन सब एक साथ दिखता है। दृश्य रचने में उनको महारत हासिल है। अनेक दृश्य उपन्यास में ऐसे हैं कि पढ़ने के बाद भी याद रहते हैं। मगर ये दृष्य और संवाद कई जगह पर लंबे हैं जो उपन्यास की गति का बोझिल बनाते हैं। उपन्यास में शुरुआत से चल रही ढेर सारी कथाओं को लेखक ने जिस तरह से आख़िर में समेटा है वो सिर्फ ज्ञान चतुर्वेदी ही कर सकते हैं। ये सच है कि बुंदेलखंड ज्ञान चतुर्वेदी में बसता है और उनकी बुंदेली में ही बेजोड़ रंग जमता है।

000

पुस्तक समीक्षा

रिश्ते

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : शैलेन्द्र शरण

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

शैलेन्द्र शरण
79, रेलवे कॉलोनी, इंदिरा पार्क के पास
आनंद नगर, खण्डवा (म.प्र.)
मोबाइल-8989423676
ईमेल- ss180258@gmail.com

"रिश्ते", " प्रेम" और "होली" कहानी की ऐसी तीन किताबें हैं जिनमें पंकज सुबीर जी की आरंभिक लेखन के समय की कहानियाँ हैं। इन पुस्तकों की लगभग सभी कहानियाँ समय-समय पर अख़बारों में छपती रहीं हैं।

अपनी किताब 'रिश्ते' की भूमिका में वे लिखते हैं कि 'वैसे मैं पुस्तक की भूमिका लिखने का घोर विरोधी हूँ। लेखक को पुस्तक और पाठक के बीच नहीं आना चाहिए क्योंकि पुस्तक स्वयं ही पाठक से सीधे बात कर लेतीं हैं।' इस पुस्तक में भूमिका इसलिए लिखी गई ताकि पाठक जान सकें कि यह कहानियाँ उस समय की कहानियाँ हैं जब वे शायद कॉलेज में पढ़ते थे, और कुछ तब की हैं जब वे कॉलेज से बस छूटे ही थे। इसलिए ये कहानियाँ शुरूआती और कच्ची कहानियाँ हैं।

भूमिका में, इतना सब पढ़कर, इन्हें इसी दृष्टि से पढ़ना शुरू किया तो कच्चापन ढूँढ़ने में बड़ी मशक़्क़त करनी पड़ी और निष्कर्ष निकला कि ये कहानियाँ कहीं से भी कमज़ोर और कच्ची नहीं हैं अन्यथा उस समय के साहित्य-समृद्ध संपादक इन्हें छापते ही क्यों ?

"वैशाख का एक दिन" शीर्षक कहानी का पहला ही पैराग्राफ देखें-

"गर्मी की धूल भरी हवा के झोकों से पेड़ से गिरा हुआ अमलतास का फूल धरती पर दौड़ने लगा। गोल-गोल लुढ़कता हुआ काफी दूर जाने के बाद ठहर गया, मानों साँस लेने के लिए रुक गया हो। अचानक हवा चल पड़ी और फूल का सफ़र फिर शुरू हो गया, सुनंदा उसे तब तक देखती रही जब तक आँखों से ओझल नहीं हो गया। नन्हा सा ज़र्द पीला फूल धूल भरी दिशाओं में ग़ुम हो गया। कैसी विचित्र बात है, जब तक पेड़ पर लगा था तब तक यही फूल झूम-झूम कर हवाओं को चुनौती देता था। लेकिन पेड़ से टूटने के बाद हवाओं के इशारे पर दौड़ना पड़ रहा है। अब हवाएँ ही उसकी किस्मत बन चुकी है। ऐसा ही होता है स्त्री जीवन भी।"

इस तरह के गंभीर पंक्तियों से कहानी का आरंभ करने वाले लेखक को कच्चा कैसे कहा जा सकता है। लेखन में चित्रात्मकता को सफलता से ले आने वाले लेखक की इन कवितात्मक पंक्तियों को आरंभिक लेखन कैसे मान लिया जाए। हाँ, कुछ कहानियों में कहीं-कहीं कच्चापन दिखाई देता है और किन्तु इसे स्वीकार कर लेखक कहीं भी छोटा नहीं हो जाता बल्कि यह स्वीकारोक्ति उनके लेखन की ईमानदारी की द्योतक है।

रिश्ते पुस्तक की कहानियाँ अत्यंत महीन और रेशमी रंगीन धागों से कपड़े पर उकेरी गई कशीदाकारी की तरह हैं जिन्हें पढ़कर हम बार-बार इन्हीं में खो जाते हैं। प्रत्येक कहानी में अलहदा, अपनत्व भरे दृश्य सामने आते हैं। इन रिश्तों के केंद्र में भाई है, बहन है, बुआ है, पिता है, प्रेमिका है, पत्नी है, दादा है, दादी है यहाँ तक कि नाना-नानी भी हैं। ये सारी कहानियाँ ख़ास अवसरों की हैं, तीज़-त्योहार और शादी -ब्याह की हैं जो हमारे मन को स्पर्श करती चलती हैं।

"रिश्ते" पुस्तक में 24 कहनियाँ संग्रहित हैं। सभी कहानियाँ लगभग 4-5 पृष्ठों में आ गईं हैं। देशज शब्दों का अच्छा प्रयोग हुआ है। पहली ही कहानी में 'झीकना' शब्द, दिखता है तो निमाड़ और मालवा की मिट्टी पर पहली बारिश की सौंधी सुगंध से मन-मष्तिष्क भर उठता है। कुछ और शब्द गौर किए जो आस-पास के तथा स्वाभाविक लगने वाले शब्द हैं। खास मालवा के हैं जैसे- इत्ते बड़े शहर में, ननद से, बाम की शीशी, कँवर साब आदि ऐसे शब्द हैं जिन्हें पाठक बड़े अपनत्व से ग्रहण करते हैं, जैसे कहानी में पाठक खुद हो बोल रहा हो।

नवरात्र, दशहरा, दीवाली, रक्षाबंधन, वेलेंटाइन डे, बारात के अतिरिक्त अन्य विषयों पर सभी कहानियाँ "रिश्तों" से बंधी हुई गहन अपनत्व की हृदयस्पर्शी कहानियाँ हैं। दरसल ये कहानियाँ पंकज सुबीर के लेखन-महल के, नींव के पत्थर हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

बहती हो तुम नदी निरंतर

(गीत संग्रह)

समीक्षक : शैलेन्द्र शरण

लेखक : श्याम सुन्दर तिवारी

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

शैलेन्द्र शरण
79, रेलवे कॉलोनी, इंदिरा पार्क के पास
आनंद नगर, खण्डवा (म.प्र.)
मोबाइल-8989423676
ईमेल- ss180258@gmail.com

किताब दो सूरतों में हमारे हाथों तक पहुँचती है या तो किताब किसी परिचित की होती है या फिर समीक्षा के उद्देश्य से हम तक पहुँचती है। ऐसे समय निष्पक्ष होना उतना ही ज़रूरी होता है जितना कि एक न्यायाधीश होता है। निरपेक्ष आलोचना दुरह कार्य है जो बहुदा शीर्ष मष्तिष्क से होती है। समालोचना में बंदिशे कम हैं। समालोचना या समीक्षा में अच्छे - बुरे दोनों पक्ष देखते हुए बात कही जाती है।

बहती हो तुम नदी निरंतर के गीत कोमल भावों के ऐसे गीत हैं जिन्हें गीत से नवगीत की ओर जाती सीढ़ी की श्रेणी के हैं। इस किताब के गीत अचानक आये हुए गीत नहीं हैं अपितु विचारों की आँच में पके हुए गीत हैं। तिवारी जी के गीत शाश्वत सत्य और सत्य को परखते और प्रतिपादित करते जान पड़ते हैं। ईश्वरीय सत्ता पर भरोसा रख वे गीत में अनकहा भी छोड़ देते हैं जो गहन अर्थवत्ता लिए होता है-

हर पल चले, लेकिन / पहुँच नहीं पाए / मेज़बान की मर्ज़ी / चाहे तब बुलाये।

दोस्तों के छूट जाने से उनका दुखी मन- "रास्ते कितने अकेले हो गए / दोस्तों के पते सारे खो गए" जैसे स्थाई भी रच देता है, उनके गीतों की ऐसी पंक्तियों में गहन क्षोभ छुपा होता है। दोस्तों के पते खो जाने का क्षोभ उन्हें विश्वचिन्तन तक भी ले आता है।

"विश्व के मानस पटल से, चेतना विलगित हुई"

(रास्ते कितने अकेले हो गए - गीत पृष्ठ - 22) गीत और नवगीत के बीच से निकलता हुआ यह गीत यकीनन एक सशक्त गीत है। पढ़ने में आसान लगने वाले गीत अर्थवत्ता लिए होते हैं। प्रत्येक नवगीतकार का अपना शिल्प और विधान होता है, यही शिल्प उसे पहचान देता है, श्याम सुन्दर जी के गीत अलग से पहचाने जा सकते हैं। उनके गीतों की मधुरता मोह लेती है तो कभी कभी सम्मोहित भी कर लेती हैं।

"नयनों में विकल प्रतीक्षा, पनघट पर है प्यास खड़ी
घर की चारदीवारी सूनी, बँधी-बँधी सी आस खड़ी"

ससुराल से लिवाने आने वाले साजन की बाट जोहती नायिका की खुशी और बेचैनी को शिद्दत से शब्दों में बाँधता यह गीत मधुर है, करुण भी है और मोहक भी। उनके गीतों का सौंदर्य वर्णन-पक्ष विशाल है, वे गीत में शब्द चित्र रचते नहीं अपितु नैसर्गिक रूप से शब्द चित्र उनके गीतों में चला आता है।

"गौरैया ने गाँव बसाये, दुर्ग, महल, दीवारों में / बिछा रहे हैं जाल शिकारी, अपनी अपनी चालों में / टूट गए संयम के बंधन, डूबे सभी किनारे हैं"

हर विषय को वे अपने गीतों में पिरो लेते हैं। दुख-सुख, पीड़ा-संताप, हर्ष- विषाद, गाँव, पनघट, नदी, नाव, शहर से विश्व तक कि चिंता को अपने गीतों में बाँध लेने वाले श्याम सुन्दर तिवारी एक सशक्त गीतकार हैं।

श्याम सुन्दर तिवारी का एक संग्रह पहले आ चुका है, "मैं किन सपनों की बात करूँ" इस संग्रह पर उन्हें प्रथम कृति सम्मान लखनऊ से दिया जा चुका है। दरसल 'बहती हो तुम नदी निरंतर' यह गीत संग्रह पहले आ जाना था किंतु किसी वजह से यह बाद में प्रकाशित हुआ। "नदी तुम बहती हो निरंतर" के कुछ गीत उनके आरंभिक गीत हैं इसलिए उनमें कच्चापन साफ दिखाई पड़ता है। एक कमी और दिखाई दी, वह है गीत पर ईमानदारी से मेहनत नहीं की गई है। मुखड़ा या स्थाई ही नवगीत का प्राण तत्व है यदि इस पर ही काम न किया जाए, उसे परिष्कृत न किया जाए तो अंतरा तक पाठक नहीं जा पाता। यदि पूरा गीत पढ़ भी ले तो कवि पर उसे रोष आता है। इस कमी पर ध्यान देना बहुत ज़रूरी है।

000

पुस्तक समीक्षा

कोरोना काल की दंश कथाएँ

(निबंध संग्रह)

समीक्षक : शैलेन्द्र शरण

लेखक : अजय बोकिल

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

शैलेन्द्र शरण
79, रेलवे कॉलोनी, इंदिरा पार्क के पास
आनंद नगर, खण्डवा (म.प्र.)
मोबाइल-8989423676
ईमेल- ss180258@gmail.com

एक पत्रकार किसी भी विषय पर लिखता है तो वह सामान्यत: संतुलित होता है क्योंकि वह पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं होता। एक पत्रकार की किताब इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उसकी दृष्टि भविष्य के परिवर्तनों का सूक्ष्म विश्लेषण करती है तथा उसके विश्लेषण सटीक होते हैं। ऐसे ही सारी विशेषताओं से भरी किताब है सुबह सवेरे के सजग वरिष्ठ संपादक अजय बोकिल जी की, जिसका नाम है- कोरोना काल की दंश कथाएँ ।

इस किताब में लगभग 54 आलेख हैं और सभी के सभी बेहद ज्ञानवर्धक। ये लेख पत्रकारिता नहीं अपितु कोरोना वायरस के दंश के कारण उजागर हुई कथाएँ हैं। इन कथाओं में समकालीन परिस्थितियों के कारणों का विश्लेषण है। इन कथाओं को पढ़ना कोरोना काल की उन समस्याओं, स्थितियों से रू-ब-रू होना है जिसने देश को घरों में बंद कर हमारी जीवन शैली पर पुनर्विचार के लिए हमें विवश कर दिया।

अजय बोकिल इस किताब के माध्यम से एक निडर पत्रकार के रूप में भी सामने खड़े दिखाई पड़ते हैं। वे मीडिया की बखिया उधेड़ने से नहीं हिचकिताते। मीडिया में रहकर मीडिया के खिलाफ़ लिख देना अजय बोकिल के सच्चे पत्रकार होने का वह साक्ष्य है जिसने कभी भी, किसी भी परिस्थिति से अपना मुँह नहीं मोड़ा और बिना किसी भय के अपनी ज़िम्मेदारी को पूरा किया। अजय बोकिल अपने आप को सोशल मीडिया का अदना सा नागरिक मानते हैं। उनकी भाषा जहाँ किसी सच को कहने में कठोर हो जाती है तो वहीं किसी लेख की भाषा में वे बच्चे के समान सुलभ और आसान भी हो जाते हैं। वे अपनी भाषा से किसी भी मन को गुदगुदाना भी जानते हैं और व्यंग्य भरा कटाक्ष भी करना जानते हैं। फ़ेसबुक स्टेटस की फ़िक्र में माँ की अंत्येष्टि का स्टेटस पोस्ट करते युवक के लिए वे लिखते हैं- "उस बंदे को माँ के अंतिम संस्कार से ज़्यादा चिंता इस बात की थी कि फेसबुक पर माँ की डेडबॉडी का स्टेटस अपडेट होने से न रह जाए।" यह लिखना एक कटाक्ष भर नहीं है बल्कि विश्व के फ़लक पर संवेदनात्मक भावनाओं की लगातार होती जा रही मृत्यु से वे चिंतित और बेहद परेशान हैं। यह पत्रकारिता का एक ऐसा पक्ष है जो पत्रकारिता को साहित्य के स्तर पर लाकर खड़ा कर देती है। यह करिश्मा अजय बोकिल की लेखनी बार-बार कर दिखाती है।

उनकी क़लम विकास दुबे के एनकाउंटर का निष्पक्ष विश्लेषण करती है तो गुंडा माफिया के जीवित रहने को भी धिक्कारती है। अजय बोकिल अमिताभ के कोरोना पर व्यंग्यात्मक लिखते हैं तो सूरमा भोपाली कॉमेडियन जगदीप पर लिखे अपने श्रद्धांजलि आलेख में पाठक की आँखें भिगो भी देते हैं।

एंथोनी पाराकल पर इस किताब में उनका अद्भुत लेख है जो किसी भी पत्रकार का मस्तक गर्व से ऊँचा उठा देने में सक्षम है। अजय बोकिल जब आँकड़ों पर बात करते हैं तो लगता है, मानो वे ख़ुद ही शायद एक एनसाइक्लोपीडिया हैं। उनके लिखे हुए आँकड़ों की सच्चाई चौंकाती है, उनके द्वारा लेख में दी गई जानकारियाँ विस्मित करती हैं।

उनके लेखन की अनेक विशेषताएँ हैं। किसी भी लेख के विषय में चौतरफ़ा लिखने वाले अजय बोकिल अपने लेख को कभी कमज़ोर नहीं छोड़ते। प्रतिदिन सुबह, बिना नागा सोमवार से शनिवार तक आप उनका लेख "सुबह सवेरे" दैनिक मैगज़ीन में प्रकाशित पा सकते हैं। कितना कठिन होता है कॉलम लिखना और वह भी प्रतिदिन ? वह भी स्तरीय ? वह भी ऑथेंटिक? वह भी रोचक ?

जनाब आपसे कहा जाए रोज़ लिखिये तो रात की नींद उड़ जाए किन्तु यह बोकिल जी के बाएँ हाथ का खेल है क्योंकि वे लिखते ही हैं, जीनियस की तरह। उनकी किताब "कोरोना काल की दंश कथाएँ" आपको यदि विचलित कर देगी तो निश्चित ही सुकून भी देगी।

000

पुस्तक समीक्षा

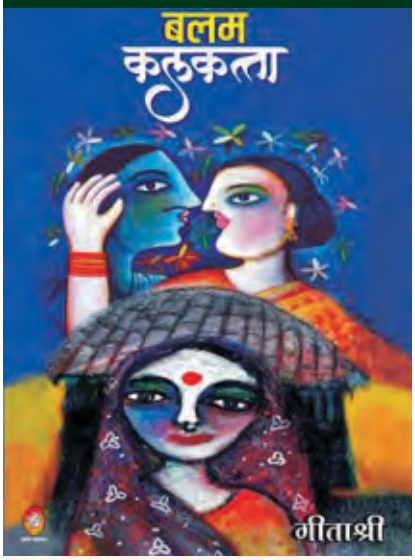

बलम कलकत्ता

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : टीना रावल

लेखक : गीताश्री

प्रकाशक : जेवीपी पब्लिकेशन, मुंबई

टीना रावल
ए- 129, महेश नगर
जयपुर- 302015, राजस्थान
मोबाइल- 8949213108

स्त्री विमर्श पर समय की नब्ज़ पकड़ने की लेखिका गीताश्री की क्षमता अद्वितीय है। इनके इस कहानी संग्रह 'बलम कलकत्ता' में स्त्री विमर्श की ही प्रधानता है। इसमें महिला केंद्रित कहानियाँ है, इन कहानियों की केंद्रीय पात्र शहर से भी हैं और गाँव से भी हैं। अधिकतर नायिकाएँ आज की परिस्थितियों में अपने संघर्ष और जिजीविषा के मध्य कहीं अपने अस्तित्व, कहीं महत्त्वाकांक्षाओं, तो कहीं नैसर्गिक भावुकता को पाने व बनाए रखने के लिए जूझती दिखती हैं। स्त्री पात्रों की एक विशेषता है कि वह चाहे गाँव की हो या शहर की, चाहे लिव इन रिलेशन में रहे या इंडिपेंडेंट, किसी भी देश-काल-परिस्थिति में हो, वो 'प्रेम' वह भी सच्चा प्रेम तलाशती हैं। इस संग्रह में कुल पंद्रह कहानियाँ हैं। प्रथम कहानी 'बलम कलकत्ता पहुँच गए' का आरंभ ही हाड़ कँपाती ठंड में घर-घर जाकर काम करने वाली एक अधेड़ स्त्री के वर्णन से तथा उसके बदतर हालातों से होता है। यह एक तरह की प्रयोगधर्मिता ही है कि पुस्तक के आरंभ में ही कोई शृंगार, न तो पात्र का न ही प्रस्तुति का, फिर भी यह पाठक को आकर्षित करती है, यह प्रशंसनीय बात है और लेखिका के आत्मविश्वास की परिचायक भी है। जीवन की भट्टी में तप कर जिस शांति का जीवन रस सूख चुका है। उम्र भर अपने शराबी पति से प्रताड़ित शांति कहानी के अंत में ही नहीं अपने जीवन के अंत में उसे छोड़कर जाने का साहसिक निर्णय ले ही लेती है। कहानी पुरुष प्रधान व पितृसत्तात्मक समाज दोनों को ही करारा जवाब है।

दूसरी कहानी 'तन वसंत मन जेठ' ग्रामीण परिवेश की एक शरारती और समझदार लड़की फुल्लौरी की गुदगुदाने वाली कहानी है। कभी-कभी यह एक परी कथा सी प्रतीत होती है। एक लड़की स्वयं को प्रभावित करने वाले लड़के को ही आत्मसमर्पण करती है। पहले वह विवाह करके किसी सताने वाले पति से बचने के लिए देवी की सवारी आने का नाटक करती है। तथा कहानी के क्लाइमेक्स में अपने मनचाहे लड़के को पति रूप में पाने के लिए भी देवी की सवारी आने का नाटक करती है, सारा समाज उसके आगे सिर झुकाता है और फुल्लौरी को उसके प्रेमी के साथ भागने देता है। नायिका फुल्लौरी एक दबंग और बुद्धिमान लड़की सिद्ध होती है, ऐसी नायिका को देख कर मन में थोड़ी शांति होती है कि इस सताने वाले पुरुष प्रधान समाज को नाकों चने चबाने वाली पितृ सत्ता को अपनी बुद्धिमत्ता से चलाने वाली लड़कियाँ भी होती है।

'उनकी महफिल से उठ तो आए हैं' कहानी की नायिका चरखी अपने पति द्वारा ही चेहरे पर तेज़ाब फेंकने तथा अकेले अभिशप्त जीवन जीने वाली लड़की की कहानी है। इस कहानी का नायक सहृदय अजय कुमार उर्फ छपरा पुरुषों की सत्ता में एक अपवाद ही प्रतीत होता है जो उसे सहारा देने वाला ही नहीं उसके संवेग और संवेदनाओं को सम्मान देने वाला भी सिद्ध होता है। कुछ भी हो गीताश्री की तरह ही हमें भी विश्वास है कि अजय प्रसाद की तरह भी कुछ पुरुष होते हैं जो मनुष्य भी है वरना पुरुष तो केवल पुरुष ही होते हैं।

'वह मुझसे मिलने आई थी' कहानी में ऑनर किलिंग का मुद्दा उठाया गया है। जो लेखिका का स्वयं का संस्मरण प्रतीत होता है। गीताश्री की कहानियों की नायिकाएँ आमी, मनीषा, तन्वी रंजीनी व निष्ठा आधुनिक समय की पढ़ी-लिखी वर्किंग गर्ल्स हैं। जिनमें से कुछ लड़कों से दोस्ती रखती है कुछ लिव इन रिलेशनशिप में उनके साथ रहती हैं, पर उनका आत्मबोध कमाल का है। वे हमारी संस्कृति के अनुसार रिश्तों के स्थायित्व को लेकर सजग हैं। जो जाँच परख कर ही अपने निर्णय लेती हैं, कोरी भावुकता में बहकर कॅरियर या जीवन का सत्यानाश नहीं करती हैं। लेखिका इनकी मर्यादाओं और सीमाओं को लेकर कोई सफाई या तर्क नहीं देती हैं, स्वयं कोई निर्णय या उपदेश भी नहीं देती हैं बल्कि पाठक के विवेक पर भी छोड़ती हैं कि वह चाहे जिस रूप में कहानियों के पात्र को देखें। लेखिका ने स्त्री संघर्ष, स्त्री संवेग और संवेदनाओं का अत्यंत सूक्ष्म वह सुंदर चित्रण किया है।

इस प्रकार इस संग्रह की सभी कहानियाँ पठनीय हैं जो पाठक को शुरू से अंत तक बाँधे रहती हैं। कहानियों की भाषा सहज-सरल है तथा उनमें क्षेत्रीय पुट भी है।

000

पुस्तक समीक्षा

अंधेरा पाख और जुगनू

(उपन्यास)

समीक्षक : राहुल देव

लेखक : राजेंद्र वर्मा

प्रकाशक : डायमंड बुक्स, नई दिल्ली

राहुल देव,
9/48 साहित्य सदन, कोतवाली मार्ग,
महमूदाबाद (अवध), सीतापुर (उ.प्र.)
261203
ईमेल- rahuldev.bly@gmail.com

'अंधेरा पाख़ और जुगनू' सुपरिचित रचनाकार राजेंद्र वर्मा का पहला उपन्यास है। राजेंद्र वर्मा की विभिन्न विधाओं में तमाम पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं लेकिन उपन्यास के प्रारूप में यह उनका प्रथम प्रयास है। राजेंद्र वर्मा एक बहुमुखी प्रतिभासंपन्न जनपक्षधर रचनाकार हैं। उनकी सभी कृतियों में इसकी छाप देखने को मिलती है। उपन्यास के शीर्षक में ही निहित है की इस उपन्यास की कथा में हमारे समाज में फैले हुए गहन अँधेरे के बीच तमाम मुश्किलों के बीच कुछ ऐसे जुझारू चरित्रों की दास्तान है जिसे पढ़कर पाठक सकारात्मक संवेदना से भर उठता है। उपन्यास का कथानक शहर से शुरू होकर गाँव तक की यात्रा करता है। लखनऊ और बाराबंकी से लगे हुए अवध क्षेत्र का राजेंद्र जी ने एक कुशल गाइड की तरह विस्तृत वर्णन किया है। इस उपन्यास के माध्यम से उन्होंने लगभग वे सभी समस्याएँ उठाई हैं जिनसे आम ज़िंदगी में एक निम्न मध्यमवर्गीय समाज प्रभावित होता है। सुरेश और प्रदीप नामक दो नवयुवकों के माध्यम से लेखक बदलाव की कथा कहते हैं जिनके बीच तमाम छोटी-बड़ी घटनाएँ आती हैं। उपन्यास की कहानी अत्यंत रोचक है, भाषा बहुत ही सहज है। किस तरह वे मुट्ठी भर लोग स्थानीय राजनीति, धर्म-जाति आधारित फूट, अशिक्षा, शराब आदि बाधाओं को पार करते हुए अपने सपने को सच कर पाते हैं, वह सटीक विश्लेषण के साथ, कथानक में बगैर किसी अतिरिक्त दखल के प्रस्तुत करना लेखक का उद्देश्य है। जिसमे वे काफी हद तक सफल हुए हैं।

इस उपन्यास के माध्यम से राजेंद्र वर्मा जैसे प्रतिबद्ध लेखक हमारे गाँव के जटिल यथार्थ की संरचनाओं को खोलते हैं बल्कि उनपर भरसक प्रहार भी करते नज़र आते हैं और न सिर्फ प्रहार करते हैं साथ ही उम्मीदों की रोशनी भी दिखाते हैं। शहरों में बेरोज़गारी एक प्रमुख समस्या है। पढ़े-लिखे लोगों को जब उनकी योग्यता के अनुसार काम नहीं मिलता तो समाज का विकास भी संभव नहीं होता। अपनी पत्नी सुरेखा को लखनऊ दर्शन कराते हुए सुरेश-सुरेखा संवाद में भी पूँजी के असमान वितरण की समस्या को रेखांकित किया गया है।

इस उपन्यास के स्त्री पात्रों में सुरेखा का चरित्र भी बहुत सशक्त है। अपने पति प्रदीप को बदलाव की प्रेरणा वही देती है। नौकरी ना मिलने पर वह गाँव लौट जाते हैं और एक विद्यालय के जरिए सर्वप्रथम शिक्षा की अलख जगाते हैं। गाँव की आमदनी कम होने का एक मुख्य कारण सीमान्त किसानों के छोटे-छोटे खेत होना भी है। जिसके लिए वह आपस में मिलकर सहकारी खेती का कांसेप्ट अपनाते हैं। गाँव की महिलाओं को रोज़गार देने के लिए स्वयं सहायता समिति का गठन करते हैं। इस तरह तमाम संघर्षों को पार करते हुए वे बदलाव की पुख्ता जमीन तैयार करते हैं। अपने पात्रों के मनोविज्ञान की भी लेखक को बहुत अच्छी समझ है।

पात्रों के मानसिक नैरेशन को लेखक ने बख़ूबी प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास की जीवंतता को देखकर इसके नाट्य रूपांतरण की संभावनाओं से इनकार नहीं किया जा सकता। गाँव के लोगों की आपसी बातचीत पाठक को आत्मीयता से भर देती है। इस सच से कोई इंकार नहीं कर सकता इन सबके साथ साथ लेखक ने गाँव के परिवेश में टीवी और रेडियो के उद्देश्यहीन कार्यक्रमों की भी जमकर खोज-ख़बर ली है। माहौल बिगाड़ने में इनका भी योगदान कम नहीं है। उपन्यास कुल 4 भागों में बटा हुआ है और कोई भी भाग बहुत बड़ा नहीं है। सभी खंड एक दूसरे से बहुत अच्छी तरह जुड़े हुए हैं जिससे कथा प्रवाह बाधित नहीं होता। उपन्यास के अंत में लेखक ने धर्म और जाति को लेकर जिस तरह से तार्किक चर्चा प्रस्तुत की है वह पाठक को वैचारिक रूप से उद्वेलित करता है।

कथावस्तु और चरित्र-चित्रण दोनों ही मानकों पर यह उपन्यास अपने उद्देश्य में सफल है। यह बहुत बड़ा भी नहीं है। इसे आप एक या दो बैठकों में आराम से पढ़ सकते हैं। पहला उपन्यास होने के बावजूद लेखक ने जिस परिपक्वता के साथ इसे निभाया है, वह क़ाबिले तारीफ़ है। उनकी इस कृति को हिन्दी कथाजगत् के पाठकों का प्यार मिलना चाहिए।

000

पुस्तक समीक्षा

फ्लैशबैक

(संस्मरण)

समीक्षक : प्रकाश कांत

लेखक : ब्रजेश कानूनगो

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन,जयपुर

प्रकाश कांत
155, एल. आई. जी.
मुखर्जी नगर, देवास 455011 मप्र
मोबाइल- 9407416269

कवि,व्यंग्यकार ब्रजेश कानूनगो की संस्मरण पुस्तक 'फ्लैशबैक' पुस्तक के ज़रिये अपना ही शहर फिर से घूम लिया, महसूस कर लिया। लेखक ने अपनी किताब में बहुत प्यार और गहरी संवेदना के साथ अपने इस शहर को याद किया है। हर शख़्स का अपना एक गाँव या शहर होता है। अपनी तरह का शहर! अपनी इमारतों, गली-सड़कों, चौक चौराहों के अलावा! इस बाहर से नज़र आने वाले शहर से इतर !! वही उसका अपना शहर होता है। नितान्त अपना! इस तरह एक ही शहर में कई-कई शहर होते हैं। जितने उसके बाशिन्दे उतने ही शहर! हर बाशिन्दे का एक शहर! इसी तर्ज पर मेरा भी एक शहर रहा है। अभी भी है। वही जिसे लेखक ने इस किताब में याद किया है और जो इस पुस्तक में आये उनके अन्य मित्रों का भी शहर रहा है। पिछले अगर साल-भर को छोड़ दिया जाए तो मैं अब भी उसमें घूमता-भटकता रहा हूँ।

'फ्लैशबैक' के लेख किसी शहर का किताबी या अख़बारी किस्म का जानकारीनुमा वर्णन नहीं है। और ना ही यह किसी पर्यटक की डायरी जैसा कुछ है। और यह अच्छी बात भी है। यूँ भी क़ायदे के संस्मरण उस ढंग से लिखे भी नहीं जा सकते। और ना ही उनसे सौ टके वस्तुनिष्ठता और तटस्थता की उम्मीद की जा सकती है। एकतरफ़ापन और भावुकता का ख़तरा उठाते हुए भी! संस्मरणात्मक लेखन में इस तरह की दुर्घटना की आशंका आम तौर पर बनी भी रहती है। कभी-कभी कुछ लोगों के संस्मरण तो आत्ममहिमामण्डन और आपसी पुराने हिसाब-किताब निपटाने की नीयत से भी लिखे हुए मिला करते हैं। या आत्मदया के लिजलिजेपन से लथपथ!

यह ग़नीमत है कि हम जैसे लोगों के पास अपना कहने और उसे याद करने को एक शहर है। शहर है और हमारे निजी नाते-रिश्तों सहित शहर के वे तमाम लोग हैं, जिन्होंने हमारे बनने-होने में जाने-अनजाने मदद की। मैं नहीं जानता कि उनका क्या होता होगा जिनका अपना कहने को कोई गाँव-शहर नहीं होता, कभी-कभी तो देश भी नहीं! पता नहीं वे अपने अकेलेपन में क्या याद करते होंगे! ख़ासकर बंजारे! जो जीवन-भर यात्रा में रहते हैं। हो सकता है उनके पास याद करने को हमसे इतर दूसरा बहुत कुछ रहता हो! सिवाय किसी ख़ास एक ही जगह के!

क़िस्सा मुख़्तसर, अपनी इस किताब में ब्रजेश कानूनगो के पास अपना जो एक शहर (तब क़स्बा) था उसे और उसके लोगों को बहुत गहरी आत्मीयता के साथ महसूस किया और करवाया है। इनमें माँ-पिता, भाई, काका जैसे परिवार के लोगों के अलावा गली-मोहल्ले, स्कूल-कॉलेज के सारे लोग हैं। ये लेखक की उम्र के वे शुरू के दशक थे जिनमें हमारी संवेदना-समझ सबसे मासूम, पवित्र और प्रकृत हुआ करती है। यही वह वक़्त होता है जिनमें हमारे 'बनने' की शुरूआत होती है और लोग, जगहें वगैरह हमारी नसों में ख़ून की तरह बहने लगते हैं। जीवन के बाद के सालों में सब इतना सहज, मासूम और पवित्र जैसा नहीं रह जाता। हम 'समझदार' हो चुकते हैं! दुनियादार भी! हिसाबी-किताबी! अपनी बगल में अपना एक बहीखाता दबाये हुए! ब्रजेश ने शुरूआत के दशकों के देवास का उसी मासूमियत के साथ स्मरण किया है। जगहें-लोग इसीलिए बहुत क़रीबी लगते हैं। इस सब में कई जगह वे बहुत भावविह्वल भी हुए हैं। अतिरिक्त रूप से कृतज्ञ या आभारी भी! ऐसा होना स्वाभाविक था! संस्मरणात्मक लेखन में इस तरह की गुंजाइश या संभावना बनी रहती है।

पुस्तक के केन्द्र में चूँकि लेखक हैं इसलिए जाहिर है इसमें देवास के अलावा दूसरे शहर और उसके वे लोग भी आने ही चाहिए थे जिनकी उनके व्यक्तिगत और सर्जनात्मक जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। यह अच्छा है कि आपने उन्हें भी बहुत श्रद्धा, सम्मान और प्रेम के याद साथ किया है। सिर्फ़ उऋण होने के भाव से नहीं!

ख़ैर, पुस्तक में आईं बहुत सारी जगहें और लोग अब नहीं हैं। लेकिन, चले जाने या ख़त्म हो जाने के बावजूद इस किताब के ज़रिये उनकी मौजूदगी पहले जैसे ही जीवन्त हो गई है। ज़्यादा गहरायी से महसूस होने लगी है। कोई किताब अगर इतना भी काम कर दे तो मेरे ख़याल से यह कम बड़ी बात नहीं है। 'फ्लैशबैक' यह काम बख़ूबी करती है।

000

पुस्तक आलोचना

खिड़कियों से झाँकती आँखें

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : डॉ. सुधांशु कुमार शुक्ला

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

डॉ. सुधांशु कुमार शुक्ला
चेयर हिंदी, आई.सी.सी.आर.
वार्सा यूनिवर्सिटी, वार्सा पोलैंड
मोबाइल- +48579125129

प्रवासी साहित्यकारों में सुधा ओम ढींगरा जी का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं है। लगभग ३९ वर्षों से अमेरिका में रह रहीं कहानीकार, उपन्यासकार, कवयित्री और संपादिका के रूप में कार्यरत सच्ची हिंदी सेविका के रूप में विश्व में जानी जाती हैं। इनकी प्रसिद्धि का मापदंड शोधार्थी ही नहीं, सामान्य पाठक भी हैं। साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन करने वाली सुधा जी एक कुशल संपादिका भी हैं। साहित्य सेवा और समय की व्यवस्थाओं के चलते मुझे इनका कहानी संग्रह खिड़कियों से झाँकती आँखें पढ़ने का अवसर मिला। प्रवास के दौरान पोलैंड में बहुत सारे भारतीय, विदेशी और प्रवासी साहित्यकारों को पढ़ा और उन पर लिखा भी है। यह कहानी संग्रह २०१९ में शिवना प्रकाशन से छपा, इसमें आठ कहानियाँ संकलित हैं। जिज्ञासा से परिपूर्ण, परिवेश की संपूर्ण जानकारी देती हुई, संवेदना से बंधी-कसी, लक्ष्य को दर्शाती, भाषा की कसौटी पर खरी, भाषाई संस्कार में नए-नए मुहावरों, प्रतीकों से पाठक को मंत्रमुग्ध करती हैं। विषयों की विविधता होने पर भी कहानियों में कहानीकार की पकड़ उनके व्यक्तित्व की कसावट नज़र आती है। कोई भी कहानी किसी भी प्रकार से शिथिल, बिखरती नज़र नहीं आती है।

इस कहानी संग्रह का नामकरण खिड़कियों से झाँकती आँखें स्वत: अपने नामकरण की सार्थकता को सिद्ध करता है। आँखों देखी, यथार्थ घटनाओं की जीती-जागती १९८०-९० के परिवेश को दर्शाती ये कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ ही नहीं अपितु चलती फिरती फिल्म सी लगती हैं। इन फिल्मों का निर्देशन अर्थात् मँझी हुई कहानीकार हैं, जो कभी पात्रों की और अपनी दृष्टि को बढ़ाती हैं। शब्दों से दृश्य को चित्रित, वर्णित करते हुए बाँध देती हैं। इस संग्रह की पहली कहानी खिड़कियों से झाँकती आँखें है। कहानी का प्रारंभ ही रोमांच और जिज्ञासा पूर्ण है। 'सारा दिन मुझे महसूस होता रहा..... जैसे कई आँखें मेरा पीछा कर रही हैं। मेरी हर हरकत देख रही हैं। पहले दिन से ही मेरे साथ ऐसा हो रहा है। अभी मैं हस्पताल से घर जा रहा हूँ, ढेरों आँखें पीछा

करती मुझे लग रही हैं..... यह सब क्या हो रहा है। मैं समझ नहीं पा रहा। क्या मैं मानसिक संतुलन खो रहा हूँ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। उन आँखों ने मेरे बदन पर मानों कई मन भार डाल दिया है, क्योंकि शरीर को चलना मुश्किल हो रहा है।' (पृष्ठ-९)

कहानी पढ़ते ही पाठक का मन कई प्रश्नों से भर उठता है। किसी ऐसे कार्य की कल्पना जो अपराध ग्रस्त हो या फिर अहित घटना की ओर मन भागता है। सुधा ओम ढींगरा जी की यह मौलिक उद्‌भावना है कि उन्होंने वृद्ध-विमर्श के कथानक को एक साथ कई आयामों से विख्यात कर डाला है। यह कहने में कोई झिझक नहीं है कि यह कहानी केवल अमेरिका में रह रहे वृद्धों की चलती फिरती फिल्म है। अपितु यह तो विश्व के हर कोने में रह रहे वृद्धों की पीड़ा, अलगाव और सूनेपन की दर्द भरी कहानी है। लेखिका की विश्वव्यापी सोच, दृष्टि की यह उत्तम मिसाल है। डॉ. मलिक पिछले साढ़े तीन-चार साल से न्यूयॉर्क में रह रहे हैं। 'भारत या पाकिस्तान से पढ़कर आए डॉक्टरों को नौकरी ग्रामीण या दूरदराज़ के छोटे-छोटे शहरों या क़स्बों में मिलती है। जहाँ स्थानीय डॉक्टर जाना नहीं चाहते हैं। हाँ पैसा बहुत मिलता है। भारतीय डॉक्टर खुशी से तैयार हो लेते हैं, क्योंकि उन्हें पैसे चाहिए होते हैं। मुझे भी तो पैसा चाहिए।' (पृष्ठ-१०) हस्पताल में बूढ़े डॉक्टर डेविड स्मिथ का कहना 'यंग मैन डॉक्टर सागर मलिक, आई एम फीलिंग स्ट्रेंज। व्हाई यू हैव कम हेयर टू गेट ओल्ड इन दिस स्मॉल सिटी एंड ओल्ड हॉस्पिटल अर्थात् फूलों के शहर में एक बूढ़ा हॉस्पिटल। कोई युवा नज़र नहीं आता है। ऐसे शहर में डॉक्टर सागर मलिक का अपने अपार्टमेंट कंपलेक्स में जाना और ना चाहते हुए भी उन खिड़कियों की ओर मेरी नज़र उठ गई, कई और आँखें अलग-अलग खिड़कियों से मुझे देखती नज़र आई। ज्यों ही दरवाज़ा बंद करके मुड़ा वे आँखें मुझे मेरी पीठ से चिपकी महसूस होने लगी।' (पृष्ठ-१६)

बूढ़ों का यह शहर बड़ी अत्मीयता से आये युवक डॉक्टर को देखकर एक अपनेपन का अनुभव करता है। अपने बच्चों की छवि इन युवाओं में देखता है। इस तरह के शहरों में युवा बड़े महानगरों में रोजी-रोटी के लिए चले जाते हैं, बड़े नगरों में जाकर वहीं बस भी जाते हैं। रह जाते हैं, केवल बूढ़े माता-पिता या फिर जिन्हें बाहर जाने का मौका नहीं मिलता है। यह बूढ़ी आँखें डराने की नहीं हैं, इनसे डरने की ज़रूरत नहीं, इनको दोस्ती का चश्मा चाहिए, पहना दो, चिपकना बंद कर देंगी।' (पृष्ठ-१६)

उसी अपार्टमेंट में डॉक्टर रेड्डी और उनकी पत्नी की कहानी, उनके जैसे ना जाने कितने वृद्धों की व्यथा बताती है। उनका बेटा फ्रांसीसी लड़की से शादी करके पेरिस में रहने लगा। रेड्डी अपनी दक्षिण भारतीय परंपरा के कारण उस फ्रांसीसी लड़की को बहू स्वीकार न कर पाने के कारण बेटे से भी हाथ धो बैठे। कहानीकार का ध्येय इस समस्या के माध्यम से ऐसे वृद्धों, बुज़ुर्गों को भी सचेत करना है कि समय के अनुरूप बदलना उचित रहता है। यह कहानी साथ ही साथ १९८०-९० के दशक के युवाओं की पीड़ा को बयाँ करती है, जो पैसा कमाने के लिए, आगे बढ़ने के लिए भारत से अमेरिका आए। बड़ी मेहनत से पैसा कमाया भी, पैसों की दौड़ में आगे भागे पर रिश्ते पीछे रह गए। लेखिका ने लिखा, 'जब वह पौधा वृक्ष बन गया तो हम उसे उखाड़ कर फिर पुरानी धरती में लगाने ले गए। जिन रिश्तों के लिए पौधा विदेश में वृक्ष बना, उन्हीं रिश्तों ने स्वार्थ की ऐसी आँधी चलाई की वृक्ष के सारे पत्ते झड़ गए। टुंड मुंड हो गया वह।' (पृष्ठ-२१)

डॉक्टर रेड्डी के माध्यम से वृद्धों की सार्वभौमिक, सार्वदेशिक समस्या को बहुत ही चित्रात्मक भाषा के द्वारा चित्रित किया गया है। यही कारण है कि बुज़ुर्गों की नई रीति से रची यह कहानी विशिष्ट बन गई है। कहानीकार ने भारत से आए युवकों की सोच, पीड़ा, सपनों को भी वर्णित किया है। किस प्रकार वे डॉलर कमाने के लिए अथक प्रयास करते हैं। उनकी मेहनत, उनकी परेशानी को उनके परिवार नहीं समझ पाते हैं, उन्हें लगता है कि विदेशों में पैसा अधिक आसानी से कमाया जाता है। यह कहानी डॉक्टर सागर मलिक के माध्यम से युवाओं के उनके भविष्य, उनके बुढ़ापे को याद कराती है। 'मुझे अपना भविष्य दिखाई देने लगा..... रिश्ते ही नहीं, यह देश क्या कम वसूल करता है- सहारे को तलाशती मेरी आँखें भी एक दिन इस देश की किसी खिड़की से झाँकती हुई, किसी भी पीठ से चिपक जायेंगी।' (पृष्ठ-२२)

वसूली कहानी हरिमोहन मेहरा के जीवन की कहानी मात्र नहीं है। यह कहानी उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, जो १९८०-९० दौर के लगभग युवा वर्ग अपने बौद्धिक बल पर भारत से विदेश की धरती पर आए। वे लोग जो गरीबी में पलकर, टयूशन पढ़ाकर, ढाबे पर काम करके आगे बढ़े। आगे बढ़ने के चक्कर में परिवार के उस सदस्य को अपना सब कुछ कुर्बान करना पड़ा, जो अमेरिका, यू.के. इत्यादि देशों में आए। उन्होंने कठिन परिश्रम करके धन कमाया, पढ़ाई के साथ-साथ कई स्थानों पर काम किया। उसने धन अपने परिवार के लिए भारत में घर बनाने के लिए भेजा। भाइयों ने घर ही अपने नाम लिखवाकर, उसे धोखा दिया या फिर अपने ही माता-पिता को भी बेघर कर दिया।

कहानीकार ने बहुत ही सुंदर तरीक़े से दिखाया, 'फाइल उसके सामने खुली पड़ी है। वकील ने उसे हस्ताक्षर करने के लिए स्याही से मार्क किए हुए स्थान को दिखा भी दिया है, पर वह चुपचाप बैठा उस फाइल को देख रहा है।' (पृष्ठ-२३) कहानी का नायक हरिमोहन मेहरा गुमसुम अतीत की यादों में खोया हुआ है। क्या यह वही भाई है, जो उसको अँगुली पकड़कर स्कूल ले गया। क्या यह वही भाई है, जिसने एक साथ मिलकर गरीबी से जंग लड़ी थी। क्या यह वही भाई है, जिसने सरकारी क्वॉटर से माता-पिता के साथ बाहर निकले तो उनका घर हो, ऐसी साथ कसम खाई थी। केवल तीन साल बड़े भाई शंकरदेव ने आज उमा अर्थात् अपनी पत्नी के कारण, वकील की चातुर्य बुद्धि के कारण, छोटे भाई के द्वारा भेजे गए धन से मकान को माता-पिता के नाम न लिखवाकर अपने नाम लिखवाया और अब अपना हिस्सा बेचना चाहता है।

अपने भाई-बहनों को दरकिनार कर अपने माता-पिता को भी भूल जाने वाला बड़ा भाई शंकरदेव धन के लोभ में उमा के बहकावे में आकर ऐसा कार्य करता है। यह धोखा, अविश्वास, लालच, बेशर्मी का होना सामान्य बात है। सुधा जी का ध्यान इससे इतर उस सोच को दर्शाता है कि तकरीबन उस समय के सभी लोगों के साथ लंबा संघर्ष और आर्थिक तंगी थी पर थे वे देश का 'बेस्ट ब्रेन'। उस दौर में डॉलर कमाने के लिए पति-पत्नी को कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी। डालर वृक्षों पर नहीं लगते। यह बात भाई क्या घर का कोई भी सदस्य जानने की भी कोशिश नहीं करता। वे तो बहुत धनी हैं। उनकी चिंता क्या करना? इस सोच ने ही शंकरदेव जैसे बड़े भाई को भटका दिया। 'भाई भी इंसान हैं। उनके अंदर कौरव और पांडव दोनों हैं, वह कौन बाहर निकल आए, कोई भी जान नहीं सकता। आपने उन्हें बहुत ऊँची चोटी पर बिठाया हुआ था। इसलिए आपको चोट गहरी लगी। देश में रहते हुए भी आप अपने संघर्ष में लगे रहे, उन्हें समझाने के लिए आपके पास समय कहाँ था।' (पृष्ठ-४१)

भारतीय सुलभा हरिमोहन की पत्नी अमेरिका में जन्मी फिर भी हरिमोहन की मदद करती रही और आज विपरीत स्थिति में भी वही रास्ता दिखाती है। हरिमोहन चैक को पकड़कर छोटे भाई नरेश से बोला 'किसी रियल एस्टेट एजेंट के पास ले चलो, माँ-बाबा के लिए घर लेना है। नया घर सिर्फ माँ-बाबा का होगा। उस पर किसी बच्चे का कोई हक नहीं होगा। उनके बाद उस घर में माँ-बाबा रहेंगे.....जिनके सिर पर से छत उनके बच्चे छीन लेते हैं.....।' (पृष्ठ-४२) कहानीकार का दृष्टिकोण व्यापक है। वृद्धों की दयनीय स्थिति और बच्चों की अकर्मण्यता, स्वार्थ को दिखाया गया है। बच्चे भूल जाते हैं कि हमारे अभिभावकों ने कितना संघर्ष किया है। सुलभा के माध्यम से यह भी संदेश दिया है कि बहुत अधिक किसी पर विश्वास करके धोखे को निमंत्रण देना है। बचपन में भाई गरीबी में भी साथ निभाते हैं, धन आने पर, बड़ा होने पर 'मैं' का आना विवेक खो देना है। यह पारिवारिक मर्मस्पर्शी कहानी है। कौन किस रूप में वसूली करेगा, यह कहानी में दर्शाया गया है।

एक ग़लत कदम कहानी वृद्ध विमर्श को तो दर्शाती है, साथ ही यह कहानी माता-पिता द्वारा की गई एक गलती के परिणाम को भी दर्शाती है। यह कहानी अमेरिका में रह रहे उन बिंदुओं की भी है, जो संपन्न देशों में अपना बुढ़ापा वृद्धाश्रम जैसे स्थान पर आनंद लेते हुए बिताते हैं। अपनी आयु के मित्रों के साथ घूमते फिरते हैं। एक अच्छी जिंदगी जीते हैं। इस कहानी के वृद्ध पात्र दयानंद शुक्ला और शकुंतला शुक्ला हैं, जो अमेरिका में भी यहाँ की किसी भारतीय लड़की से अपने बेटों का विवाह करवाना चाहते हैं।

अपने देश की संस्कृति और संस्कार का लिहाफ ओढ़े दयानंद शुक्ला को अपने बड़े बेटे शरद से हाथ धोना पड़ता है। शरद अमेरिकन लड़की जेनेट के साथ पढ़ाई के बाद शादी कर लेता है। बेटे की एक भी बात बिना सुने हिटलर की तरह बेदखल करने वाले दयानंद शुक्ला और उनकी पत्नी को उनके अन्य बेटे एडल्ट लिविंग एंड नर्सिंग होम यानी वृद्धाश्रम में छोड़ देते हैं। पिता १७ साल से बड़े बेटे डॉक्टर शरद शुक्ला और बहू डॉक्टर जेनेट से ना स्वयं मिले, ना ही भाइयों को मिलने दिया। इस आश्रम में बड़ा बेटा और बहू उन्हें लेने आते हैं तथा अपने साथ अपने घर ले जाते हैं। अपनी ग़लती का एहसास दयानंद शुक्ला को अब होता है। सुधा ओम ढींगरा की विशेषता यह है कि वह सामान्य सी कहानी को भी विशिष्ट बना देती हैं। 'अमेरिका में इतने सालों से रहने पर भी आप अमेरिकन को स्वीकार क्यों नहीं करते हैं। उनके बारे में संकीर्ण विचारधारा क्यों रखते हैं। अपनी सोच की अँधेरी गलियों में कितना घुसा रहा, रोशनी की एक किरण तक नहीं आने दी। मेरे दर पर कोई नूर आया और मैंने उसे लौटा दिया।' (पृष्ठ-५७)

दयानंद और शकुंतला की घर वापसी तो होती है, साथ-साथ अपनी कोहिनूर पुत्र वधू की पहचान होना और जेनेट के मम्मी-डैडी, दादा-दादी, नाना-नानी आदि सभी का एक साथ अच्छे ढंग से जीना ही कला है। 'भूल जाओ सब कुछ लेट्स एंजॉय दी रेस्ट ऑफ दी लाईफ वी हैव लेफ्ट। अब तुम हमारे गैंग का हिस्सा हो। हम सब मिलकर एक दूसरे का ख़याल रखेंगे, नहीं रख पाए तो यह बच्चे रखेंगे। तुम्हारी उम्र अब सोचने की नहीं जीवन को भरपूर जीने की है।' (पृष्ठ-५७)

यह कहानी प्राचीन धारणाओं को तोड़ती हुई, अमेरिकन अच्छाइयों को, वहाँ की सुविधाओं को उजागर करती हुई, भारतीय समुदाय को वर्तमान में जीने का संदेश देती है। तीन पोते-पोतियों के साथ दयानंद शुक्ला और शकुंतला का जीवन महल जैसे घर में खुशहाल होना, देर आए दुरुस्त आए का परिणाम है।

ऐसा भी होता है कहानी में भारतीय परिवारों में लड़कियों की स्थिति को दर्शाया गया है। लड़कों को अधिक महत्त्व देना उनकी पढ़ाई लिखाई, शौक का ध्यान रखना इत्यादि। पंजाब के परिवेश और खास तौर पर एक विशेष पिंड की यह कहानी है। कहानी में परिवेश पंजाब का है परंतु लेखिका की दृष्टि व्यापक है। उनका संकेत उन माता-पिता की ओर है, जो अपनी बेटियों की शादी करके अमेरिका भेज देते हैं। अपने परिवार और अपने भाइयों की पढ़ाई, मजबूरी, लालच का वास्ता देकर, फिर लड़कियों से पैसे मँगवाते हैं। उनकी सोच यह होती है कि अमेरिका में डॉलर कमाना बहुत आसान है। उसका फ़र्ज़ है कि वह अपने भाइयों की मदद करें। लड़की का अपने ससुराल, अपने पति, अपने बच्चों और अपने लिए सोचने का कोई मूल्य नहीं है। ससुराल के प्रति उत्तरदायित्व नहीं होना चाहिए। यह कहानी निश्चित रूप से दिल को छूने वाली है। यह कहानी उन लड़कियों और माता-पिता को नसीहत देती है कि किसी की मदद करने का अर्थ यह नहीं है कि अपनों को भूल जाओ। बाबूजी एवं बीजी का लिखा, मार्च १९९२ का पत्र, फरवरी १९९३ में दलजीत को मिलता है। शहर के जिप कोड का एक नंबर ग़लत लिख देने के बाद उस पत्र को पढ़कर पुत्री दलजीत से छोटे भाई की माँग को पूरा करने के लिए, बड़े भाई का बैंक लोन उतारने के लिए, कुलदीप अर्थात्

दलजीत के पति की पैतृक भूमि गिरवी रखकर, पैसा लेने के लिए लिखा गया है। पिछले ११ महीने से घर से आने वाले पत्र को पढ़कर, सोच-समझकर एक पुत्री पत्र लिखती है। सास का दरिया दिल होकर बहू की समस्या को समझ कर, उसके भाई के लिए पैसे देना, साथ ही बहू को सचेत भी करना एक अच्छी सास का कर्तव्य भी है, जो इस कहानी का विशिष्ट गुण है। जीवन जीने का संदेश देती है। दलजीत का यह कथन 'हमारे घर में कुड़ियाँ आँगन के फूल नहीं बस एवई पैदा हुई खरपतवार हैं। सारा प्यार, दुलार और सारी सुविधाएँ तो बड़े वीर जी और छोटे वीरे के लिए हैं। अफ़सोस तो इसी बात का है स्त्री ही अपनी जाति के साथ गद्दारी करती है। (पृष्ठ-६३)

इस परिवार ने मुझे एहसास दिलवाया है कि मैं स्त्री नहीं इंसान भी हूँ और मुझे भी सोचने का, कहने का हक है, जो आपके घर में मुझे नहीं मिला। कुलदीप की बीजी मेरी सास कभी नहीं बनी, एक अच्छे दोस्त की तरह मेरे साथ रहती हैं। 'बेटी जिनको लेने का स्वाद पड़ जाता है, उनके लिए रिश्तों की कोई कीमत नहीं होती।' दलजीत की सास का यह कथन कहानी का सार है।

कॉस्मिक की कस्टडी मानवीय संवेदनाओं की अद्भुत कहानी है। रोमांच और जिज्ञासा से भरी यह कहानी अंत तक पाठक को बाँधे रखती है। कहानी का अंत सुखद, रोचक होकर अमेरिकन की संवेदना मनुष्य के प्रति ही नहीं जानवरों के प्रति भी होती है, यह दर्शाने का अंदाज अद्भुत है। मिसेज रॉबर्ट का यह कहना 'सर कॉस्मिक एक दिन का था, जब मेरी गोद में आया था। मैंने कॉस्मिक का पालन किया है। उम्र के इस दौर में मैं उसे अपने पास रखना चाहती हूँ। मेरा बेटा ग्रेग इसके लिए मान नहीं रहा। सर कॉस्मिक मेरा है, मेरा ही रहेगा। माँ का इस पर कोई अधिकार नहीं, ग्रेग ने सिर झटकते हुए बड़े जोर से कहा।' (पृष्ठ-७२) केस सुनने पर मिसेज रॉबर्ट ने अपनी दलील दी, मैंने इसे ठंड के दिनों से पाला, इसे दूध पिलाया। पॉटी ट्रेनिंग के लिए समान लेकर आई। बेटा भी अपनी दलील दे रहा था। तब मैं छोटा था, पति की मृत्यु के बाद मिसेज अपने बेटे और कॉस्मिक के साथ रहने लगी। बेटा माँ को बुरा समझ कर, नौकरी के लिए दूसरे शहर सेलेक्ट में रहने पर कॉस्मिक को अपने पास रखना चाहता है। ग्रेग का यह सुझाव देना कि कोई साथी अपने लिए आप चुने लें। ऐसे समय पर प्रेम की, रिश्तों की अद्भुत व्याख्या, संक्षिप्त में लेखिका ने मिसेज रॉबर्ट के द्वारा कर डाली- 'मैं तुम्हें कितनी बार कह चुकी हूँ कि मुझे कोई साथी नहीं चाहिए। तुम्हारे डैड और मैं बचपन के दोस्त थे। बचपन का दोस्त जब जीवनसाथी बनता है तो वह अपने आप में पूर्ण होती है। क्या हुआ अगर तुम्हारे डैड जिस्मानी तौर पर मेरे साथ नहीं पर मेरे दिल और आत्मा में तो रॉबर्ट अभी भी बसते हैं। हमारा जितना भी साथ रहा, मैं तृप्त, संतुष्ट हूँ। (पृष्ठ-७६)

माँ बेटे के पास तीन बार बिना बताए गई, पर बेटा ना मिल पाया। यह भाव कॉस्मिक के प्रति माँ को बेचैन कर डालता है। माँ को रोता देख कर बेटा ग्रेग उसके आँसू पोंछता है। मॉम संभालों अपने बेटे कॉस्मिक को, कॉस्मिक मिसेज रॉबर्ट के कदमों पर लोटने लगा। मिसेज रॉबर्ट छुअन से सचेत हो गई। खूबसूरत बीगल नस्ल का कुत्ता देखकर उसके लिए माँ बेटे की संवेदना देख कर केस सुनने वाले तो द्रवीभूत हुए ही, पाठक भी द्रवीभूत हो जाते हैं। मेरे कुलीग ने एक बार मुझे बताया था कि यहाँ के लोग कुत्तों के लिए बहुत संवेदनशील होते हैं अगर किसी कुत्ते का केस आए तो बेहद सावधानी बरतना। (पृष्ठ-७९)

यह पत्र उस तक पहुँचा देना कहानी में यात्रा वर्णन के माध्यम से कुछ संस्मरण को उद्घाटित करते हुए प्रेम कहानी को चित्रित किया है। नस्लवादी सोच विश्व में पैर जमा रही है, यह भेदभाव किस प्रकार पढ़े-लिखे अर्थात् बुद्धिजीवियों को भी जानवर बना देता है। ना जाने कितने लोग इसका शिकार होते हैं। सुधा ओम ढींगरा जी की सोच व्यापक है, उन्होंने परिवेश अमेरिका के सेंट लुईस शहर का लिया है, जो अमेरिका के मिड में आता है, जहाँ इस मौसम में अक्सर बर्फीले तूफान आते हैं। मिड वेस्ट वासी तो ऐसे तूफ़ानों को झेलने के आदि हो चुके हैं। प्रदेश की सरकार भी ऐसे तूफ़ानों के लिए तैयार रहती है और तूफ़ान आने से पहले सड़कों पर नमक छिड़क देती है और तूफ़ान आने के बाद सड़कें एकदम साफ कर दी जाती हैं। (पृष्ठ-८१)

ऐसे बर्फीले मौसम में मुंबई से आए मेहमानों को दीपाली और उसके पति हार्दिक उन्हें एयरपोर्ट पर पहुँचाने के लिए निकले हैं उसे चिंता मेहमानों की है, जो उसकी बाट में बैठे हैं और उन्हें एयरपोर्ट पहुँचाना है। अगर वे समय पर नहीं पहुँचे तो उनकी अंतरराष्ट्रीय फ्लाइट मिस हो जाएगी मेहमान मुंबई के हैं। सेंट लुईस से न्यूयॉर्क जॉन एफ कैनेडी एयरपोर्ट जाएँगे वहाँ से मुंबई की फ्लाइट पकड़ेंगे। (पृष्ठ-८२) तीन मेहमान बेलमिल फॉर्मास्यूटिकल के अधिकारी हैं। जिसमें दीपाली प्रोजेक्ट लीडर के रूप में काम करती है। मुंबई में स्थिति इस कंपनी के लोगों को घुमाना और छोड़ना है, दीपाली की जिम्मेदारी कही जा सकती है। कार में बैठे पाँच सदस्य इस तूफान को झेल रहे हैं। उसी समय मेहमान मनीष दीपाली से जैनेट गोल्डस्मिथ नाम की लड़की को किसी का पत्र देने को कहता है। जैनेट का नाम सुनते ही हार्दिक और दीपावली के मन में पूर्व कहानी चलने लगती है। यह कहानी मेहमानों की जिज्ञासा और पाठकों की जिज्ञासा को बढ़ाती है। यह कथानक का बीज है, जो कहानी को गति देकर पाठक को बाँधे रखता है।

दो वर्ष पूर्व विजय मराठा का सेंट लुईस यूनिवर्सिटी में पीएच.डी. के लिए आना और हार्दिक के अंतर्गत उसका काम करना सामान्य बात थी। उसका जैनेट के साथ प्रेम होना, दोनों का एक दूसरे के प्रति लगाव स्वाभाविक सा लगता है। दोनों के बीच नजदीकियाँ बढ़ती हैं। लेकिन जैनेट के पिता जो मेयर हैं नस्लवादी हैं। वह उसकी शादी के पक्ष में नहीं थे, परंतु बेटी को भ्रम था कि उसके पिता उसे धमकी दे रहे हैं। कोई भी पिता अपनी बेटी की खुशियाँ नहीं छीनना चाहेगा, वह बाद में मान जाएँगे। यह भ्रम उसके पिता तोड़ देते हैं, एक हँसमुख मेधावी छात्र को कागजों की जालसाजी में और फिर ड्रग्स के

चक्कर में मुंबई वापस भिजवा देते हैं। मुंबई की जेल में विजय मराठा आत्महत्या कर लेता है, उसका पत्र लेकर मनीष जैनेट को देना चाहता है। हार्दिक बताता है कि मेयर ने विजय को फँसाया और जैनेट की माँ की बीमारी के चक्कर में जैनेट को यहाँ पर रोके रखा। जैनेट की गाड़ी का एक्सीडेंट इसी बर्फीले तूफान में हुआ, जो उसके पिता ने करवाया था। उसे डर था कि अगर जैनेट जिंन्दा रही तो वह उसका राजनीतिक भविष्य ख़तरे में डाल देगी।

कहानीकार का मुख्य उद्देश्य विश्व में इस नस्लवाद के दुष्परिणामों को दिखाना है। आज हम चाँद पर पहुँच गए हैं, लेकिन हमारी संकीर्णता कम नहीं हो रही है। यह मानवता पर कलंक है। रंगभेद, जातिभेद, लिंगभेद के कारण हम इंसानियत खोते चले जा रहे हैं।

अंधेरा उजाला कहानी का परिवेश अमेरिका और पंजाब में बिताए जीवन को दर्शाता है। यह कहानी प्रेम कहानी के साथ-साथ दो संस्कृतियों की विशेषताओं को दर्शाती है। कहानी सामान्य होने पर भी लेखिका की अनूठी शैली और जीवन के तमाम अनुभवों और दोनों देशों की सांस्कृतिक विशेषताओं की समझ के कारण कई बिंदुओं को उद्घाटित करती है। डॉक्टर इला भारती अमेरिका में अपने पति डॉक्टर जगदीश भारती के साथ छाबड़ा परिवार की पार्टी में आई हुई है। पार्टी में भी लगातार डॉक्टर भारती फ़ोन पर बात कर रही है, वह इंटरनल मेडिसन की डॉक्टर हैं। यहाँ के डॉक्टरों के साथ यह आम बात है। पार्टी में होते हुए भी फ़ोन पर रहते हैं। डॉक्टरों की रोगियों के प्रति इस ज़िम्मेदारी से सभी परिचित हैं। (पृष्ठ-९९) अमेरिका में डॉक्टर का अपनी जिम्मेदारी का अहसास दिखाकर कहानीकार ने वार्तालाप में युवतियों के द्वारा अपने बच्चों की झूठी प्रशंसा करके एक दूसरे के बच्चों को कम आँकने का प्रचलन दिखाया है। एक अच्छे अभिभावक के रूप में सुधा ओम ढींगरा का चरित्र स्पष्ट नज़र आता है। बहुत से माँ-बाप उसने ऐसे देखे हैं, जो अपनी अतृप्त इच्छाओं को बच्चों से पूरा कराना चाहते हैं। उससे बच्चे किस मानसिक तनाव से गुज़रते हैं माँ-बाप कभी महसूस नहीं कर पाते। कई बार बच्चे अवसाद में चले जाते हैं। (पृष्ठ-१००) यह समस्या भारतीय समुदाय में अधिकांश रूप से पाई जाती है। जिससे बच्चे अंकों के चक्कर में घनचक्कर बन कर रह जाते हैं।

पार्टी में मीना और कमल के द्वारा गाना गाए जाने पर डॉक्टर इला को पंजाबी गीत सुना हुआ सा लगता है। इंग्लैंड से आए अपरिचित जोड़े को इला ध्यान से सुनती है और देखती है। पार्टी में इला ने मीना में वह अंदाज़ और गीत की पंक्ति को हवा में लहराते हुए हल्के से छोड़ने की वही अदा पाई, जो सिर्फ उसकी थी। इला को लगा जैसे वह उसे सुन रही है। (पृष्ठ-१०३) पूर्व दीप्ति में अतीत में जाने पर युवा इला के परिवार से जुड़े मनोज पंजाबी का चरित्र उभर कर आता है। एक तरफ ज़मींदार परिवार की इला है दूसरी ओर पखाना ढोने वाली दलित सोमा, वीरां और मनोज अर्थात् नाना-नानी और बेटे का इस परिवार में आँगन तक आने की हिम्मत रखने वाला परिवार है। अपनी चिट्ठियाँ लिखवाने के लिए इला की मम्मी के पास वीरां आती थी। उनके आने पर इला की दादी पूरा घर धुलवाती। कई दिनों तक उन्हें बदबू आती रहती और आँगन धुलता रहता। कई वर्षों बाद घर में आधुनिक शौचालय बना तब भी सोमा आती रही बाहर के आँगन भीतर का आँगन और बग़ीचे की कई हिस्से भी सफाई कर जाती थी। (पृष्ठ-१०५)

इला के चाचा की शादी में मनोज पंजाबी प्रसिद्ध गायक के रूप में आता है। उसकी प्रसिद्धि के कारण इला के पिता उससे जागरण करवाते हैं। घर की युवा लड़कियाँ उसकी गायकी की दीवानी होती हैं। सात दिनों तक चले कार्यक्रम में इला अपने मन के भावों को रोक नहीं पाती है। वह मनोज के हाथ को पकड़ कर यह वादा लेती है कि वह खूब रियाज़ करेगा और गाता रहेगा। (पृष्ठ-१०८) मात्र एक छोटी सी घटना ने घर में हाहाकार मचा दिया। गंद ढोने वाले परिवार के लड़के मनोज का हाथ पकड़ते इसे शर्म नहीं आई। पिताजी द्वारा प्रताड़ित होने पर इला का मन कचोट कर रह गया उसके बाद उसे बदचलन अशिष्ट कहा गया। फिर, उसने पलटवार करते हुए कहा- हाँ नहीं आई बदबू! मुझे सिर्फ इत्र की ख़ुशबू आई थी, जो उसने लगाया हुआ था वह जागरण करता है। देवी माँ के चरण स्पर्श करता है, उसे छूता है। जब देवी माँ को उससे बदबू नहीं आती तो मुझे कैसे आती। आप भी तो सब उसके साथ चिपक-चिपक कर तस्वीरें खिंचवा रहे थे, आई आपको बदबू। (पृष्ठ-१०८) यह घटना इला को अपने माता-पिता से दूर कर देती है। वह अपनी शादी अपने सहपाठी जगदीश के साथ अमेरिका में कर लेती है। मनोज भी गुमनाम होकर अपना काम करता रहता है। आज मीना के गाने को सुनकर उसे मनोज पंजाबी याद आता है। वह मीना से पूछती हैं कि मनोज आपके कौन थे? जब इला को पता चलता है कि मीना मनोज की बेटी है। मनोज ने अपनी फ़ैन के कारण बीमारी में गाना बंद नहीं किया वह गाता रहा। रियाज़ करता रहा। किस प्रकार उसके अपने चाहने वालों ने शराब में कुछ मिलाकर उसे पिला दिया, जिससे उसकी आवाज़ जाती रही। मनोज की गुरु उसकी माँ थी। मनोज और उसकी पत्नी ने कई प्रोग्राम किए। गाना मनोज पंजाबी की ज़िंदगी थी, उसकी अस्मिता, उसकी पहचान थी। वह ज़िंदगी ही उससे छीन रही थी, अवसाद आना स्वाभाविक था। माँ उसकी यही समझती थी पर जब डैड ने उन्हें बताया कि वह सच का सामना कर सकते हैं पर उनके फ़ैन नहीं। किसी फ़ैन ने उनसे वादा लिया था कि वे रियाज़ करते रहेंगे और गाते रहेंगे। दुनिया के किसी भी कोने में वह उनकी गायकी को सुनते रहना चाहता था। (पृष्ठ-११४)

मॉम ने डैड को समझाया कि उस फ़ैन ने आपकी गायकी को ज़िंदा रखने के लिए वादा लिया था। वह तो औरों के द्वारा भी ज़िंदा रह सकती हैं, उन्होंने डैड के लिए एक स्कूल खोला। जिसमें मॉम, मैं, बुआ और उनके बच्चे पहले स्टूडेंट थे। (पृष्ठ-११५) इला यह सुनकर द्रवीभूत हो जाती है। निश्चित रूप से इला मनोज पंजाबी की गायकी की दीवानी थी। उनका प्रेम अंकुरित हुआ, लेकिन समाज की कुप्रथा सोच के कारण दबकर रह गया।

यह जीवन का अँधेरा है, जिसमें कुछ समय के लिए इला अपने माँ-बाप को दोषी समझती है। आज उसके माँ-बाप उसके पास आते हैं। एक अपराध बोध से मुक्त हुई कि वह और उसके माता-पिता मनोज पंजाबी की गुमनामी के जिम्मेदार नहीं हैं, यह जीवन का उजाला है। इला मीना को गले लगा लेती है, यह प्रेम सात्विक है। कहानीकार ने एक फ़ैन के प्रति गायक का अटूट प्रेम और अमेरिका की सोच को भी दर्शाया है। जहाँ सब एक समान है, कोई जाति भेद नहीं है। कहानी में जिज्ञासा अंत तक बनी रहती है, कहानी पठनीय है।

एक नई दिशा कहानी में मानसिक दृष्टि में कब और कैसे परिवर्तन आता है, यह बात कहानीकार ने बहुत ही सुंदर तरीक़े से प्रस्तुत की है। यह कहानी आदर्शवादी ढंग से चरम सीमा तक पहुँचती है। परंतु मुझे लगता है कि यह कहानी सुधा ओम ढींगरा जी के इर्द-गिर्द घटी घटना का यथार्थ चित्रण है।

अमेरिका का परिवेश चमक-दमक की दुनिया और संपन्न परिवार की मौली अपने डिब्बे में रखे हीरे के नेकलेस को देखती है। उसी समय उसके पति परेश आते हैं और कहते हैं मौली देखती ही रहोगी या इसे पहनोंगी भी। कभी पहन भी लिया करो तुमने बड़े शौक से ये आभूषण बनवाए हैं (पृष्ठ-११७) मौली समय की नजाकत को पहचानती है और उसे वह पूर्व घटित घटना याद आ जाती है। पूर्व दीप्ति के माध्यम से पूरी कहानी फिल्म की भाँति रोमांच और अनहोनी घटना का भयावह दृश्य प्रस्तुत करती है। मौली एक रियल स्टेट कंपनी में काम करती है। रीटा भास्कर और उसका पति ग्राहक बनकर उसे लैंडलाइन पर एक पॉश इलाके में विला जैसा बड़ा आलीशान मकान देखने की इच्छा प्रकट करते हैं। दो दिन बाद ही उसे रीटा भास्कर और उसका पति ई-मेल से दो-तीन घंटे में मकान देखने की बात कह कर बुला लेते हैं। उसके गले में पहने हीरे के नेकलेस को चुराने, छीनने की प्रतिक्रिया में यह कहानी चलती है। मौली की चतुराई समझदारी से उसका नेकलेस बच जाता है। परंतु दूसरी एजेंट के हाथ से डायमंड की अँगूठी ले जाते हैं।

यह घटना सामान्य सी है, हम सब किसी ना किसी तरह धोखे का शिकार हो जाते हैं। खासतौर पर महिलाओं को ज़ेवरात बनवाने का बहुत शौक होता है। उस दिन मौली चतुराई से घर आकर नकली सेट पहन कर चली गई। जिसकी भनक रीटा भास्कर और उसके पति को लग जाती है और वह जल्दी से वापस अनमने मन से घर देख कर चला जाता है। यह घटना किस प्रकार उसको बदलती है, यह अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्लीज़ मेरे यह गहने बेशकीमती हैं, मैंने इनका एंजॉय भी बहुत किया है। क्यों नहीं इन्हें बेच कर उस धन से उन बच्चों को शिक्षा दिलवाएँ, जो प्रतिभाशाली हैं पर धन की कमी के कारण आगे पढ़ नहीं सकते। चाहती हूँ जब भी मेरी आँखें बंद हो मेरे भीतर शांति हो, सकून हो कि मैं अपने लिए ही नहीं दूसरों के लिए भी जी हूँ। कुछ फूलों को खिलने में मदद की है। कहकर परेश की आँखों में देखने लगी। परेश ने मौली के चेहरे पर उतर आई नूर और आँखों की चमक को देखते हुए उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया और हाथ को चूम लिया। (पृष्ठ-१३२)

दूसरों के लिए जीने का भाव जीवन जीने की कला है। कहानी शिक्षाप्रद, जिज्ञासा से भरी और अमेरिकन रियल स्टेट की कार्यपद्धति को दर्शाती है। ग्राहक को सब चीजें, सुविधाओं उस इलाके के विद्यालयों उनकी रेटिंग आदि सब का विवरण दिया जाता है।

सुधा ओम ढींगरा का यह कहानी संग्रह वृद्ध विमर्श की सुंदर व्याख्या करता है, साथ ही साथ नस्लवाद की आग से टूटती मानवता का प्रभाव विश्व में हर जगह देखा जाता है, जो समाज पर कलंक है। मानवीय संवेदनाओं की व्याख्या रिश्तों में देखने को मिलती है। यह कहानी अपने आप में एक कहानी न होकर फिल्म सी नज़र आती है। पाठक को बाँधने की कला में निपुण कहानीकार के पास भाषा की पकड़ और उसका प्रयोग अद्भुत है, जैसे- दोस्ती का चश्मा, स्वार्थ की ऐसी आँधी चलाई, टुंड मुंड हो गया आदि। भाषा की कसावट, उसकी शब्द संपदा देखकर लगता है कि वह हिंदी के साथ-साथ अंग्रेज़ी शब्दों और वाक्यों को अवसर अनुकूल प्रयोग करती चली जाती हैं, जैसे- 'यंग मैन डॉक्टर सागर मलिक, आई एम फीलिंग स्ट्रेंज। व्हाई यू हैव कम हेयर टू गेट ओल्ड इन दिस स्मॉल सिटी एंड ओल्ड हॉस्पिटल, लेट्स एंजॉय दी रेस्ट ऑफ दी लाईफ वी हैव लेफ्ट, प्लीज़ मेरे यह गहने बेशकीमती हैं, मैंने इनका एंजॉय भी बहुत किया है। पंजाबी शब्दों और गीतों की कुछ झलक भी दिखाई पड़ती है, जैसे- 'हमारे घर में कुड़ियाँ आँगन के फूल नहीं बस एवई पैदा हुई खरपतवार हैं। उनकी लेखनी को धार देने का कार्य मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग ने किया है। कवयित्री होने के कारण कहानी में परिवेश को दर्शाते समय चित्रात्मकता दिखलाई पड़ती है। परिवेश को दर्शाने में सुधा जी पाठक को अमेरिका की सैर करवा देती हैं। एक अनुभवी सजग नागरिक होने के गुण उनकी कहानियों में देखने को मिल जाते हैं। कहानी मात्र कहानी लिखने वाले कहानीकारों से अलग सुधा जी संवेदना जगाने और स्वयं को पहचानने की सीख देती नज़र आती है।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

पूँजीवादी-उपभोक्तावादी संस्कृति और स्त्री

(विशेष संदर्भ- पंकज सुबीर की कहानियाँ)

समीक्षक : दिनेश कुमार पाल
(शोधार्थी)
हिन्दी एंव आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रयागराज

दिनेश कुमार पाल
बैरमपुर, बैरमपुर, कौशाम्बी-212214
उत्तर प्रदेश
मोबाइल- 9559547136
इमेल-dineshkumarpal6126@gmail.com

पूँजीवादी और उपभोक्तावादी संस्कृति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। बाज़ार की दुनिया में आत्मा का कोई मूल्य नहीं है, मूल्य है तो सिर्फ़ शरीर का। "आज की दुनिया में एक नया विचार दर्शन अत्यन्त प्रबल है जिसको हम मोटे तौर पर बाज़ारवाद कह सकते है। बाज़ारवाद राज्यवाद के मुकाबले में ज़्यादा आकर्षक लग रहा है। बाज़ारवाद का व्यक्ति के लिए सरांश क्या है? इसको कुछ लोग उपभोक्तावाद कहते है।"१ पूँजी कुछ थोड़े ही आदमियों के हाथ में रह जाती है। बल्कि अधिकांश लोग निर्धनता के प्रकोप से पीड़ित रहते है। आज भूमडण्लीकरण के दौर को मिश्रण का युग कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। वर्तमान दौर में पूँजीवाद ने बाज़ार की कमर को जकड़ रखा है। आज का समय उपभोक्ता को महत्त्व देता है न कि उत्पादक को। आज के बाज़ारवाद को लाने का काम भूमण्डलीकरण का है। और पूँजीवाद की बुनावट वैश्विक है। आज पूरा विश्व एक बाज़ार है और इस आधुनिक युग का हर एक व्यक्ति उपभोक्ता है। "भूमण्डलीकरण सिर्फ पूँजी के हित में है, किसी देश के हित में नहीं इसलिए चेहरा अदृश्य-अमूर्त है लेकिन उसका आघात बहुत विषम है।"२

"कहानी का संक्षिप्त कलेवर हो या उपन्यास का विस्तृत फ़लक, वह रह-रह कर मनुष्यता को निगल जाने को आतुर है। उपभेक्तावादी मानसिकता के खिलाफ़ मोर्चाबन्दी करता दिखाई पड़ता है।"३ आज पूरी दुनिया को पूँजीवाद ही संचालित कर रहा है। और पूँजीवाद के चलते उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा मिल रहा है। इन सब के बीच सबसे ज़्यादा शोषण का शिकार स्त्री को होना पड़ता है। या इसको ऐसा भी कहा जा सकता है कि जब भी कोई नई क्रान्ति उपजी है या कोई सत्ता स्थापित हुई उसमें सबसे ज़्यादा शिकार स्त्री का हुआ है।

बीज-शब्द- भूमण्डलीकरण, पूँजीवाद, उपभोक्तावाद, अपसंस्कृति, ब्रांडेड, जारसत्ता, बेनक़ाब, स्टेट्स आदि।

परिकल्पना- भूमण्डलीकरण के दौर में पूँजीवादी, उपभोक्तावादी संस्कृति आदि ताक़तों को जानने की कोशिश। मानव मूल्यों को स्थापित करने और नष्ट करने में इनकी क्या भूमिका है, इस पर थोड़ा प्रकाश डाला गया है।

आमुख-

हमारे समय के सबसे बड़े हस्ताक्षर कथाकार, आलोचक, ग़ज़लकार पंकज सुबीर की कहानियों में पूँजीवाद, उपभोक्तावादी संस्कृति और स्त्री बड़े बखूबी के साथ उभरे हैं। पंकज सुबीर की तीन कहानियों (सदी का महानायक उर्फ कूल- कूल तेल का सेल्समैन, मिस्टर इण्डिया, चौपड़े की चुड़ैलें) के माध्यम से देखेंगे की पूँजीवादी, उपभोक्तावादी संस्कृति हमारे समाज के स्त्री को किस प्रकार प्रभावित करता है। समकालीन लोकप्रिय कथाकार पंकज सुबीर की शैली भिन्न-भिन्न प्रकार की है। पंकज सुबीर की समकालीन समय को कहानियों में देखने की नज़रिया और उसे कहानी में प्रस्तुत करने की शैली भिन्न प्रकार की है। पंकज सुबीर अपने कथा साहित्य में यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि किस प्रकार समाजिक संघातों और बाज़ारवादी अपसंस्कृति के चलते आज का युवा अपनी चेतना को गिरवी रख पूँजीवादी शक्तियों के हाथों की कठपुतली बन कर रह गया है।

'सदी का महानायक उर्फ कूल-कूल तेल का सेल्समेन' पंकज सुबीर के कहानी संग्रह महुआ घटवारिन और अन्य कहानी में संकलित है। यह कहानी बाज़ार के रूप में तीन मित्रों की प्रतीकात्मक शैली पर अधारित है। जो व्यक्ति के अन्दर हवा की तरह समाहित हो जाते हैं,- "मैं शिल्पा के साथ पार्क की बैच पर बैठा पापकार्न टूँग रहा था कि अचानक ही तीनों हवा में प्रकट

हो गए थे और देखते ही देखते धड़-धड़ करके शिल्पा में घुस गए थे।"(पृष्ठ- १०, सदी का महानायक उर्फ कूल-कूल तेल का सेल्समैन) यह कहानी फैंटसी के जरिए एक सामान्य उपभोक्ता से प्रारम्भ होकर पूँजीवादी बाज़ार के ब्राण्ड एम्बेस्डर तक अंत होती है। यह संपूर्ण कहानी पूँजीवादी, उपभोक्तावादी अपसंस्कृति और एक स्त्री के प्रेम में उपभोक्ता का इनके सक्षम आत्मसमर्पण का चित्रण करती है। "अब हम तय करेंगे कि तुम्हे किस चीज़ की ज़रूरत है और किसकी नहीं। अब तुम ख़ुद नहीं तय करोगे ये सब। अब तुम्हारा और हमारा लिंक जुड़ चुका है। इसलिए अब ये सोचने की जवाबदारी हमारी हो चुकी है। हम बाज़ार है और तुम ख़रीददार। हम नहीं जानते कि तुम पैसों की व्यवस्था कहाँ से करोगे, मगर हाँ ये तय है कि अब तुमको वो सब कुछ ख़रीदना है, जो हम बताते हैं।"(वहीं-२४)

बाज़ार पहले के उत्पादों को कमज़ोर करके नए उत्पादों का प्रसार करता है और व्यक्ति को प्रेमिका की तरह आत्म समर्पण करने के लिए विवश कर देता है। बाज़ार समय के अनुसार हम पर इस कदर हावी हो जाता है कि हमारा स्वरूप उसके सामने नगण्य हो जाता है। उसे सिर्फ़ हमारा शरीर ही नज़र आता है। वर्तमान में अपने स्टेटस को दिखाने की प्रतियोगिता की आँधी चल रही है। "कच्छे में घूमना कोई शर्म की बात नहीं है, बस कच्छा ब्राण्डेड होना चाहिए। और अगर कच्छे में ना भी घूम पाओ तो कम से कम पैंट को इतना नीचे खिसका कर पहनो कि तुम्हारी चड्डी का ब्राण्ड दिखाई दे। ये केवल चड्डी नहीं है ये स्टेटस है समझे ?"(वहीं-१२)

"उत्तर-आधुनिक (वृद्ध पूँजीवादी के) दौर तक आते-आते अनुभव का स्थान भोग लेता है, विश्वास का स्थान प्रतीक (ब्राण्ड) ले लेता है और स्मृति की जगह आनन्द आ बैठता है।"४ स्टेटस ब्राण्डेड में बदलता जा रहा है। ब्राण्ड के सामने भूख, ग़रीबी कुछ भी दिखाई नही देता। पूँजीवादी अपसंस्कृति इस कदर हावी हो गई है कि बाज़ार अपनी व्यवस्थाएँ पहले तय करके चलता है। हमें और उपभोक्ता को वस्तु ख़रीदने के लिए मजबूर कर देता है। "बाज़ार सारी व्यवस्थाएँ करके ही चलता है। अगर बाज़ार ने तुमको दो सौ रुपये का कच्छा ख़रीदवाया है तो अब ये बाज़ार की ही ज़िम्मेदारी है कि वो ऐसी व्यवस्था करे ताकि लोग जान सकें कि तुमने दो सौ रुपये का ब्राण्डेड कच्छा पहना है। आख़िर तुम सब को पैंट खोल- खोल कर तो बताओगे नहीं।"(वहीं-१५)

पंकज सुबीर इस कहानी के माध्यम से पूँजीवादी उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते बाज़ार की उन तमाम चालाकियों को उजागर करतें हैं जो परत दर परत बेचने की कोशिश करते है कि बाज़ार ब्राण्ड के साथ- साथ अपना प्रचार-प्रसार भी व्यक्ति की चेतना को गिरवी रख कर उसके शरीर के माध्यम से करती है "सुनो बच्चे! ये चड्डी दिखाने का युग है या यूँ कहो कि हर वो चीज़ दिखाने का युग है, जिसे अब तक छुपाने लायक समझा जाता था। बाज़ार का बहुत सीधा कहना है कि दिखाएगा वही, जिसके पास कुछ होगा अगर तुम्हारे पास दिखाने लायक चड्डी है तो बिंदास दिखाओ, दिखाओ सबको कि अब तुम भी उस स्पेशल क्लास में आ गए हो।" (वहीं-१५)

बाज़ार यह भी हमें बताती है कि हम तुम्हारे अपने हैं हम तुमको बदलने आए है। और हमारा धर्म हम है हम तुम्हें बदले। और तुम्हारी माली हालत में भी तुम्हारी मदत करने के लिए तैयार है। उपभोक्तावादी संस्कृति में विलासिता की वस्तुओं को ब्राण्डों के वर्चस्व के रूप में देखता है और 'ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत' (अर्थात् उपभोग की वस्तुओं का प्रयोग करना) आदि को बढ़ावा देता है। अर्थात् क़र्ज़ लेकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति करना। "ठीक है। लो ये तुम्हारा क्रेडिट कार्ड है। अब जेब तंग होने का रोना मत रोना, जितनी चाहो, ख़रीददारी करो। जब चाहे ख़रीददारी करो, करो, करते रहो, करते रहो।"(वहीं-१९)

पूँजीवाद ने मानव को विचार शून्य बना दिया है। मानव सिर्फ पूँजीवाद के चलते उपभोक्तावाद की वस्तु बन कर रह गया है। बाज़ारवादी, पूँजीवादी, उपभोक्तावादी संस्कृति ने मनुष्य को विचारों से शून्य करके सिर्फ शरीर बना दिया है। और उसके पूरे शरीर पर अधिकार जमा कर बैठ गया है। "भूमण्डलीकरण, मुक्त बाज़ार इत्यादि के पीछे की विचार धारा ने जो एक विशेष किस्म की विचारहीनता पैदा की है, उसका असर अब हर तरफ़ दिखाई देने लगा है। हद तो यह हुई कि वैचारिकता और मूल्यनिष्ठा जिन लोगों की पहचान थी और प्रतिरोध के लिए जाने जाते थे वे भी इस बाढ़ में बहते देखे गए और भारी विचलन का शिकार हुए।"५ और बड़े दावे के साथ कहते है कि "विचार ? इसकी इजाज़त अब नहीं है तुमको। अब तुम केवल शरीर हो। शरीर विचार नहीं करता। हम अपने ग्राहकों को शरीर से ज़्यादा होने की इजाज़त नहीं देते। तुम भी शरीर ही रहो, विचार करने या विचार होने की कोशिश मत करो। वो सब कुछ ख़रीदते रहो, जो हम बता रहे हैं, वो सारी चीज़ें, जो शरीर के लिए हैं।"(वहीं-२४)

बाज़ार अपना उत्पाद व्यक्ति को ख़रीदने के लिए मजबूर कर देता है। और पूँजीवाद के चलते व्यक्ति के ऊपर चढ़ कर वो हर चीज़ बेचने के लिए तैयार है जो ब्राण्डेड है,चाहे वह व्यक्ति की हिम्मत से परे हो। और उसके लिए शोभनीय न हो लेकिन उपभोक्तावादी संस्कृति ख़रीदने के लिए विवश कर देती है "क्यों शोभा नहीं देता ? मेरी बात है, मेरा प्रभाव है, मैं कुछ भी बेच सकता हूँ, तेल बेच सकता हूँ, कंडोम बेच सकता हूँ, जो कुछ भी मुझे कहा जाएगा, वो बेचूँगा। इसमें शोभा नहीं देने की क्या बात है।"(वही-२५) वर्तमान का बाज़ार फैशन का बाज़ार है। व्यक्ति वस्तु नहीं ख़रीदता चेहरे ख़रीदता है। बाज़ार यही चाहता है। "वो हमको नहीं पता, हमारा काम बेचना है, केवल बेचना। ये जो हमारा चेहरा है, इसे देखो और ख़रीदो। तुम सामान को नहीं ख़रीद रहे, हमारे चेहरे को ख़रीद रहे हो, सदी के महानायक के चेहरे को ख़रीद रहे हो।"(वही-२५)

भूमण्डलीकरण के दौर में आज उपभोक्तावादी अपसंस्कृति, पूँजीवादी दमनकारी व्यवस्था का परिणाम ही नहीं अपितु उसके आगे मशाल लेकर चलने का काम करती है। सामान्य जीवन पर कैसे प्रभाव

पड़ रहा है। पूँजीवादी संस्कृति है वह मूलत: उपभोक्तावादी है और वह बहुत अश्लीलता और अपसंस्कृति का प्रसार कर रही है। पूँजीवाद वैश्वीकरण के दौर में बाज़ार निर्माण का कार्य करता है। वह रोज़ नए-नए मॉडल तैयार करता है। पूँजीवाद व्यक्तिवाद को महत्त्व देता है। और व्यक्ति को एकाकी बनाता है। पूँजीवाद समाजवाद का खण्डन करके व्यक्ति पर अपना अधिकार स्थापित करने की कोशिश करता है। हाँ यह भी कहा जा सकता है जहाँ पूँजीवाद व्यक्ति को एकाकी बनाता वहीं उसे समृद्ध भी करता है।

पंकज सुबीर की कहानी 'मिस्टर इण्डिया' (महुआ घटवारिन और अन्य कहानियाँ में संकलित) में दिखाया गया है कि किस प्रकार बाज़ार के बिछाये हुए जाल में रातों- रात सफलता पाने के लिए व्यक्ति को क्या-क्या क़ीमत चुकानी पड़ती है। पूँजीवाद व्यक्ति को प्राय: विचारहीन बना देता है। "पिछले कुछ सालों में ये सब कुछ इस बाज़ार ने कर दिया है। सत्यानाश। सत्यानाश बौद्धिकता का, सत्यानाश विचारों का और सत्यानाश दिमाग़ों का भी।"(वही-४८)

आज की पूँजीवादी, उपभोक्तावादी ताक़तें व्यक्ति के सिर्फ शरीर को महत्त्व देती हैं, उसकी बौद्धिकता को नहीं, अगर शरीर बिकने के लिए तैयार है तो उसकी गुणवत्ता के हिसाब से उसकी मुँहमागी रकम भी देने के लिए तैयार हैं "ये साहित्य, ये संस्कृति, ये विचारधाराएँ, ये सब तो दिमाग़ों के लिए हैं और बाज़ार कब चाहेगा कि दिमाग़ों का विकास हो। उसे तो शरीर चाहिए। ताज़ा और जवान जिस्म। आज जो दौर है, ये शरीर का दौर है, ये बाज़ार का दौर है। कुछ सालों पहले तक दिमाग़ों का दौर हुआ करता था और तब इसी बाज़ार को कोई पूछता भी नहीं था। दिमाग़ों को विचार नियंत्रित करते हैं, किंतु शरीरों को बाज़ार नियंत्रित करता है। इसीलिए बाज़ार ने पहले विचारों को समाप्त किया और फिर दिमाग़ों को और उसके बाद शरीर उसके कब्ज़े में आ गए।"(वहीं-४९)

बाज़ार ने व्यक्ति के ब्रेन को इस प्रकार हैक किया है कि आप के पास सिर्फ आपका शरीर ही बचा है और वह हर चीज़ जो "बाज़ार तो बनाता है कंडोम, कोल्ड ड्रिंक, मोटरसाइकिलें, कारें, मोबाइल, अंडरवियर और जाने क्या-क्या।"(वही-४९) बेचने के लिए तैयार है। पंकज सुबीर इस कहानी के माध्यम से यह बताने की कोशिश की है कि बाज़ार ने आदमी के विचार को हाशिये से भी बाहर फेंक दिया है। और उसके सम्पूर्ण शरीर पर विजय की पताका लहरा रही है। "और चूँकि बात शरीर की है, इसीलिए समय कम है। शरीर जल्दी तैयार होता है और जल्दी ही ख़त्म भी हो जाता है। विचार बहुत धीरे-धीरे तैयार होते हैं और देर तक क़ायम रहते हैं। तुम चूँकि बाज़ार बेचने वाले शरीरों की दुनिया में जा रहे हो, इसलिए तुम्हारे पास उतना ही समय है, जितना तुम्हारे शरीर के पास है।"(वही-४९)

आज पूँजीवादी उपभोक्तावाद संस्कृति के चलते व्यक्ति के प्रत्येक अंग का उपयोग बाज़ार बड़ी ख़ूबी से करता है। "मेरा आशय है तुम्हारे इन गुलाबी होंठों से, चमकते दाँतों से, रेशमी बालों से, जिम में जाकर तराशे गए इस सुगठित बदन से, बिकाऊ तो यही सब कुछ है, तुम थोड़े ही हो। तुम्हारे ये बाल शैम्पू वालों के काम आएँगे, तुम्हारे दाँत टूथ पेस्ट वालों के, शरीर चड्डी-बनियान वालों के हिस्से आएगा और तुम्हारा कसरती बदन काम आएगा कंडोम वालों के। इन सबको अपना सामान बेचने के लिए एक ज़िन्दा माल चाहिए। कभी मेडिकल कॉलेज की प्रयोगशाला गए हो ? वहाँ हर विभाग वाले शव के अलग-अलग हिस्से पर कब्ज़ा कर लेते हैं और उस पर अपने-अपने हिसाब से प्रेक्टिकल करते हैं, यही तुम्हारे साथ भी होगा।"(वहीं-५०)

"उपभोक्तावादी बाज़ार की प्रक्रियाओं से 'यूज एण्ड थ्रो' यानी भोगो और बदलो के व्यवहार प्रतिफल नवीनता अस्थिरता और थ्रिल का मनोविज्ञान उत्पन्न होता है।"६ आज बाज़ार की सत्ता का युग है। और बाज़ार को हर दिन ताज़ा माल की ज़रूरत होती है। वह बाज़ार सिर्फ़ नया समान ही बेचता है और पुराने सामान को कूड़ादान में फेंक देता है। बाज़ार वह ताक़त है जो व्यक्ति को अपने अनुसार बनने के लिए मजबूर कर देता है। "हर चीज़ का मतलब हर चीज़, क्योंकि बाज़ार का मानना है कि हर चीज़ बिकती है और हर चीज़ ख़रीदी जा सकती है। और चूँकि बाज़ार की सत्ता का युग है, इसलिए तुमको वही करना होगा, जो बाज़ार चाहता है। नहीं करोगे तो बाज़ार तुमको लात मारकर बाहर कर देगा। तुम बाज़ार के प्रतिनिधि बनने जा रहे हो, इसलिए ये मान लो कि अब वही तुमको नियंत्रित करेगा। उसे तुम्हारा उपयोग करके अगरबत्ती से लेकर कंडोम तक सब कुछ जो बेचना है।"(वही-५१)

"जैसे-जैसे पूँजीवादी सभ्यता मानव-जीवन के सभी पक्षों को घेरती गई, वैसे-वैसे वह उत्पादन और उपभोग को श्रम और सृजन को वस्तु और कला को उपभोग और मानव को एक दूसरे से दूर और विरोधी बनाती गई है।"७ पूँजीवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति ने बाज़ार को बाज़ारू बना दिया है। और बाज़ार में सिर्फ सफलता ही महत्त्वपूर्ण बन गया है। व्यक्ति सफलता पाने के लिए क्या रास्ता अख्तियार करता है यह कोई मायने नहीं रखता है। वहाँ सिर्फ और सिर्फ सफलता नज़र आती है। "इसलिए भूल जाना विचारों को, दिमाग़ को, सबको। वही करना, जो बाज़ार चाहता है। अगर तुमको बाज़ार में टिकना है तो तुम्हें भी बाजारू बनना होगा। बाजारू होने का अर्थ तुम समझते हो ना ?"(वहीं-५२)

सफलता का हर रास्ता बिस्तर से होकर जाता है चाहे वह क्रिकेट, हॉकी, फिल्मी आदि की दुनिया ही क्यों न हो। यहाँ सिर्फ सफलता महत्त्वपूर्ण है रास्ता नहीं। व्यक्ति के सफल होने के बाद वह कितनी घूस दिया है और क्या-क्या किया है यह कोई मायने नहीं रखती है। सफलता पाने के लिए व्यक्ति को कई पायदान से गुज़रना पड़ता है यह भी कोई मायने नहीं रखती है। पूँजी में सब दब सा गया है। "यहाँ सबकी बात सब जानते हैं, पर कोई किसी से कुछ नहीं कहता। ये जो पूरे भारत से ख़ूबसूरत और जवान लड़के इकट्ठा करते हैं, ये क्या यूँ ही किए जाते हैं ? ये सारे जवान

जिस्म सुधा, जैमिनी और मेरी तरह के लोगों के लिए जुटते हैं। ये प्रतियोगिता, ये इवेंट तो सब एक बहाना होता है।"(वही-५९)

आज व्यक्ति की सफलता की चाभी पूँजीवादी ताक़तों के हाथ में है जिसे चाहे सफलता के शिखर पर पहुँचा दे, जिसे चाहे नीचे ढकेल दे। "प्रद्युमन कुछ मर्यादाओं के चलते बस यही बात मैं खुलकर नहीं कह पा रहा था, लेकिन मैं बार-बार जिसके बारे में कहता था कि हर बात के लिए तैयार रहना, वो बात यही थी। सुधा जैमिनी वाली घटना किसी भी पुरुष के लिए स्वाभाविक घटना है, पर ये जो दूसरी घटना है, ये तो ....। ख़ैर उस सोनू जार्ज और सुधा जैमिनी को ग्रिप में रखना, उनके बिस्तरों में तुम्हारी सफलता की चाबी छुपी है।"(वही-६०)

पूँजीवादी संस्कृति और उपभोक्तावादी अपसंस्कृति ने अश्लीलता को बढ़ावा दिया है। आज सफल बनने के लिए आदमी सारी हदें पार कर देता है। पूँजीवाद बाज़ार का प्रचार करने के लिए व्यक्ति के हर एक अंग का इस्तमाल करता है। और फिर उस पर सफलता की मोहर लगा देता है। आज से हम सफल हुए-"प्रद्युमन के लिंग पर चिपकी एक जौंक के पास एक कंडोम बनाने वाली कंपनी ने अपना टैग पंच कर दिया, उसके दोनों कूल्हों पर चिपकी दो जोंकों के पास एक अंडरवियर बनाने वाली कंपनी अपना टैग लगा चुकी थी।"(वही-६४)

पंकज सुबीर की 'चौपड़े की चुड़ैलें' परिवर्तन की कहानी कही जा सकती है। यह कहानी 'चौपड़े की चुड़ैलें' कहानी संग्रह में संकलित है। इस कहानी में नई दुनिया का चित्र क्रिएट किया गया है। इसको हमारा समाज भोगता रहा, लेकिन उसे स्वीकार करने से डरते हैं। इस कहानी की बनावट प्रतीकात्मक शैली पर अधारित है। कहानी सामंतशाही की विलासपूर्ण चरमावस्था का चित्रण करती है। जिसके केन्द्र में स्त्री है। कहानी का सफ़र बहुत ही लम्बा और व्यापक स्तर का है। 'चौपड़े की चुड़ैलें' कहानी दो सत्तात्मक समाज से निकल कर तीसरी सत्ता का पर्दाफाश करती हुयी नज़र आती है। इस कहानी के केन्द्र में बाज़ार है। इसमें देह के माध्यम से वर्तमान के व्यापार को स्पष्ट करने की कोशिश की गई है। निश्चित तौर पर इस कहानी का फ़लक बहुत बड़ा है, सुधांशु गुप्त के अनुसार, "पितृसत्ता का विरोध है और वर्तमान में लैंगिक भेदभाव का चित्रण है।"८ यही तो आज की अपसंस्कृति के चलते उपभोक्तावादी बाज़ार चाहता है। और स्त्री की देह को विविध रूपों में परोसने के लिए तत्पर है।

हवेली में हो रहे व्यापार का एक महिला को मालूम हो जाता है तो और हवेली में हो रहे व्यापार का पर्दाफाश होने से पहले ही उस महिला को मार डाला गया और उसको चुड़ैल घोषित कर दिया गया। इस कहानी में तीन चुड़ैलों के जरिए हवेली में तीन महिलाओं के माध्यम से चल रहे देह व्यापार को छिपाने के लिए चुड़ैलों का डर बिठाया गया है। कहानी एक तरफ़ हवेली के रहस्य का पर्दाफाश करती है तो दूसरी और अप्रत्यक्ष देह-व्यापार की आधुनातन ताकनीक से जोड़ती है। वैश्विक स्तर पर पूँजीवादी उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते आधुनिक समाज के बदलते मानवीय मूल्यों के साथ-साथ स्त्री अपने को विविध रूप में चित्रित करने के लिए मजबूर है या पुरुषवादी सोच स्त्री को मजबूर करती है।

पूँजीवादी उपभोक्तावादी अपसंस्कृति ने इतिहास को तहस-नहस कर दिया है। आज का मनुष्य अपने मस्तिष्क का इस्तेमाल ग़लत कार्यों में करने लगा है। कहानी में मीडिया के चारित्रिक पतन का ज़िक्र भी है।"विज्ञापन उसी समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ था, जिसके मालिक ने कुछ दिनों पहले किसी संस्था में भाषण देते हुए कहा था कि महिलाओं को ठीक कपड़े पहनने चाहिए, उनके द्वारा पहने जा रहे ग़लत कपड़ों के कारण ही बलात्कार की घटनाएँ बढ़ रही हैं।" (चौपड़े की चुड़ैले, पृष्ठ-९२)

पूँजीवादी उपभोक्तावादी बाज़ार यह समझ गया है कि आज का मनुष्य क्या चाहता है। इन कहानी के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि "दुनिया भर की ग़रीब और ज़रूरतमन्द औरतें कैसे इन पुरुषों के मन बहलाव के लिए वह सब करती हैं जो मर्द चाहते हैं । अपना परिवार चलाने के लिए ज़रूरतमन्द औरतों को इस मोबाइल कम्पनी के गोरखधन्धे से जुड़ना पड़ता है"९ इस कहानी में पंकज सुबीर यह भी दिखाने का प्रयास करते हैं कि बाज़ार रोज़ अपना नया रूप बदलकर मनुष्य के सामने आ रहा है, "चुड़ैलें अब हवेली से निकल कर विरचुअल हो गईं हैं। हवा में फैल गईं हैं, सिग्नल्स के रूप में, फ्रिक्वेंसी के रूप में। अब वे हर किसी के मोबाइल में हैं। मीठी बातें करती हुई, कुछ लाइव ध्वनियाँ पैदा करती हुई। चुड़ैलें अब रूप बदल-बदल कर आ रही हैं। अब उनका कोई नाम कोई ठिकाना स्थायी नहीं है। अब वह चौपड़े की चुड़ैलें नहीं रहीं, अब वे ब्रह्माण्ड की चुड़ैलें हो चुकी हैं। पूरे के पूरे विरचुअल ब्रह्माण्ड की चुड़ैलें।"(वहीं-९६) जो बाज़ार में पूँजीवादी की तरह फैल रही हैं और झपट्टा मार कर हर इन्सान में समा जा रही हैं। यह कहानी इस बात को भी स्पष्ट करती है कि पूँजीवाद ने बाज़ारवादी अपसंस्कृति के विकास में मनुष्य की चेतना को ग़ुलाम बना दिया है और अपने हाथों की कठपुतली बना कर युवा हो रही पीढ़ी को गुमराह कर रहा है। बीमार मानसिकता का चित्रण किया गया है। अख़बारों और इंटरनेट का भी पर्दाफाश किया गया है। कामुकता और दमित वासनाओं की परतें उतारती कहानी है। भूमण्डलीकरण के दौर में आज की पूँजीवादी संस्कृति, उपभोक्तावादी संस्कृति स्त्रियों की मजबूरियों का इस्तेमाल अपने लाभ के लिए करती है। और इनका नाम, वास्तविक पहचान आदि छीनकर प्रेतयौनि में ढकेल दे रही है। और इसके चलते निन्दा इन औरतों की जाती है और लाभ कोई दूसरे लूटते हैं।

निष्कर्ष:-

निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि आज के मनुष्य को बाज़ार चला रहा है। पूँजीवाद, उपभोक्तावाद ने मनुष्य को विचार शून्य कर दिया है और बाज़ार आदमी को मृत शरीर मात्र बना कर छोड़ दिया है। भूमण्डलीकरण ने जहाँ एक ओर पूरे विश्व

को एक गाँव या परिवार माना, वहीं मनुष्य की मानवीयता को छीन लिया है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

आधार-ग्रन्थ:-

१- महुआ घटवारिन और अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह),पंकज सुबीर, (सदी का महानायक उर्फ कूल- कूल तेल का सेल्समैन, मिस्टर इण्डिया) सामयिक प्रकाशन,नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- २०१२

२- चौपड़े की चुड़ैलें (कहानी संग्रह),पंकज सुबीर (चौपड़े की चुड़ैलें) शिवना प्रकाशन, सीहोर मध्यप्रदेश, प्रथम पेपर बैक संस्करण, सितम्बर-२०१७

सहायक-ग्रन्थ:-

१- भूमण्डलीकरण और हिन्दी उपन्यास, संपादक- नीरू अग्रवाल, अनन्य प्रकाशन, नवीन शाहदरा दिल्ली-२०१८, पृष्ठ सं.१८

२- संचार बाज़ार और भूमण्डलीकरण, अजय तिवारी, अनन्य प्रकाशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण-२०१८, पृष्ठ-१४२

३ समकालीन कथा साहित्य सरहदें और सरोकार, रोहिणी अग्रवाल, आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा पृष्ठ सं. २९

४- संचार बाज़ार और भूमण्डलीकरण, अजय तिवारी, अनन्य प्रकाशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली, , पृष्ठ-१४०

५- कहानी समकालीन चुनौतियाँ, शंभु गुप्त, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृति संस्करण-२०१५, पृ.-१२७

६- संचार बाज़ार और भूमण्डलीकरण, अजय तिवारी, अनन्य प्रकाशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण-२०१८, पृष्ठ-१४०

७- वहीं- पृष्ठ-१४०

८- विमर्श दृष्टि-पंकज सुबीर की कहानियाँ -सम्पादक- राकेश कुमार, शिवना प्रकाशन, सिहोर म.प्र.-२०२० पृष्ठ स. ३२

९- पंकज सुबीर की कहानियों का स्त्री पक्ष, प्रतिभा सिंह, शिवना साहित्यिकी (पत्रिका) जुलाई-सितम्बर-२०२०, पृष्ठ संख्या- ३६

000

पुस्तक समीक्षा

श्वान पुराण

(उपन्यास)

समीक्षक : रीता कौशल

लेखक : आदित्य कुमार राय

प्रकाशक : शब्दांकुर प्रकाशन

आदित्य कुमार राय द्वारा लिखित 'श्वान पुराण' व्यंग्यात्मक मनोरंजन से भरपूर है। पुस्तक के प्रारंभ का ही यह वाक्य, "गणेश प्रताप सिंह पिछले कई वर्षों से केवल रुपयों के बल पर ही जी रहे थे। क्योंकि उनको जितने रोग लगे हुए थे उतने यदि किसी निर्धन को होते तो वह कब का परलोक सिधार गया होता।" आर्थिक विषमता जनित खाई पर कटु व्यंग्य करता है। श्वान पुराण के एक अन्य पात्र कवि कुत्ते 'संकट चोटिल' द्वारा सुनाई गई कविता की ये पंक्तियाँ मानव जाति में क्षीण होती इंसानियत पर करारा व्यंग्य कर जाती हैं - "गर्व है मुझको धरा पर जन्मा बनकर श्वान हूँ। कपटी, छली, विश्वासघाती ना कोई इंसान हूँ।।"

उपन्यास का कथानायक 'स्कॉट' एक अन्य कुत्ता पात्र 'रीड' से कहता है, "अपनी हिन्दी भाषा को महत्त्व देना सीखो। इसे किसी अन्य भाषा से कम मत समझो।" लेखक हमारे भारतीय समाज पर हावी होती जा रही अंग्रेज़ियत की बखिया उधेड़ते हुए टूटी-फूटी अंग्रेज़ी बोलने वालों की विकृत मानसिकता के साथ-साथ गोरा रंग व सुंदर चेहरे-मोहरे को ऊँची जाति व श्रेष्ठ नस्ल की बपौती समझने वालों का सच उजागर करने में पूर्ण सक्षम रहा है।

उपन्यास के एक दृश्य में एक विक्षिप्त बूढ़े मनुष्य का आवारा कुत्तों से रोटियाँ छीनकर खाना पाठक को झकझोर कर रख देता है व बहुत कुछ सोचने पर मजबूर करता है। इस दृश्य को देखकर कुत्ते 'स्कॉट' का व्यथित हो जाना और अपने साथी कुत्ते 'हीरा' को लेकर कहीं और भोजन की तलाश में चले जाना मनुष्य जाति को न केवल शर्मसार करता है, बल्कि आज के युग में मनुष्य की संवेदनशीलता पर प्रश्न चिह्न लगा देता है।

श्वान पुराण की भाषा सरल व मनोरंजक है। वाक्य विन्यास सुगठित व लेखक के मन की बात सम्प्रेषित करने में सक्षम है। यह उपन्यास आज के दौर की कितनी ही समस्याओं जैसे मनुष्यों में बढ़ती आत्महत्या की प्रवृत्ति, अनेक पाखंडियों के स्वामी बन धर्म के नाम पर जनसाधारण को मूर्ख बनाने का चलन आदि को चुपके से बयान कर पाठक को अनेक प्रश्नों में उलझा कर रख देता है। कुल मिलाकर मनुष्य की मनुष्यता को चुनौती देती इस पुस्तक को पढ़ने के बाद पाठक सोच में पड़ जाता है कि "क्या मनुष्य वाकई संसार का सबसे श्रेष्ठ प्राणी है?" नस्लवाद, धर्म, भाषा, प्रांतीयता, जातीयता, परनिंदा, समाज में बुजुर्गों की दुर्दशा, रिश्वत, भ्रष्टाचार जाने कितने ही प्रश्न उलझकर पाठक के मन मस्तिष्क को मथने लगते हैं।

000

रीता कौशल

पर्थ, वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया

उपन्यास अंश

सीतायन

(बांग्ला उपन्यास)

लेखक : मल्लिका सेनगुप्ता

(जन्म - 27 मार्च 1960
निधन - 28 मई 2011)

अनुवाद : सुशील कान्ति

सुशील कान्ति
रेल्वे क्वार्टर न 185, फोरमैन कॉलोनी, 4 नंबर रास्ता, कांचारपाड़ा, उत्तर 24 परगना-743145 (पश्चिम बंगाल)
मोबाइल- 9748891717
ईमेल- sushil.kanti@gmail.com

अध्याय - दो

राष्ट्र का विन्यास एक कुशलतापूर्ण मंत्रणा है

श्रृंगी ऋषि के निमंत्रण से कौशल्या प्रासाद में लौट आई थीं। सब कुछ सहमा-सहमा दिख रहा था। अधिकांश वधुएँ उनके साथ गईं थीं, वे सब भी लौट आई थीं। किंतु एक के बाद एक कक्ष पार करती गईं, दासियों के प्रणाम में कोई प्राण नहीं था, जैसे किसी इंद्रजाल की जादू की लकड़ी घुमाकर सबको गूँगा कर दिया गया हो। सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि सीता अब तक अगवानी करने नहीं आई थी। यह वधू कभी कोई मांगलिक आचार विस्मृत नहीं होती, रामचंद्र भी क्यों नहीं आ रहे! कहीं जानकी को कोई शारीरिक असुविधा तो नहीं हुई! कौशल्या की उत्कंठा बढ़ती जा रही थी पर राजकीय मर्यादा को छोड़ दासियों से पूछने में झिझक हो रही थी। उन्होंने सीधे सीता के मणिमय रत्नों से सज्जित कक्ष में प्रवेश किया। बहुत दिनों बाद वे इस महल में प्रवेश की थीं, साधारणत: उन्हें पुत्र और पुत्रवधू के कक्ष में आने का प्रयोजन नहीं होता। गृहसज्जा को देख वधू की सुरुचि, इस उत्कंठा में भी आँखों को आराम पहुँचा रही थी। ऐश्वर्य था पर आडंबर नहीं था। शयनकक्ष की दीवाल पर धान के गुच्छों का अलंकरण देख कर वह मुग्ध हो गई थी, निश्चय ही मकर संक्रांति उत्सव के अवसर पर किसी ग्रामीण कृषक ने यह उपहार दिया होगा। मगर सीता तो नहीं दिख रही थी। सिर झुकाए उसकी प्रधान परिचारिका भृत्तिका खड़ी थी, वह अपनी आँखें उठा नहीं रही थी। कौशल्या ने गंभीर स्वर में उसका नाम ले कर पुकारा, 'भृत्तिका'।

दासी ने जैसे काँपते हुए सिर उठाया। उसकी आँखों में अश्रुकण और भय दिखा कौशल्या को। वे विस्मय से भर उठीं।

इसी समय एक द्वारपाल ने आकर त्वरित स्वर में कहा, 'मात: महादेवी, महाराज पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्र आपके दर्शनार्थ द्वार तक आ पहुँचे हैं।'

उसकी बातें अभी समाप्त भी न हुई थीं कि रामचंद्र कक्ष में आ पहुँचे। उनका अनायास विचलन की सी स्थिति में आविर्भाव देख कर सभी चौंक पड़े। रामचंद्र ने हाथ जोड़ कर माता का चरणस्पर्श किया फिर उठ खड़े हुए। कहा, 'मात:, आपसे निर्जन में कुछ निवेदन करना है।'

कक्ष से सभी चले गए। माता और पुत्र को एकान्त मिलते ही श्रीराम ने कौशल्या का हाथ पकड़ पलंग पर बिठाया और उनकी गोद में मुँह छुपाकर चिहुक-चिहुक कर रोने लगे। किसी विपदा की आशंका जानकर कौशल्या की नसें तन गईं। राजपरिवार से संबंधित कई आँधियों को वे झेल चुकी थीं। विपदा में वे दृढ़चेता हो उठती हैं। प्रबल कौतुहल और उत्कंठा को दमन करती हुई उन्होंने रामचंद्र को कुछ देर उसी स्थिति में रहने दिया। एकमात्र उनके पास ही राम अपनी यह दुर्बलता प्रकट कर सकते हैं। कुछ पलों तक रामचंद्र के मस्तक को सहलाती रही। राम ने तब सिर उठाकर कहा, 'माता, मेरा सर्वस्व विसर्जन हो चुका है। सीता का मैंने त्याग किया है, प्रजा की संतुष्टि हेतु। अब मुझसे यह जीवन वहन नहीं होता। आपके दर्शन के लिए यह प्राण अटकी हुई थी, अब सरयु के पानी में निमज्जन के अलावा कोई गति नहीं हैं।'

कौशल्या का धैर्य चूर-चूर हो गया। तड़ितगति से उठ खड़ी हुईं। पुत्र की ओर रौद्रदृष्टि डालती हुई बोलीं, 'क्या कहते हो पुत्र, तुम्हारे मस्तिष्क की सुस्थता बची है न? मैं क्या धर्मनिष्ठ, सत्यनिष्ठ, स्थितिशील रामचंद्र के मुख से ऐसा भयानक वाक्य सुनने के लिए इतने दिनों तक जीवनधारण की हुई थी।

कौशल्या का उग्र रूप देख कर रामचंद्र की दुर्बलता और शोक कम होने लगे। उनका मस्तिष्क अब आत्मपक्ष के समर्थन के लिए प्रस्तुत होने लगा। उन्होंने कहा, 'मात:, आप शांत हो जाइए। पूर्वपुरुषों के श्रम और बुद्धिबल से रक्षित इस राष्ट्र के प्रति मैं जितना अंगीकारबद्ध हूँ, आप भी हैं। आप समझ जाएँगी कि एक राजा को ऐसा काम करने के लिए क्यों बाध्य होना पड़ा। आपने मेरे जिन गुणों का उल्लेख किया, वे सारे गुण मुझमें होने के कारण ही इस कठिन परीक्षा में आपका पुत्र उत्तीर्ण हुआ है। या फिर आप कह सकती हैं कि प्राणप्यारी जानकी को जिसने निर्वासन दिया है वह आपका पुत्र या उसका पति नहीं है, मनन करके देखें, वह एक क्षत्रिय महीपाल है। उसका प्रधान कर्त्तव्य राष्ट्र की रक्षा है। यह महान् कर्त्तव्य मेरे पिता मुझ पर अर्पण कर स्वर्गवासी हुए हैं।

कौशल्या बिलकुल भी प्रभावित न होती हुई बोलीं, 'ये सारी आडंबरपूर्ण बातें जीवन में मैंने न जाने कितनी बार सुनी हैं पुत्र, पर तुमने जो काम किया है ऐसी मूढ़ता करते मैंने किसी राजा को नहीं देखा, न सुना। राजपुरलक्ष्मी को विताड़ित कर तुम्हारा कौन सा प्रयोजन सिद्ध होगा, मैं नहीं जानती।

क्षणिक असहिष्णु बोध करते हैं रामचंद्र। वे कहते हैं, 'मात:, आप क्यों नहीं समझ रहीं कि प्रजासाधारण को असंतुष्ट और संदेहप्रवण रखकर कोई भी राजा सफल नहीं हो सकता। प्रजागण राक्षसपुरी से प्रत्यागत सीता को अपनी राजमहिषी के रूप में नहीं देखना चाहते।'

तीक्ष्णस्वर में कौशल्या ने कहा, 'वे संदेह करते हैं! इतनी धृष्टता उनकी! राजा के अनुग्रह पर पलनेवाले नीच, उनकी बातों से राजा अपने कर्त्तव्य निर्धारित करेंगे। राजदंपती के व्यक्तिगत संबंध का निर्णय करेंगे!'

'माँ, मात:', रामचंद्र ने व्याकुलता से कहा, 'वे लोग साधारण प्रजा हो सकते हैं, पर यथार्थ में वे राजा के अनुग्रह पर पलने वाले नहीं हैं। वे ही श्रम करते हैं, हम लोग उनके श्रम की फसल का भोग करते हैं। राजा ही उनके अनुग्रहजीवी हैं।'

कौशल्या ने ऐसी बातें कभी नहीं सुनी थीं, वे स्तंभित हो कर बोलीं, 'इस बात का क्या अर्थ है राम, राजा उस निम्न प्रजा का अनुग्रहजीवी है?'

राम ने कहा, 'मात:, चिंतन करके देखें कि कृषिक्षेत्र में धान, ईक्षु, जौ कौन बोता है, कौन फसल काटता है, राजा या कृषक। सोने के गहने, ताम्रफलक और अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण कौन करता है, राजा या स्वर्णकार, ताम्रकार, लुहार आदि कारीगर? युद्ध करके संपत्ति अर्जन कौन करता है, राजा न कि सैनिक? ये सारे अनगिनत लोग ही श्रम करते हैं। क्षत्रियों ने बाहुबल से सारे जनसमूहों, पेशा और संपदा को अपने नियंत्रण में किया है, इसलिए वे राजा हैं, वे ग्रामजीत हैं। इस भूमि पर शासन करते हैं परंतु स्वत्व उनका नहीं है। भूसंपदा दान करने के वे अधिकारी नहीं हैं।'

कौशल्या ने कहा, 'श्रम संपदा अगर क्षत्रियों का नहीं है, तो उसकी क्षमता का उत्स क्या है?'

रामचंद्र थोड़े विक्षुब्ध हुए। कहा, 'ये सारे गूढ़ राष्ट्रत्व नारियों के अधिकार में नहीं आता। यह तत्व आपको बोधगम्य नहीं होगा।'

कौशल्या ने कहा, 'किंतु पुत्र, एक सामान्य नारी सीता तुम्हारे राष्ट्रत्व के लिए इतना महत्त्वपूर्ण हो गई कि उसे गर्भिणी अवस्था में विताड़ित करना पड़ा!'

'मात:, मात:, राष्ट्र एक कौशल है, राष्ट्र ही क्षत्रियों की गुप्त क्षमता का उत्स है। ऐसी व्यवस्था निर्मित होने के कारण ही साधारण प्रजा क्षत्रिय राजा को मान्य करते हैं, राजस्व देते हैं। फ़सल, संपद, श्रम सभी उपहार देते हैं। राज साक्षात् के लिए शून्य हाथों आने का अधिकार किसी दरिद्र प्रजा को भी नहीं है, क्योंकि इस राजस्व और उपहार से ही राज कोषागार समृद्ध होता है। राजा अपने सैनिकों का भरण-पोषण वेतन और भोजन देकर करता है। वे ही सैनिकगण पार्श्ववर्ती राज्य पर विजय प्राप्त कर अधिक से अधिक संपदा लेकर लौटते हैं। और यह संभव तभी होता है जब राष्ट्र का अस्तित्व होता है। सीता का विसर्जन यदि मैंने न दिया होता, प्रजागण मेरे ऊपर आस्था न रख पाते। राजा की छवि नष्ट होती, परहस्तगत स्त्री के प्रति कामुकता की धारणा प्रचारित होती, राष्ट्र पर विपत्ति आती।'

'राष्ट्र, राष्ट्र, राष्ट्र, मनुष्य कुछ नहीं। राष्ट्र अपना है, न कि पत्नी?' कौशल्या फुँफकार उठीं। 'एक-एक कर तीन सौ पचास स्त्रियों का संग्रह कर रखा था तुम्हारे पिता ने राष्ट्र के कल्याण की दुहाई दे कर। सारा जीवन मैं दग्ध होती रही हूँ। सीता के प्रति तुम्हारी निष्ठा देख कर मुझे विश्वास हो गया था कि क्षत्रिय होकर भी तुम्हारे मन में स्नेह है। हाय पुत्र! यह कैसा दारुण प्रहार किया तुमने मेरी धारणा पर! पंचमास की गर्भिणी अभागिन सीता न जाने किस अनजाने देश में निस्सहाय, भूखी प्यासी पड़ी रहेगी। यही है तुम्हारे सिंहासन की शक्ति! 'हे राम, तुम तो निर्लोभ के नाम से प्रचारित थे, वही तुमने प्रजा की विभ्रांति को दूर करने के बदले उनके कूट संदेह को प्रश्रय दिया राजसिंहासन पर आसीन होने के लिए!'

रामचंद्र आहत सिंह की तरह फुँफकार उठे, 'मात:, आपने ऐसा वाक्य कहा, और कोई होता तो मैं उसका मुखदर्शन न करता। इतनी हीन धारणा रखती हैं अपने गर्भजात पुत्र के प्रति! आप ही कहिए, सीता एक सामान्य नारी है, उस एक नारी के लिए पुरखों द्वारा तिल तिल कर गढ़े गए राष्ट्र को ध्वंस कर दूँ?'

कौशल्या ने कहा, 'पुत्र, ऐसा कुछ भी घटित नहीं होता अगर तुमने पंद्रह वर्ष पहले उस अभिशप्त दिन में अपनी माता की कथन का उल्लंघन न किया होता। दशरथ ने कभी मन से तुम्हारा वनवास नहीं चाहा था, अपने मुँह से उन्होंने कहा भी नहीं था। कैकेयी के प्रति उनके अत्यधिक मोह ने उन्हें चुप कर दिया था। लक्ष्मण और मैंने तुम्हें बारंबार स्मरण कराई थी प्रजा के प्रति तुम्हारे दायित्व की बात। जिस पिता ने प्रतिदिन तुम्हें सिंहासन के योग्य बनाया था उनके मनोभाव को समझते हुए ही तुम्हें कहा था कैकेयी की अभिलाषा का प्रतिवाद करने। पिता तुम्हारे लिए पूज्य है तो माता भी है, इतना सुनकर भी तुमने पिता के प्रति अपनी आज्ञाकारिता दिखाते हुए वन को प्रस्थान किया था। तुमने मुझे परशुराम की कहानी स्मरण करा दी थी, कि उन्होंने पिता की बात सुनकर मातृहत्या की थी। यह अंधानुकरण तुम्हारी हठधर्मिता थी। वन न गए होते तो कुछ भी घटित न होता।'

राम ने कहा, 'सब दैव की मंशा है। नहीं तो पिता क्यों इस तरह आचरण करते हुए पुत्र शोक में मारे जाते। अब अतीत को उकेरने से कोई लाभ नहीं होने वाला। मैंने वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल काम किया है।'

'नारी की सुरक्षा करना क्या राजा का कर्त्तव्य नहीं है, नारी क्या उसकी प्रजा नहीं है', कौशल्या ने कहा, 'तुम उसके स्वामी हो, भरण पोषण, सुरक्षा का भार ले कर भी तुमने जानकी को जीवन की मध्यावस्था में, सबसे संकटजनक समय में त्याग किया है, यह क्या अन्याय नहीं है? राज बन गए हो तो क्या जीवन के अन्य दायित्वों की उपेक्षा करोगे?'

राम विरक्त हो उठे।

'मात: इस संशय से मैं स्वयं कातर हो उठा था। महान् दायित्व जब व्यक्ति के स्कंधों पर होता है, वही महासंकट बन कर कभी कभी इस रूप में प्रकट होता है। अपेक्षाकृत मैंने महान् दायित्व को स्वीकार कर पत्नी के प्रति दायित्वबोध की बलि दी है। यह बिलकुल सच है कि इसके अलावा मेरे पास दूसरा कोई उपाय न था। किंतु मात:, इस सिद्धांत से सबसे अधिक क्षतिग्रस्त व्यक्ति का नाम राम है। मैंने स्वेच्छा से इस दारुण वेदना का भार लिया है, सीता मेरी सहचरी है, वह भी प्रबल स्वार्थ के लिए इस वेदना को सहन कर पाएगी।'

'हाय पुत्र', कौशल्या ने कहा, 'सीता और तुम्हारी वेदना क्या एक समान हो सकती है? तुम सिंहासनाधीन राजा हो, अजस्र संपद, दास-दासी, अशेष खाद्य-पेय हैं। स्नेहशील माता और अग्रजगण, अनुगत अनुज और भातृगण सर्वदा तुम्हारी सुख-सुविधा के लिए सचेष्ट रहेंगे। और एक ही परिवेश में लालित जानकी आज, गर्भभार से जर्जरित स्थिति में अरण्य से खाद्य संग्रह कर के खाएगी, यही तुम्हारा न्याय है। तुम्हें त्याग ही करना था तो अरण्य में न भेज कर मिथिला जनकालय में प्रेरित कर सकते थे...।'

'यह कार्य महाराज रामचंद्र के पक्ष में, इक्ष्वाकु वंश के पक्ष में मर्यादाहीन होता', श्रीराम ने कहा, 'कन्यासंप्रदान हो जाने के बाद फिर उसे पिता गृह नहीं भेजा जाता भरण पोषण के लिए, जानकी का दायित्व मेरा है, मैंने समुचित विचार करने के बाद ही उसे वाल्मीकि के आश्रम के निकट छोड़ आने का निर्देश लक्ष्मण को दिया है। मुझे विश्वास है कि वाल्मीकि सीता को आश्रय देंगे, वे इक्ष्वाकु वंश के शुभाकांक्षी हैं और जानकी के प्रति स्नेहशील भी।'

'तुम अपने विश्वास और अनुमान के आधार पर उसे छोड़ आए! और तुम्हारी संतान जो भूमिष्ठ होगी, इक्ष्वाकु का कुलतिलक, वह शिशु क्या वनचर राक्षसों की मानिंद पालित होगा?'

'मात:, जानकी को अगर आश्रम में स्थान मिल गया तो वह और उसकी संतान निरापद रहेगी। राजकुमार गण ऋषि के आश्रम में ब्रह्मचर्य का पालन करने जाते हैं, यह बात आपके लिए अनजान नहीं है? वनवासी होने के बावजूद ऋषियों के आश्रम ही राष्ट्रधर्म का शिक्षणस्थल और प्रेरणाशक्ति हैं। एक ओर राष्ट्रतत्व, वेदों से ज्ञान सीखेंगें, दूसरी ओर शस्त्रविद्या में पारंगत हो कर वनवासी अनार्यों का निधन कर वनभूमि को ब्राह्मणों के वासयोग्य बनाएँगे।'

'राम, तुम क्या जानकी का संवाद लेने किसी दूत को भेजोगे? मैं अति उत्कंठित हो रही हूँ। प्रसूति और संतान के लिए कुछ प्रयोजनीय द्रव्यों के साथ मैं स्वयं वहाँ जाना चाहती हूँ।'

राम ने कहा, 'मात: उत्कंठा का दमन करें। मैं उसे मन से मिटा देना चाहता हूँ, नहीं तो राजकाज मेरे लिए असंभव हो जाएगा। इस विषय पर और किसी तरह का वाद-विवाद मेरे लिए स्वास्थ्यकर नहीं होगा। मुझे महान् राजदायित्व के प्रति ध्यान केंद्रित करने की अनुमति दें। जानकी के अस्तित्व से संबंधित सारे चिह्न मेरी आँखों के सामने से हटा दें, मेरे लिए नया शयनकक्ष तैयार करें।'

राम मन की बेचैनी पर विजय पाने के लिए प्रासाद से संलग्न बाग में धीरे-धीरे टहलने लगे। अब तक इस कानन में सीता के साथ भ्रमण किया करते थे। जिन वृक्षों में सीता जलसिंचन किया करती थीं, सस्नेह जिन पत्रों को आदर किया करती थीं, जिन पक्षियों को दाना खिलाती थीं, वे सारे आँखों के सामने

आए। सीता की सूरत याद आते ही राम ने यंत्रणा से आँखें बंद कर लीं, पति पर संपूर्ण निर्भरशील वह नारी मन की उत्फुल्लता के साथ तपोवन दर्शन को गई थी, वे जब सारी बातें सुनेंगी तब उनके मनोभाव क्या होंगे! राम के प्रति उसकी आस्था अटूट रहेगी न! राम ने अपने अस्थिर-बोध का उपशमन करने के लिए लोध्रा, आर्जुन, दाड़िम आदि नाना प्रकार के वृक्षों के बीच नीलकांत मणि की मानिंद घास वन में नृत्य-संगीत में पटु किन्नरियों का आह्वान किया। परिचारिकाओं ने उनके लिए विशेष रूप से तैयार मैरेय (सोमरस) ले कर आए। कुछ देर तक राम ने नृत्य-संगीत का उपभोग किया, फिर उन्हें याद आया कि ऐसे ही एक आयोजन में उन्होंने अपने हाथ से जानकी को सोमरस का पान कराया था।

आह! सीता का वह निष्पाप मुख, और प्रजागण यह सोचते हैं वह रावण के शय्या पर गई थी, सीता के संभोगसुख में मैंने अपना राज-कर्त्तव्य विस्मृत कर दिया है- कितने असहनीय ये वाक्यालाप हैं। राम भवन में यह, सच नहीं हो सकता। सीता अग्निप्रवेश करके भी दग्ध नहीं हुई थी, उसका चरित्र पवित्र है। पर वह रावण जैसे लंपट के अधीन एक वर्ष तक थीं। उस समय कौन सी घटना घटी हो कौन कह सकता है। सीता पर यदि संदेह है तो इसमें प्रजा को दोष नहीं दिया जा सकता। वे लोग अनभिज्ञ और संस्कार से रहित हैं। स्वयं मैंने उस पर संदेह किया था और उसे अग्नि में प्रवेश करवाया था। लोकचरित्र विशारद के रूप में मैं व्यर्थ हुआ। यही उचित कार्य होता कि सीता की शुद्धता प्रमाण की अग्नि परीक्षा, प्रजा के सामने ली होती।

रामचंद्र के एक सहचर ने आकर बताया, सभा प्रस्तुत है, मंत्री और सारे सभासदगण महाराज की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

राम ने बता दिया कि आज शारीरिक कारणों से सभास्थल का परिचालन करना मेरे पक्ष में संभव नहीं है। तुम भरत के पास मेरा यह आदेश पहुँचा दो कि वह आज की सभा का दायित्व ग्रहण करे।

सहचर ने नतमस्तक हो कर कहा, 'श्रीमान भरत ने भी कहलवा भेजा है कि वे आज सभास्थल में अनुपस्थित रहेंगे।'

'शत्रुघ्न?' राम ने चकित भाव से पूछा।

'वे भी नहीं आए हैं" सहचर ने बताया।

'ऐसी स्थिति में मंत्री और सभासदों से मेरा प्रणाम कहो, और कह दो कि आज की सभा नहीं होगी' इतना कहकर राम ने कक्ष का त्याग किया।

सब कुछ उन्हें बोधगम्य हो रहा था। कौशल्या की तरह मुखर रूप से नहीं, पर भरत और शत्रुघ्न अपना क्षोभ इसी तरह प्रकट कर रहे थे। अभी सारे निकट संबंधी उन पर क्षुब्ध थे। रावण जब सीता को हरण कर ले गया था तब वन के शिथिल वातावरण में लक्ष्मण और सुग्रीव, हनुमान और ऋषियों की ममता ने उन्हें घेरे रखा था। आज वे अकेले हैं। माता एवं भाइयों की आँखों में भी उनका कार्य नृशंस और अन्यायपूर्ण प्रतीत हो रहा है। हो सकता है, लक्ष्मण ने सही कहा था, प्रजागण स्वाभाविक रूप से निंदाविलासी साधारण पारिवारिक मनुष्य होते हैं। इसके बाद भी वे निरपेक्ष रूप से प्रशंसा नहीं करेंगे, अन्य त्रुटियाँ निकालेंगे। सीता विसर्जन के बाद भी वे उनकी आँखों में महान् नहीं बन जाएँगे। राम ने अस्फुट स्वर में उच्चारण किया, 'आह, मैं लोभी हूँ इसलिए राजधानी लौट आया। क्षमता और ऐश्वर्य के मोह में मैंने दुर्दिनों की सहचरी का त्याग किया है। धिक मुझे!'

जिस दिन लक्ष्मण ने आकर उन्हें कहा, 'आर्य, आप यदि राजकाज बंद रख कर शोकयापन करते रहें, प्रजाओं के मन में पूर्व धारणा फिर से बलवती हो जाएगी कि आप जानकी के प्रति अत्यधिक आसक्तिपूर्ण होकर ही कर्त्तव्यविमुख हो गए हैं", उस दिन रामचंद्र पुन: राजसभा में आसीन हुए। शिलानिर्मित मणिमय कक्ष के ऊपरी भाग में रेशमी चंद्रातप चित्रित था। राजसिंहासन के दक्षिण पार्श्व में वय के अनुसार भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के आसन थे। वामपार्श्व में महीषी का आसन शून्य था, उसके बाद मर्यादानुसार आठ अमात्यों और मंत्रियों के आसन लगे थे। मंत्रियों में सुमंत्र दशरथ के राजसभा में प्रधान थे, वशिष्ठ भी दशरथ के काल से ही मंत्री और पुरोहित थे। ये लोग प्रयोजन के अनुसार राम का तिरस्कार कर सकते थे, सुपरामर्श या प्रश्रय दे सकते थे। श्रृंगी ऋषि के आमंत्रण पर राजमाता और राजवधुओं के यज्ञदर्शन अभियान के नेता वशिष्ठ थे। उन्होंने लौट कर रामचंद्र के द्वारा सीता विसर्जन के सिद्धांत को मूढ़ता कहकर तिरस्कार किया था।

राम, आज कई दिनों बाद राजसभागृह में आए थे। अनेक साक्षातप्रार्थी राम की प्रतीक्षा में सभागृह के एकपार्श्व में उनके लिए निर्धारित निम्न आसनों पर बैठे थे। एक राजकर्मचारी एक एक कर नाम बुला रहे थे, वे लोग जौ, तन्तुल, वस्त्र, आयुध, आम्र, कदली, बेल, मिट्टी के पात्र, ताम्रकलश आदि उपहार रामचंद्र के पदतल में रखी विशालाकार स्वर्णथालिका में रखकर प्रणाम कर रहे थे। उपहार, सभी अपनी वृत्ति के अनुसार ले कर आए थे, पर प्रचुर संख्या में था।

प्रतिहारी ने उच्च स्वर में पुकारा, 'सौदास तंतुकार'।

सक्षम देहधारी परिछन्न अधोवस्त्र और उत्तरीय पहने हुए एक अधेड़ व्यक्ति ने आगे बढ़कर रामचंद्र को प्रणाम किया और नयनाभिराम सौ कार्पसवस्त्रों की एक पेटिका सोने की थालिका में सावधानी से रखी।

राम ने कहा, 'बोलिए सौदास, आप कुशल तो हैं?'

सौदास ने मस्तक झुकाकर पुन: एक बार अभिवादन किया और कहा, 'महाराज, कुशल कैसे रहेगा। इस वर्ष कार्पस की फ़सल अच्छी नहीं हुई है। अल्प मात्रा में जो वस्त्र तैयार हुए थे उनमें से वनचर राक्षसों ने औचक अपहरण करके कुछ ले गए। इन अनार्य राक्षसों के उपद्रव से हमारे ग्राम की रक्षा करें प्रभु।'

रामचंद्र की दोनों आँखें तत्काल क्रोध में जलने लगीं। अब भी, अब भी उसके राज्य में आनार्यों को आक्रमण करने का साहस होता है! प्रबल पराक्रमशील रावण के निधन के बाद भी! उन्होंने सेनानायक सौवीर के निर्देश दिया, 'तत्काल ही सशस्त्र सैनिकों की एक टुकड़ी उस ग्राम में भेजें, उन अनार्यों में अब कोई भी बचे नहीं रहना चाहिए।' सौदास की

ओर तरफ देख कर कहा, 'जाइए, अब ऐसा उपद्रव नहीं होगा।'

प्रतिहारी ने हाँक लगाई, 'धनपति कारीगर'।

धनपति ने प्रणाम से पहले नवआविष्कृत काले लौह धातु से तैयार एक सहस्र तीर और एक सौ तुनीर निवेदन किया।

राम ने कहा, 'हे धनपति, आपके आयुध की दृढ़ता ने कौशलराज्य की सुरक्षा बढ़ाई है। कहिए, आप क्या चाहते हैं?'

धनपति ने कहा, 'हे परमपूज्य नरपति, यह कृष्णायस (लौह धातु) नया है इसलिए साधारण मनुष्य इसका सम्यक मूल्य नहीं समझते। धान काटने के योग्य जो कृष्णायस फलक मैंने तैयार किया है उसके विनिमय में कृषक मुझे मात्र एक प्रहर का तंतुल देना चाहते हैं, कृष्णायस पात्र के विनिमय में ये गोपालक मात्र चार दिनों का दूध देते हैं। आपने अगर इसका योग्य मूल्य निर्धारित करके विनिमय दर निर्दिष्ट न कर दिया तो इस धातु की विलुप्ति हो जाएगी।

राम ने कहा, 'आपकी समस्या महत्त्वपूर्ण है, पर कृष्णायस आयुध के लिए राजकोष से आपको प्रचुर धन दिया जाता है। यह क्या यथेष्ट नहीं है?'

धनपति ने कहा, 'महाराज, अपराध क्षमा करें, मात्र आयुध निर्माण करके कोई धातु जीवित नहीं रह सकता, लोकजीवन में इसका उपयोग प्रयोजनीय है।' राम ने मंत्री वशिष्ठ से कहा, 'महाभाग, इनकी समस्या को ध्यान में रखते हुए कृष्णायस धातु का विनिमय दर आप निर्दिष्ट करें।'

तभी मंत्रीमुख्य सुमंत्र ने कहा, 'हे राजन, यमुनातीरवर्ती कुछ ब्रह्मण, महर्षि च्यवन के नेतृत्व में आपके दर्शन हेतु पधारे हैं।'

रामचंद्र ने तत्परता के साथ उन्हें सभा में ससम्मान ले आने को कहा। ऋषियों का स्वास्थ्य साधारण प्रजा की तुलना में अधिक समुज्ज्वल था, अनायास प्राप्त फल, दुग्ध तंतुल और सोमरस ने उनके शरीर की चिकनाहट बढ़ाकर जो द्युति लाए हैं, यह उन्हें साधारण की आँखों में असाधारण बना दिया था। इन्हीं कारणों से अनेक क्षत्रिय ब्राह्मणों के लिए अपने अंतर में विद्वेषबोध रखते हैं। मगर इक्ष्वाकु वंश के राजाओं ने सदा से ही ब्राह्मणों के साथ सद्भाव बनाए रखा है जिस कारण कौशलराज्य में अंतर्कलह नहीं है। राम सारी स्थितियों से अवगत हैं। बाल्यावस्था से ही ब्राह्मणों की प्रीति उत्पन्न करने के लिए उन्हें नाना प्रकार के कार्य करने पड़े हैं। वास्तव में वेदज्ञान, अग्निहोत्र, उपनयन संस्कार और पूजाविधि पर एकक्षत्र अधिकार रहने के कारण ब्रह्मण इतने शक्तिशाली हैं, वे क्षत्रिय राजा का अतिक्रम करके भी स्वेच्छा से आश्रम जीवन व्यतीत करते हैं। ब्राह्मणों के इस दल ने प्रसन्नतापूर्वक राजा को आशीर्वाद देकर उनके हाथ में नाना प्रकार के फल, कंद और तीर्थजलपूर्ण कुंभ उपहार दिया।

राम ने उन्हें प्रणाम कर कृतांजलि अर्पित करते हुए कहा, 'आप लोग आदेश दें, मैं आप लोगों के लिए कोई भी दुरूह कार्य करने के लिए प्रस्तुत हूँ। मेरा जीवन और सिंहासन सब कुछ द्विजों के लिए उत्सर्गीकृत है।'

ऋषियों ने कहा, 'रामचंद्र, यही कारण है कि आप सर्वलोक प्रिय हैं। हमलोग पहले कई क्षत्रिय राजाओं के पास अपनी समस्या लेकर गए थे। उन लोगों ने समस्या की गंभीरता को समझते हुए भी हमें सहायता का कोई आश्वासन नहीं दिया। और आप ब्राह्मणों के प्रति इतने अधिक श्रद्धाशील हैं कि कार्य जाने बिना ही हमें प्रतिज्ञा दे दी।'

रामचंद्र के मुख पर संतोष झलकने लगा था। ब्राह्मणों के प्रियकारक हो कर वे श्लाघा बोध करते, इसी कारण दूर दिगंत से ब्रह्मणगण उनके पास प्रार्थी होकर आते।

भृगुपुत्र महर्षि च्यवन ने कहा, 'हमारे वासस्थान में एक महाभय पैदा हो गया है। लवण नामक एक महाबल अनार्य असुर हमारे मधुवन में वास करते हुए संत्रास फैला रहा है। समस्त प्रकार के प्राणियों और ब्राह्मणों पर वह आक्रमण करता है, उनका वध कर के आहार बनाता है। निष्ठुरता ही उसका आचरण है। हमने बहुत राजाओं से प्रार्थना की, किसी ने हमारे कष्टों का निवारण नहीं किया। आपने अनार्य राजा रावण का वध किया है, हम लोग आपकी सद्इच्छा के प्रति आस्थाशील हैं। आप लवणासुर का निधन कर हमारा त्राण करें, यही प्रार्थना है।'

राम ने कहा, 'महर्षि, आपलोग निश्चिंतपूर्वक मधुवन लौट जाएँ। मैं लवण्यवध की व्यवस्था कर रहा हूँ। इसके बाद भाइयों की ओर देख कर पूछा, 'तुम लोगों में कौन इस भार को ग्रहण करने को इच्छुक हो?'

भरत ने कहा, 'महाराज, योग्य समझें तो मुझे यह कार्य भार सौंप कर धन्य करें।'

शत्रुघ्न ने यह सुन कर कहा, 'राजन, अग्रज भरत ने आपके वनवास काल के दौरान नंदीग्राम में मृगछाला धारण करके ब्रह्मचर्य और सादगी का जीवन यापन किया है, अभी उन्हें विश्राम का प्रयोजन है, आप मुझे यह दायित्व दीजिए।' राम ने पुलकित मन से कहा, 'शत्रुघ्न, तुम शुभ दिन देख कर यात्रा करो। मेरी इच्छा है कि तुम लवणासुर वध के बाद मधुवन में अपना राज्य स्थापित करो। यात्रा से पूर्व तुम्हारा अभिषेक संपन्न होगा।'

शत्रुघ्न ने विस्मय से कहा, 'हाय, यह तो मेरा अभिप्रेत नहीं था, अग्रजों से पहले कनिष्ठ का राज्याभिषेक महापाप है।'

राम ने अभय दान देते हुए कहा, 'सौमित्र, मेरे आदेश पर तुम काम करोगे, कोई पाप तुम्हारा स्पर्श नहीं करेगा। मधुकैटभ को मारने के लिए विष्णु ने जिस वाण का निर्माण किया था, दीर्घकाल से वह मेरे पास है। यह वाण तुम्हें दे रहा हूँ। सेनाओं को पहले प्रेरण करो, फिर यह वाण ले कर तुम एकाकी यात्रा करो। कौशलराज्य का विस्तार और अनार्यनाश, ये दोनों महाव्रत तुम्हें संपन्न करेंगे।'

महर्षि च्यवन के साथ अयोध्या से सेना का एक अंश भेजा गया। एक महीना बाद शत्रुघ्न ने अपनी यात्रा शुरू की। रामचंद्र को प्रणाम कर चार अश्वों वाले रथ पर आरोहण के लिए शत्रुघ्न जा खड़े हुए।

यात्रा से पूर्व शत्रुघ्न से राम ने कहा, 'तुम्हारे यात्रापथ में वाल्मीकि का आश्रम पड़ेगा। यदि वहाँ रात्रिवास का प्रयोजन हो तो भी वहाँ जानकी से भेंट नहीं करोगे। यह मेरा आदेश है।

000

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

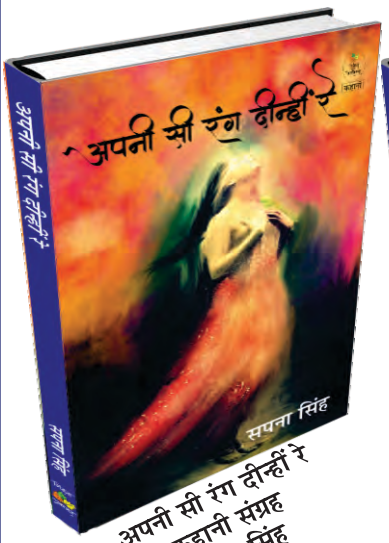

अपनी सी रंग दीन्हीं रे
कहानी संग्रह
सपना सिंह

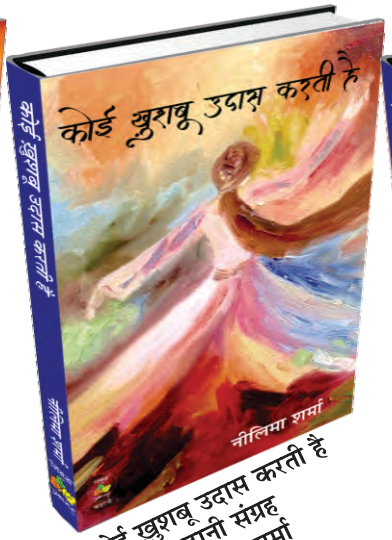

कोई ख़ुशबू उदास करती है
कहानी संग्रह
नीलिमा शर्मा

इक्कीस फेरों का फ़रेब
उपन्यास
सुनीता पाठक

ओ मारिया पिताशे
संस्मरण
प्रतिभा अधिकारी

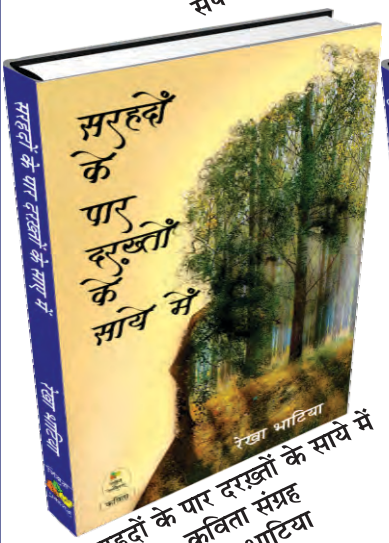

सरहदों के पार दरख़्तों के साये में
कविता संग्रह
रेखा भाटिया

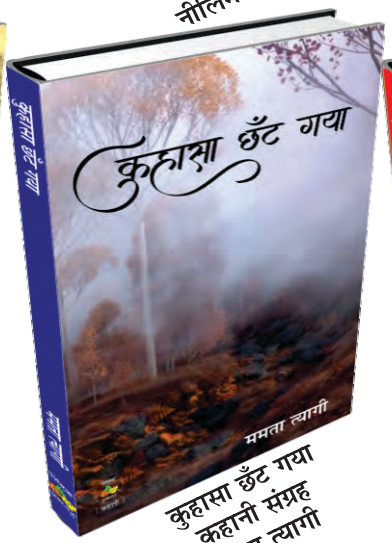

कुहासा छँट गया
कहानी संग्रह
ममता त्यागी

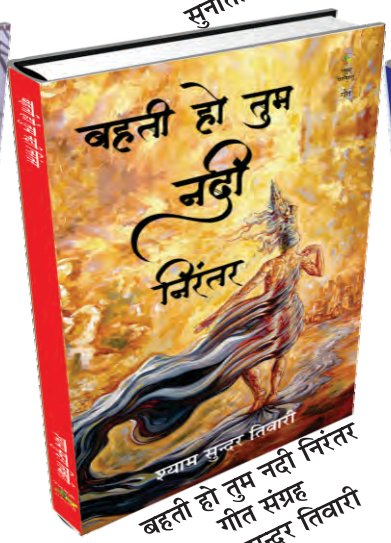

बहती हो तुम नदी निरंतर
गीत संग्रह
श्याम सुन्दर तिवारी

कब तक माफ़ करेगी अम्मा
कविता संग्रह
नीरज पाराशर

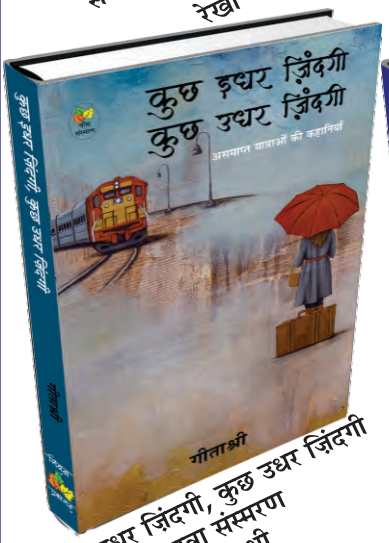

कुछ इधर ज़िंदगी, कुछ उधर ज़िंदगी
यात्रा संस्मरण
गीताश्री

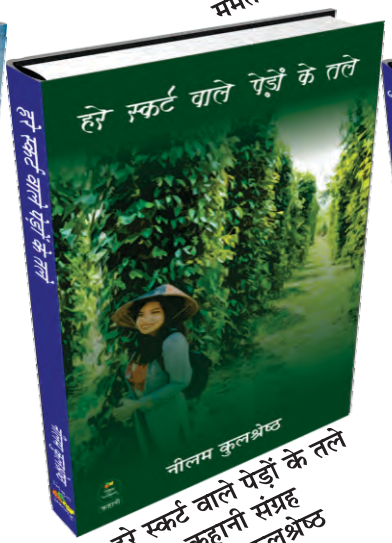

हरे स्कर्ट वाले पेड़ों के तले
कहानी संग्रह
नीलम कुलश्रेष्ठ

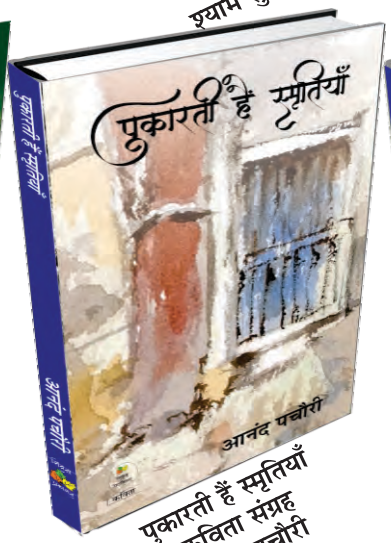

पुकारती हैं स्मृतियाँ
कविता संग्रह
आनंद पचौरी

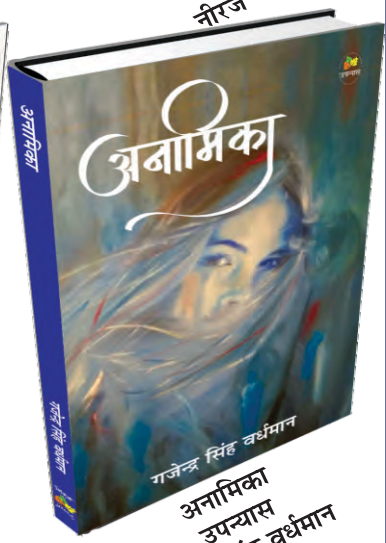

अनामिका
उपन्यास
गजेन्द्र सिंह वर्धमान

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन का चर्चित उपन्यास

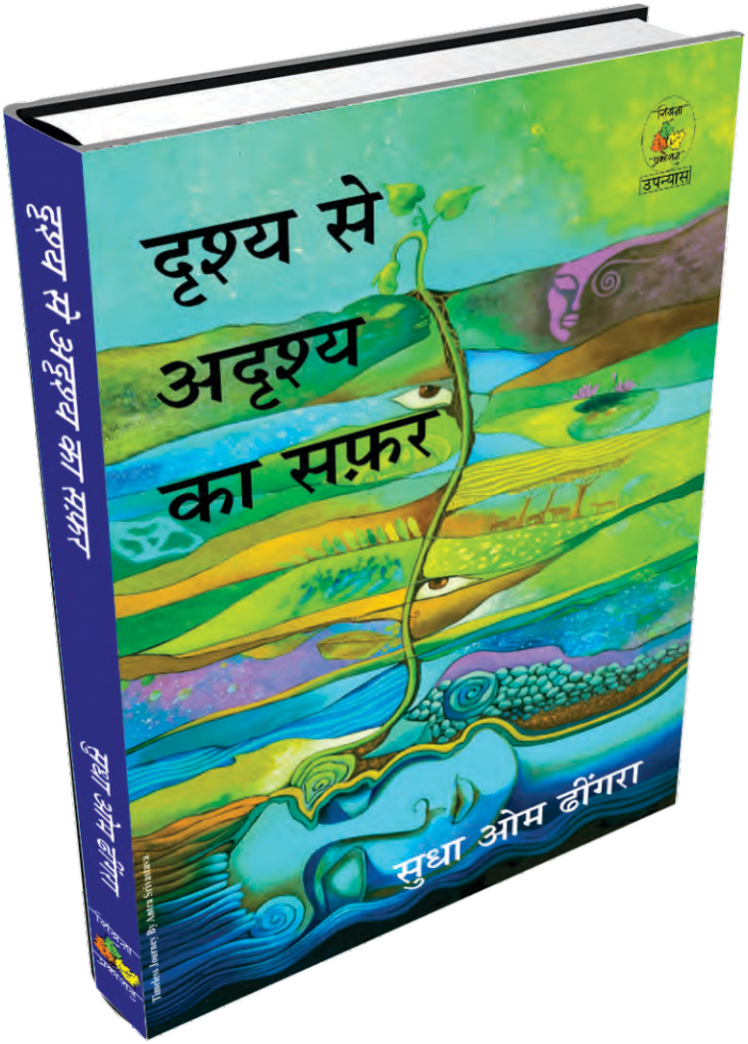

दृश्य से अदृश्य का सफ़र

सुधा ओम ढींगरा

उपन्यास अच्छा लगा । उस में कई सूचनाएँ दिलचस्प हैं जो दूसरे देश का वह चेहरा हमारे सामने लाती हैं जहाँ रौशनी के बावजूद अंधेरे इलाक़े भी हैं जिसको हम नहीं जानते हैं । आप भी समय निकाल कर ज़रूर पढ़ें ।

- नासिरा शर्मा

आश्चर्य है , आप कैसे इस आपदा समय की भयावहता से स्त्री जीवन के अति दारुण, कुत्सित पक्षों को समेटते हुए इतनी मार्मिक और प्रवाही कृति रच पाई ! ...मेरे लिये , एक बार प्रारंभ करने के बाद इस पुस्तक को छोड़ पाना कठिन था ।

-सूर्यबाला

स्त्री जीवन की घुटन, विद्रोह और खुली हवा में साँस। मनुष्यता और सिस्टरहुड के प्रति गहरे सरोकार कोई नारा नहीं उछालते। नये संसार और अनुभवों से रचा-बसा है यह उपन्यास। मस्ट रीड उपन्यास है यह।

- मनीषा कुलश्रेष्ठ

कथा की तीनों उप मुख्य पात्र की रचना उपन्यास की विशेषता हैं। इन तीनों स्त्री-पात्रों के द्वारा लेखिका ने तीन मनोविज्ञानों को पकड़ा है। स्त्री-जीवन की दशा और दिशा को पकड़ा है जो उपन्यास की जान है।

-लक्ष्मी शर्मा

उपन्यास अपने आप में कुछ कहानियाँ समेटे है। मगर सभी की पीड़ा लगभग समान है। सुधा जी की ये नायिकाएँ बहुत बहादुरी से हर परिस्थिति का सामना करती हैं और वीरांगनाओं की तरह उठ खड़ी होती हैं।

-ओम वर्मा

कोरोना काल की विषम स्थितियों और स्त्री-मन की उथल-पुथल को दर्शाता यह एक नए तरह का उपन्यास है। हर युग के अशांत समय में सकारात्मक ऊर्जाओं ने मानवता को बचाए रखा है। यह उपन्यास उन्हीं ऊर्जाओं को समर्पित है।

-गोविंद सेन

उपन्यास के केंद्र में वैश्विक महामारी कोरोना के साथ तीन स्त्रियों की त्रासद कथाएँ गुँथी हुई हैं। महामारी और नारी उत्पीड़न से उत्पन्न मानव मनोदशा के साथ प्रकृति एवं मानवेतर जीवजंतुओं के व्यवहार की गहराई इस उपन्यास में पढ़ने को मिलती है।

-हरिराम मीणा

उपन्यास में अमेरिकी जीवन शैली, उसमें भारतीय प्रवासियों का सामंजस्य, उनकी विसंगतियाँ, अमेरिकी राजनीति की कमज़ोरियाँ व करोना योद्धाओं की कार्य क्षमता, भारतीय समुदायों में सेवा भाव, कई अन्य पहलू हैं जो कृति को पठनीय बनाते हैं।

-अमृतलाल मदान

उपन्यास के सभी पात्र अपनी जिजीविषा से मुश्किलात का मुकाबला करते हुए आगे बढ़े। खुद को संभाला,सहेजा, नई राह पर ज़िंदगी को ले गए। जो सबसे ज़रूरी बात मुझे लगी, वह है मेंटल हेल्थ व कॉउंसलिंग, जो आज की सबसे बड़ी ज़रूरत है।

-विभा रानी

ऐसा बहुत कम बार हुआ है कि किसी की कहानी आपको किताब बंद न करने दे। आपकी सहज भाषा और यथार्थ से जुड़े पात्र.... बहुत रोचक और डिस्टर्ब करने वाला उपन्यास। वायरस ही नहीं पर हर भाव भी तो अदृश्य ही है .....

-चित्रा देसाई

उपन्यास में सभी पक्ष इतनी सहजता से निभाए गए हैं कि कहीं नहीं लगता कि वे बेवजह ठूसे गए हैं। अक्सर दर्शन, अध्यात्म, मनो विज्ञान जैसे भारी तत्व किसी कृति को बोझिल बना देते हैं किंतु इस उपन्यास में कहीं भी वह गरीष्ठ नहीं हुए हैं।

-डॉ. गरिमा संजय दुबे

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।